मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता - 4

थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. अम्बेडकर

डॉ. धर्मवीर

2.4

मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता : खण्ड–चार
थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डा. अम्बेडकर

'मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता'
पर
डॉ. धर्मवीर की
स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर
पुस्तक-शृंखला

सम्पादन : सीमन्तनी उपदेश

मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता

खण्ड–चार

थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. अम्बेडकर

डॉ. धर्मवीर



वाणी प्रकाशन



वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

शाखा

अशोक राजपथ, पटना 800 004

फ़ोन: +91 11 23273167 फ़ैक्स: +91 11 23275710

www.vaniprakashan.in
vaniprakashan@gmail.com

MATRASATTA, PITRASATTA AUR JARSATTA
Khand-Chaar
THERIGATHA KI STRIYAN AUR DR. AMBEDKAR
by Dr. Dharamveer

ISBN : 81-8143-387-4
Criticism/Feminism

संस्करण 2005
आवृत्ति 2012
मूल्य : ₹ 275

मेहरा ऑफ़सेट, नयी दिल्ली-110002 में मुद्रित

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल के संघर्ष को

—धर्मवीर



भूमिका

मैं वौद्ध-धर्म और बौद्ध-दर्शन का पिछले 37 वर्षों से निरन्तर अध्ययन करता आ रहा हूँ। खासकर, वावा साहेव डॉ. अम्वेडकर की वजह से इनमें मेरी गहरी रुचि पैदा हुई। चूंकि, मेरा वावा साहेव के व्यक्तित्व से वहुत ईमानदार लगाव है, इसलिए मैं यहाँ यह वताने का विनयपूर्वक अवसर लेना चाहता हूँ कि मुझे बौद्ध-धर्म और वौद्ध-दर्शन क्यों स्वीकार्य नहीं हैं।

मेरा मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि डा. अम्वेडकर ने वौद्ध धर्म को अपना कर अपने आजीवक धर्म को कितना छोड़ा है। इस कार्य के लिए मैंने 'धम्मपद' को चुन रखा था जिस में मुझे यही वताना पर्याप्त था कि 'धम्मपद' का आखिरी अध्याय 'ब्राह्मणवग्गो' के शीर्षक से है। लेकिन अव मेरी खुशी वढ़ गई है कि मैंने 'धम्मपद' के वजाय 'थेरीगाथा' को चुना है। वैसे, धम्मपद का यहाँ-वहाँ जरूरी उपयोग इस अध्ययन में भी कर लिया गया है।

अपनी इस पुस्तक के शीर्षक में पद 'थेरीगाथा की स्त्रियाँ' मैंने जानवूझ कर गलत रखा है। सही पद 'थेरीगाथा की भिक्षुणियाँ' है। लेकिन गलत शीर्षक रख कर मैं यह वताना चाहता हूँ कि वुद्ध ने मेरी स्त्रियाँ छीनी हैं। घर से वेघर करके और विवाह से छीन कर स्त्रियों को संन्यास वाली सामाजिक मृत्यु की भिक्षुणियाँ वनाना उन का धार्मिक अपहरण कहा जाना चाहिए। असल में, भारत में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन दर्शन के संन्यास व्यक्तिगत स्तर के अपने-अपने मोक्ष, निर्वाण और कैवल्य के लिए अभी तक भी इस संसार में भ्रम में पड़े हुए हैं। आजीवक की दृष्टि इन तीनों से भिन्न, लौकिक और सामूहिक है।

मैं मान रहा हूँ कि यह पुस्तक लिख कर स्त्री-सम्वन्धी अपनी सोच को मैं एक विलकुल जीवन्त और सही परिप्रेक्ष्य में रख सका हूँ तथा वावा साहेव डा. अम्वेडकर को उन के मूल आजीवक धर्म पर वापिस ले आया हूँ।

5 सितम्बर, 2005 —धर्मवीर
तिरुवनन्तपुरम

विषय-सूची

भाग-तीन

भाग—एक



अध्याय—1

आरम्भिक

क. थेरीगाथा का महत्व
ख. थेरीगाथा की स्त्रियों का परिचय

क. थेरीगाथा का महत्व

बौद्धों का धर्मग्रन्थ त्रिपिटक है। इस का पहला पिटक सूत्र पिटक है। सूत्र पिटक में पाँच निकाय हैं—दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय में 15 ग्रन्थ शामिल हैं। इन में से एक धम्मपद है। इन्हीं में से एक और 'थेरीगाथा' है। डा. विमल कीर्ति ने इस 'थेरीगाथा' के बारे में बहुत सही लिखा है—"यह ग्रन्थ सम्पूर्ण पालि साहित्य में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक अनोखा और अनमोल ग्रन्थ है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में थेरीगाथा के मुकाबले का कोई ग्रन्थ नहीं है।"[1] बात केवल पालि साहित्य और संस्कृत साहित्य तक सीमित नहीं है। डा. धर्मकीर्ति ने और भी सही लिखा है—"बौद्ध धर्म में थेरीगाथा विश्व का अमर ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि वैदिक धर्म में नारी जाति को निम्न स्थान एवं बच्चे पैदा करने की मशीन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं समझा जाता था। गीता में स्त्री वर्ग को पापयोनि कहा गया....।"[2] इस में कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता जब डा. विमल कीर्ति लिखते हैं—"थेरीगाथा नारी स्वतन्त्रता को प्रकट करने वाला प्रथम ग्रन्थ है।"[3] चूँकि, सन्दर्भ भारत के बौद्धों, जैनियों और वैदिकों का चल रहा है, इसलिए डा. भिक्षु सत्यपाल का यह कहना एकदम सही है कि 'तथागत ने इस मामले में क्रान्तिकारी विचार दे कर वैदिक तथा जैन परम्पराओं में आमूल-चूल परिवर्तन करके भिक्खुणियों द्वारा अर्हत-पद प्राप्त करने की सम्भावनाओं के द्वार खोल दिए।'[4]

बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म में स्त्रियों को ले कर मूल भेद क्या है? डा. विमल कीर्ति ने गुत्ता थेरी के प्रकरण में इस प्रश्न का सही उत्तर दिया है जो इस प्रकार है—"ब्राह्मण धर्म में नारियों को संन्यास (प्रव्रज्या) लेने का अधिकार नहीं था। केवल पुरुष की सहचारिणी या सेविका बन कर रहना ही उस का काम था। उस के लिए ज्ञान और मुक्ति के सभी रास्ते बन्द थे।"[5]

यह एक जाना हुआ तथ्य है कि वैदिक ग्रन्थों में स्त्री को पुरुषों की तरह आध्यात्मिक जीवन जीने का अधिकार नहीं था। निरंजनानन्द अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'संन्यास दर्शन' में लिखते हैं—''वैदिक शास्त्रों में अध्यात्म के क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों से भिन्न दर्जा दिया गया था। उन्हें पुरुषों के समान आध्यात्मिक जीवन या संन्यास अखत्यार करने की स्वतन्त्रता नहीं दी गई थी।''[6] लेकिन, बात केवल स्त्री और पुरुष के अन्तर मिटाने तक सीमित नहीं थी बल्कि महारानी और मेहतरानी के अन्तर को मिटाने की भी थी। डा. धर्मकीर्ति को यह गर्व करने का पूरा अधिकार है जो वे एक बौद्ध होने के नाते लिखते हैं—''भिक्खुणीसंघ में किसी भी प्रकार के भेदभाव की भावना उत्पन्न न हो, इसलिए उन्होंने (तथागत बुद्ध ने) महाप्रजापति गौतमी और यशोधरा जैसी महारानियों और प्रकृति जैसी मेहतरानियों (चाण्डालकन्या) को संघ में प्रव्रज्या देने के उपरान्त एक पंक्ति में बिठा दिया।''[7]

लेकिन यहाँ मैं अपना उद्देश्य बताऊँ। मैं यह बताना चाहता हूँ कि थेरीगाथा बौद्ध-धर्म और बौद्ध-दर्शन की एक पूर्ण पुस्तक है। यह उन का पूरा और सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। इस में केवल डा. धर्मकीर्ति के इन शब्दों को और जोड़ लिया जाए कि 'भिक्खुणियों को थेरी भी कहा जाता है।'[8]

ख. थेरीगाथा की स्त्रियों का परिचय

थेरीगाथा की सारी स्त्रियाँ बुद्ध की समकालीन हैं। उन्होंने या तो स्वयं बुद्ध से प्रव्रज्या ली है या बुद्ध के शिष्यों और शिष्याओं से। 'सुन्दरी 'वाराणसी' के सुजात नामक ब्राह्मण की पुत्री थी।'[9] वह 327वीं गाथा में बुद्ध से कहती हैं—''ओरसा मुखतो जाता'—अर्थात ''आप के मुख से उत्पन्न हूँ। मैं आप की सगी पुत्री हूँ।''[10] एक अन्य 'भिक्खुणी अमरा उत्तपा का जन्म कोसल-प्रदेश में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था।'[11] वह भी यही कहती है कि मैं 'औरसा धीता बुद्धस्स'[12] हूँ—अर्थात् 'मैं बुद्ध की औरस...कन्या हूँ।'[13] इस का साफ मतलब यह भी है कि जारज सन्तानों को धिक्कारा जा रहा है। इस का मतलब यह भी है कि तब समाज में जारज सन्तानें पैदा हो रही थीं। औरस सन्तान होना जारज सन्तान के मुकावले में वड़ी बात है, लेकिन डर यह लग रहा है कि उन की संख्या बनिस्बत कम रहती हो। फिर, ऐसा कहने वाली ये दोनों स्त्रियाँ ब्राह्मण कुलोत्पन्न हैं। इन की जवान पर ही औरस सन्तान वाली बात क्यों आई? क्या तत्कालीन ब्राह्मणों में ऐसी सन्तान बहुतायत में पैदा होती थी या वहाँ यह एक रेयर कमोडिटी थी?

इन थेरियों के कुलों के बारे में डा. विमल कीर्ति ने जो जानकारी दी है वह महत्वपूर्ण है लेकिन स्पष्ट और पर्याप्त नहीं है। फिर भी उन के कुलों के विश्लेषण की कोशिश की जा सकती है। उसे मोटे तौर पर इन विभागों में रखा जा सकता है :

तालिका

थेरीगाथा की स्त्रियों के नामों, जन्म स्थानों और कुलों का वर्णन

क्रम संख्या	नाम	जन्म स्थान	कुल
(1)	(2)	(3)	(4)
1.	अज्ञात	—	क्षत्रिय
2.	मुत्ता	श्रावस्ती	ब्राह्मण
3.	पुण्णा श्रावस्ती	शाक्य	शाक्य
4.	तिस्सा	कपिलवस्तु	शाक्य
5.	अज्ञात तिस्सा	कपिलवस्तु	शाक्य
6.	धीरा	—	—
7.	वीरा	—	—
8.	मित्ता	—	—
9.	भदरा	—	—
10.	उपसमा	—	—
11.	मुत्ता	कोसल	ब्राह्मण
12.	धम्मदिन्ना	राजगृह	वैश्य
13.	विसाखा	—	—
14.	सुमना	—	—
15.	उत्तरा	—	—
16.	वृद्धा सुमना	श्रावस्ती	कोसलराज
17.	धम्मा	श्रावस्ती	कुलीन
18.	संघा	—	—
19.	अभिरूप नन्दा	कपिलवस्तु	शाक्य
20.	जयन्ती	वैशाली	लिच्छवी राजकुल
21.	सुमंगल माता	श्रावस्ती	दरिद्र परिवार
22.	अड्ढकासि	वाराणसी	सेठ
23.	चित्ता	राजगृह	धनवान कुल
24.	मेत्तिका	राजगृह	ब्राह्मण
25.	मित्ता	कपिलवस्तु	शाक्य राजकुल
26.	अभयमाता (पद्मावती)	उज्जयिनी	गणिका
27.	अभया	उज्जयिनी	उच्च कुल
28.	सामा	कोसाम्बी	प्रतिष्ठित कुल

क्रम संख्या	नाम	जन्म स्थान	कुल
(1)	(2)	(3)	(4)
29.	अपरा सामा	कोसाम्बी	धनी परिवार
30.	उत्तमा	श्रावस्ती	धनी सेठ
31.	अपरा उत्तमा	कोसल	ब्राह्मण
32.	दत्तिका	श्रावस्ती	ब्राह्मण
33.	उब्बिरी	श्रावस्ती	कुलीन
34.	सुक्का	राजगृह	प्रतिष्ठित कुल
35.	सेला	आलवी नगर	राजकन्या
36.	सोमा	राजगृह	ब्राह्मण
37.	भद्दा कापिलानी	स्यालकोट	ब्राह्मण
38.	वड्ढेसी	देवदह	अज्ञात
39.	विमला	वैशाली	वेश्या
40.	सीदा	वैशाली	सेनापति की भानजी
41.	सुन्दरी नन्दा	कपिलवस्तु	शाक्य राजवंश
42.	नन्दुत्तरा	कुरु जनपद	ब्राह्मण
43.	मित्ताकाली	कुरु राष्ट्र	ब्राह्मण
44.	सकला	श्रावस्ती	ब्राह्मण
45.	सोणा	श्रावस्ती	कुलीन
46.	भद्दा कुण्डलकेशा	राजगृह	धनवान सेठ
47.	पटाचारा	श्रावस्ती	सेठ परिवार
48.	तीस भिक्खुणी	भिन्न-भिन्न	—
49.	चन्दा	—	ब्राह्मण
50.	पाँच सौ भिक्खुणी	—	विभिन्न सामान्य और असामान्य कुल
51.	वासेट्ठी	वैशाली	प्रतिष्ठित कुल
52.	खेमा	स्यालकोट	राजकुल
53.	सुजाता	साकेत	वैश्य
54.	अनोपमा	साकेत	धनी सेठ
55.	महाप्रजापिता गौतमी	देवदह नगर	राजा अंजन शाक्य
56.	गुत्ता	श्रावस्ती	ब्राह्मण
57.	विजया	राजगृह	प्रतिष्ठित कुल
58.	उत्तरा	श्रावस्ती	प्रतिष्ठित
59.	चाला	मगध	ब्राह्मण

क्रम संख्या	नाम	जन्म स्थान	कुल
(1)	(2)	(3)	(4)
60.	उपचाला	मगध	ब्राह्मण
61.	सीसूप चाला	मगध	ब्राह्मण
62.	वड्ढ माता	भड़ौंच	प्रतिष्ठित
63.	किसा गौतमी	श्रावस्ती	निर्धन घर
64.	उप्पल वण्णा	श्रावस्ती	श्रेष्ठि
65.	पुण्णिका	श्रावस्ती	दासीपुत्री
66.	अम्बपाली	वैशाली	गणि
67.	रोहिनी	वैशाली	ब्राह
68.	चापा	हजारी बाग	वहेलिय. सरदार
69.	सुन्दरी	वाराणसी	ब्राह्मण
70.	सुभा	राजगृह	सुनार
71.	सुम्भा	राजगृह	ब्राह्मण
72.	इसिदासी	उज्जयिनी	वैश्य
73.	सुमेधा	मंत्रावती नगरी	राजपुत्री

ऊपर दी गई इस तालिका के वर्गीकरण को पुनः इस प्रकार संक्षिप्त किया जा सकता है :

क्रम सं.	कुल का नाम	संख्या
1.	क्षत्रिय कुल	1
2.	राजकुल	7
3.	शाक्य कुल	7
4.	ब्राह्मणी	18
5.	अन्य कुलीन नारियाँ	13
6.	वैश्य कुल	9
7.	दरिद्र परिवार	2
8.	सुनारन	1
9.	सरदार बहेलिया पुत्री	1
10.	दासी पुत्री	1
11.	वेश्या	3
12.	अज्ञात	10
	कुल	73

यह एक खास बात है कि थेरीगाथा की पहली थेरी क्षत्रिय कुलोत्पन्न है। शुरूआत किसी भी थेरी के नाम से की जा सकती थी लेकिन नाम के अज्ञात रहने पर भी क्षत्रिय कुल की थेरी से शुरूआत की गई है। यह उस वर्णक्रम से पूर्णतया मेल खाने वाली वात है कि वौद्ध धर्म में वर्णक्रम क्षत्रिय, व्राह्मण, वैश्य और शूद्र का है। इस पहले नम्बर की क्षत्रिय कुल की थेरी के वाद तत्काल दूसरा नाम व्राह्मण कुल की थेरी का है। क्या यह संयोग है कि यहाँ बौद्ध वर्ण-व्यवस्था का क्रम मिलता है जिस में क्षत्रिय पहले और व्राह्मण वाद में आता है?

पूछने लायक प्रश्न यह भी है कि जवकि 'थेरीगाथा' में 73 थेरियों की गाथाएँ संकलित हैं तब उन में प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म-दीक्षा की गाथा क्यों नहीं है। यह सम्भव है कि हर स्त्री की कथा हर पुस्तक में न आ पाए पर पूछना यह है कि संकलित 73 थेरियों में एक भी चण्डालिका क्यों नहीं है। ऐसा इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि डा. अम्वेडकर ने इस बात का वहुत ख्याल रखा है कि प्रकृति नामक इस चण्डालिका की धर्म-दीक्षा की कहानी उन की पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में जरूर आए। उन की पुस्तक के द्वितीय कांड के सातवें भाग का शीर्षक 'स्त्रियों की धर्म-दीक्षा' है। इस में केवल दो भाग हैं जहाँ पहले भाग में महाप्रजापति गौतमी की तो दूसरे भाग में 'प्रकृति नामक चण्डालिका की धर्म-दीक्षा'[14] को सविस्तार लिखा गया है। यह वात इसलिए उठती हैं क्योंकि 'चाण्डाल' शब्द थेरीगाथा में आया है—और वहाँ उस का संदर्भ विचित्र और अनावश्यक था।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डॉ. विमलकीर्ति, भूमिका, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-24
2. वही, एक मत, डा. धर्मकीर्ति, पृ.-12-3
3. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, प्रकाशकीय, शान्ति स्वरूप वौद्ध, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-4
4. वही, मंगल कामनाएँ, डा. भिक्षु सत्यपाल, पृ.-9
5. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-165
6. "In the Vedic Shastras, women were accorded a different spiritual status from men They were not given the option for spiritual life or Sannyasa as men were."
   Sannayasa Darshan : A Treatise on Traditional and Contemporary Sannyasa, by Paramahamsa Niranjanananda, Published by Sri Panchdashnam Paramahansa Alakh Bara, Paria Pagar, Rikhia, Deoghar, Bihar, India, Ist Edition 1993, p.-163
7. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, एक मत, डा. धर्मकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-14
8. वही, एक मत, डा. धर्मकीर्ति, पृ.-14

9. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-231

10. वही, पृ.-238

11. वही, पृ.-82

12. वही, पृ.-83

13. वही, पृ.-83

14. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-153-56

अध्याय—2

स्त्रियों के दुख क्या हैं?

क. घर से बेघर क्यों?
ख. बौद्ध-दर्शन की शब्दावली
ग. भिक्षुणियों का मार से युद्ध
घ. थेरीगाथा और कामसूत्र

क. घर से बेघर क्यों?

मनुष्य के लिए बुद्ध की स्कीम क्या है? त्रिशरण, चार आर्य सत्य और आष्टांगिक मार्ग क्या हैं? उत्तर में ये सब मनुष्य से उस का घर छुड़वाने के हिसाब-किताब हैं। घर के छूटने में वह सब छूटता है जिस के छूटने से मनुष्य की पूर्णतः सामाजिक मृत्यु हो जाती है। यह संन्यास का रास्ता है। बुद्ध की भिक्षुणियों ने भी यही रास्ता अपनाया है।

जाना जाए कि बुद्ध की इन थेरियों ने प्रव्रज्या लेने में क्या-क्या छोड़ा है। सुमेधा के बारे में जो सूचना मिलती है वह इस प्रकार है :

एव भणति सुमेधा, मातापितरो "न ताव आहारं।
आहरिस्सं गहट्ठा, मरणवसं गता व हेस्सामि।। 462।।

—"सुमेधा ने अपने माता-पिता से यह कहा कि, "मैं इसी स्थान पर पड़ी-पड़ी भूखी रह करके मर जाऊँगी और यह मेरे लिए अच्छा ही होगा, किन्तु गृह-वास में रह कर मैं आहार ग्रहण नहीं करूँगी।"[1]

सुभा राजगृह के एक प्रसिद्ध सुनार की कन्या थी। बुद्ध ने उसे धम्मोपदेश दिया। धम्मोपदेश क्या दिया, सुभा ने महापजापती गौतमी के पास जा कर प्रव्रज्या ले ली। डा. विमल कीर्ति लिखते हैं—"उस के रिश्तेदार-जन बार-बार आ कर उसे घर लौट कर चलने के लिए अनुरोध करने लगे। किन्तु उस ने सांसारिक जीवन के दोष दिखा कर सामाजिक

जीवन की कुरीतियों को वता कर, समाज में व्याप्त असमानता के बारे में बता कर और समाज में व्याप्त नारी के प्रति हीनत्व का भाव बता कर सब को लौटा दिया।"[2]

378वीं गाथा में एक व्यक्ति सुभा नाम की थेरी को समझाता है। वह कहता है—"प्रिये! यदि मेरी बात को तू स्वीकार करती है, तो चल, हम दोनों गृहवास स्वीकार करें।"[3] कितना अच्छा प्रस्ताव है, पर नहीं मानती, उलटे उसे भला-बुरा कहती है। उसे लम्पट और मूर्ख मानती है।

घर छोड़ने पर दुख होना चाहिए था। किसी को भी घर छोड़ने पर दुख होता है। लेकिन इन थेरियों ने घर छोड़ने को जश्न मना रखा है। उप्पल वण्णा थेरी कहती है :

सा पब्बज्जि राजगेह, अगारस्मानगारियं।। 226।।

—"....इसलिए मैं घर से बेघर हो राजगृह में जा कर प्रव्रजित हो गई।"[4]

सुजाता थेरी कहती है—"ततो विञ्ञातसद्धम्मा, पब्बजिं अनगारियं"[5] अर्थात—"मुझे सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त हुआ। बाद में मैंने घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली।"[6] अनोपमा ने अपना घर इस प्रकार छोड़ा था—"ततो केसानि छेत्वान, पब्बजिं अनगारियं"[7] अर्थात —"फिर मैंने अपने सिर के बालों को कटवा कर, घर से बेघर हो प्रव्रज्या ली।"[8] 351वीं गाथा के अनुसार यह अनगारूपनिस्सयो अर्थात "अनागरिक जीवन"[9] है।

अब अलग से गिनाया जाए कि इस बेघर होने में सच में क्या-क्या छूटता है।

थेरीगाथा से पता चलता है कि तब दासप्रथा लागू थी। धनिकों की औरतें अपने घरों का काम नहीं करती थीं। उन के बट का काम दासियाँ करती थीं। पुण्णिका ऐसी ही दासी थी। वह अपनी गाथा में कहती है—"मैं पनहारिन थी। सदा पानी भरना ही मेरा काम था। स्वामिनियों के दण्ड के भय से, उन की क्रोध भरी गालियों से पीड़ित होकर, मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता था।"[10]

सुमंगल माता अपनी गाथा में कहती है :

सुमुत्तिका सुमुत्तिका, साधु मुत्तिकाम्हि मुसलस्स।
अहिरिको मे छत्तकं वा पि, उक्खलिका मे देड्डुभं वा ति।। 23।।

—"अहो! मैं मुक्त नारी हूँ। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है! पहले मैं मूसल ले कर धान कूटा करती थी, आज मैं उससे मुक्त हो गई हूँ। मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे (खाना पकाने के) भाँडे-बरतन, जिन के बीच में मैली-कुचैली बैठती और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों (छतरी) से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।"[11]

मुत्ता थेरी की अपनी गाथा इस प्रकार है :

सुमुत्ता साधुमुत्ताहि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया
उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जकेन च।

मुत्ताम्हि जातिमरणा, भवनेत्ति, समूहता "ति।। 11।।

—"मैं अच्छी तरह से मुक्त हो गई हूँ। अच्छी विमुक्त हो गई हूँ। तीन टेढ़ी चीजों से मैं अच्छी तरह मुक्त हो गई हूँ। ओखली से, मूसल से और अपने कुबड़े स्वामी से, मैं अच्छी तरह मुक्त हो गई हूँ। मैं आज....(जाति) और मरण से भी मुक्त हो गई हूँ। मेरी संसार-तृष्णा ही समाप्त हो गई है।"[12]

गुत्ता ने पुत्र और (धन-) संग्रह आदि भौतिक ऐश्वर्यों को त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की थी—"गुत्ते यदत्थं पब्बज्जा, हित्वा पुत्तं वसुं पियं।"[13]

सकला थेरी की कथा भी इसी प्रकार की है। वह कहती है :

साहं पुत्तं धीतरञ्च, धनधञ्ञय छड्डिय।
केसे छेदापयित्वान, पब्बजिं अनगारियं।। 98।।[14]

—"मैंने अपने पुत्र, कन्या, धन-धान्यादि सब को छोड़ दिया है और अपने सिर के बालों को कटवा कर, बस मैंने घर से वेघर हो कर प्रव्रज्या ले ली है।"[15]

सुनार की बेटी सुभा ने क्या-क्या छोड़ा? गाथा में उत्तर इस प्रकार है—"मैं अपने सभी भाई-वन्धु, सम्बन्धी जनों, दास, सेवक, ग्राम, विस्तृत और समृद्ध खेत, जीवन की सभी रमणीय प्रमोदकारी वस्तुएँ और विपुल सम्पत्ति आदि सब को छोड़ कर प्रव्रजित हो गई।"[16]

संघा इस मामले में मनोवैज्ञानिक बात भी कहती है :

हित्वा घरे पब्बजित्वा, हित्वा पुत्तं पसुं पियं।
हित्वा रागञ्च दोसञ्च, अविज्जञ्च विराजिय।
समूल तण्हमब्बुयूह, उपसन्ताम्हि निब्बुता" ति।। 18।।

—"प्रव्रज्या ले कर मैंने घर छोड़ा, अपनी प्रिय सन्तान को छोड़ा, अपने प्रिय पशुओं को छोड़ा। राग और द्वेष को छोड़ा, अविद्या को छोड़कर विरक्त हुई। तृष्णा को समूल नष्ट कर अब मैंने निर्वाण की परम शक्ति का अनुभव किया है। निर्वाण का अनुभव करके मैं परम शान्त हो गई हूँ।"[17]

कुल मिला कर जो छूटा है, उसे समेकित किया जाए तो उस की लिस्ट इस प्रकार वनती है :

1. मालकिनों के लिए पानी भरना छोड़ा।
2. ओखली छोड़ी।
3. मूसल छोड़ा।
4. धान कूटना छोड़ा।
5. खाना बनाना छोड़ा।

6. निर्लज्ज पति छोड़ा।
7. कुवड़ा पति छोड़ा।
8. घर छोड़ा
9. भाई-बन्धु छोड़े
10. रिश्तेदार छोड़े।
11. दास और सेवक छोड़े।
12. ग्राम छोड़ा।
13. खेत छोड़े।
14. विपुल सम्पत्ति छोड़ी।
15. धन-धान्य छोड़ा।
16. प्रिय पुत्रों को छोड़ा।
17. कन्या को छोड़ा।
18. प्रिय पशुओं को छोड़ा।
19. राग को छोड़ा।
20. द्वेष को छोड़ा।
21. अविद्या को छोड़ा।
22. तृष्णा को छोड़ा।
23. जन्म लेना छोड़ा।
24. मरण सहना छोड़ा।

इन विचारों से कोई बौद्ध खुश हो ले, कोई दलित खुश क्यों होगा? इन बातों में ऐसा क्या करिश्मा है जिस से समाज पर बदलाव के लिए असर पड़ेगा? कोई समाज से भाग रहा है, वह भाग जाए, लेकिन उस से जारकर्म, बलात्कार और वेश्यावृत्ति नहीं रुकेगी। समाज में असामाजिक तत्वों का राज ज्यों का त्यों चलता रहेगा। इसलिए, यह कोई हल नहीं है बल्कि समस्या से डर कर भागना है। दास प्रथा मिटानी थी तो उस समाज को बदल कर मिटानी चाहिए थी। बुरे पति से छुटकारा दिलवाना जरूर था पर उसी समाज में स्त्री का पुनर्विवाह कराया जाना चाहिए था। ओखली, मूसल और धान कूटना नहीं छोड़ना चाहिए था। यह मनुष्य का अपना भोजन है। दूसरों की गुलामी के रूप में जरूर पर इसे अपने लिए कैसे छोड़ा जा सकता था? अपने प्रिय पुत्र और अपने प्रिय पशु नहीं छोड़े जाने चाहिए थे। राग, द्वेष, अविद्या और तृष्णा को गृहस्थ की कसौटी पर ही छोड़ा जा सकता है। जंगल में और विहार में इन्हें छोड़ने का कोई अर्थ नहीं है। और जन्म-मरण का क्या छोड़ना और क्या न छोड़ना—जब ये मनुष्य के अपने हाथ में ही नहीं हैं? इस विषय को ले कर जो भी जबान खोलेगा, फालतू ही बोलेगा।

सुमेधा ने 'अपने हाथ से अपने केश काट लिए और वह प्रव्रजित हो गई।'[18]

बताइए, बुद्ध का यह दर्शन दुल्हनों का यह रूप बना रहा है! मनुष्य को वैवाहिक जीवन के द्वारा सौन्दर्य की ओर जाना था लेकिन यहाँ सब कुछ अनाकर्षक बताया जा रहा है। कविता और कला की हत्या की जा रही है और डा. अम्बेडकर ने इस पर ध्यान तक नहीं दिया। इस धर्म में भिक्षुणियों के लिए गाने, बजाने और नाचने पर रोक लगी हुई है।

ये जन्म होने से धरती पर शोक मनाने बैठ गई हैं। निश्चित रूप से मनुष्य के जीवन में सदाचार की जरूरत है—और बेहद जरूरत है, लेकिन इस का मतलब गृहत्याग नहीं है बल्कि गृहस्थ जीवन की सही ढंग से व्यवस्था है। घर साधा जाए तो घर में क्या नहीं है? कुछ भी हो, वहाँ जंगल में और विहार में क्या रखा है? मोक्ष और निर्वाण किस खूंटे के बैल हैं? ऐसे घर छोड़ने वालों के लिए कबीर ने लम्बी पुकार मचा रखी है जो इस प्रकार है :

अवधू, भूले को घर लावै।
सो जन हमको भावै।।
घर में जोग भोग घर ही में, घर तज बन नहिं जावै।
घर में जुक्त मुक्त घर ही में, जो गुरु अलख लखावै।।
सहज सुन्न में रहैं समाना, सहज समाधि लगावै।
उन्मनि रहै, ब्रह्म को चीन्हैं, परम तत्व को ध्यावै।
सुरत-निरत सों मेला करके, अनहद नाद बजावै।
घर में बसत वस्तु भी घर है, घर ही वस्तु मिलावै।
कहैं कबीर सुनो हो साधू, ज्यों का त्यो ठहरावै।।[19]

ख. बौद्ध दर्शन की शब्दावली

जीवन, समाज, परिवार और दुनिया की कोई दूसरी बात हो, बौद्ध दर्शन को उसे अपनी दार्शनिक शब्दावली के खाँचे में फिट करके कहना है। यह सभी दर्शनों के साथ होता है कि वे अपनी विश्व-दृष्टि के लिए अपनी अलग शब्दावली खड़ी करते हैं। बौद्ध-दर्शन के पास ऐसी एक विशिष्ट शब्दावली है और थेरीगाथा में उस का पूरा प्रयोग हुआ है। इसे इस प्रकार जाना जा सकता है :

1. जन्म दुख है

(i) खन्ध धातु आयतनं, सङ्खतं जातिमूलकं दुक्खं।
योनिसो अनुविचिनन्ती....।। 474।।

—"स्कन्ध, धातुओं और आयतनों का यह मिलन-मन्दिर, एक क्षणिक सम्मिश्रण, जिस का जन्म मूल (कारण) है। यह शरीर दुक्खों की योनि है।"[20]

2. जन्म-मरण से मुक्ति

(i) परियन्तं न जानन्ति, जातिया मरणस्स च।। 356।।

—"वे जन्म और मृत्यु के मुक्ति-मार्ग को नहीं जानते।"[21]

(ii) साहं निस्सरणं ञत्वा, जातिया मरणस्स च।
न सोचामि न रोदामि, न चापि परितप्पयिं।। 316।।

—"किन्तु जन्म और मरण से मुक्ति का मार्ग अब मुझे मालूम हो गया है। इसलिए अब मुझे न और शोक करना है, न विलाप करना है और न रोना-धोना है।"[22]

(iii) जाति मरणप्पहानाय।। 459, 479।।

—"मैं....जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए प्रयास करूँगी।"[23]

3. जरा-मरण से मुक्ति

यदि बौद्ध धर्म जन्म और मरण से तनिक हटता है तो थेरीगाथा में वह तपाक से जरामरण पर आ टिकता है, सुमेधा अपनी गाथा में कहती है :

(i) अनुबन्धे जरामरणे, तस्स घाताय घटितब्बं।। 495।।

—"बुढ़ापा और मरण मेरा पीछा कर रहे हैं। इन का विनाश करने के लिए मुझे स्वयं ही प्रयास करना पड़ेगा।"[24]

4. व्याधि और मरण दुख हैं

थेरीगाथा में दुख क्या है? महापजापती गोतमी ने अपनी एक गाथा में इस की परिभाषा दी है जो इस प्रकार है—"व्याधिमरणतुन्नानं, दुक्खक्खन्धं व्यपानुदी" ति।"[25] अर्थात—बुद्ध ने 'व्याधि और मरण से पीड़ित प्राणियों के दुक्ख-पुंज को काट दिया।'[26] इस प्रकार, यहाँ स्पष्ट शब्दों में व्याधि और मरण को दुख कहा गया है।

5. चार आर्य सत्य

(i) 'न बुज्झरे अरियसच्चानि....' अर्थात—"(चार) आर्य सत्यों को समझने में वे असमर्थ होते हैं।"[27]

(ii) सराहि चत्तारि सच्चानि।। 504।।

—"चार आर्य सत्यों को स्मरण करो।"[28]

6. आष्टांगिक मार्ग

(i) अरियट्ठाङ्गिकं उजुं।। 363।।

—"मंगलकारी आर्य आष्टांगिक मार्ग...।"[29]

(ii) मग्गट्ठङ्कियानयायिनी।। 391।।

—"...मैं...आर्य आष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने वाली हूँ।"[30]

7. शून्यता

(i) सुञ्ञतस्सानिमित्तस्स, लाभिनीहं यदिच्छकं।

—"....मुझे शून्यता ध्यान की प्राप्ति हो गई, मैंने अनिमित्त... को पाया....।"[31]

8. निर्वाण

(i) आराधयाहि निब्बानं

—'तू....निर्वाण की आराधना कर।'[32]

(ii) पत्ता ते निब्बानं, ये मुत्ता दसवलस्स पावचने।
अप्पोस्सुक्का घटेन्ति, जातिमरणप्पहानाम।। 479।।

—"वही मनुष्य निर्वाण-प्राप्त हैं, जो अनासक्त हैं और जिन्होंने अविचलित चित्त से जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए दशवल (भगवान् बुद्ध) के शासन का अभ्यास किया है।"[33]

(iii) निब्बानाभिरता सदा।। 361।।

—"निर्वाण में ही अभिरत रहने में, अग्रसर रहने में मुझे आनन्द है।"[34]

ब्राह्मणों की दार्शनिक शब्दावली पर अलग से वहुत कुछ कहा जा सकता है। वेदान्त तक उस की शव्दावली का लम्वा इतिहास और विकास है। आश्चर्य यह है कि वौद्ध ग्रन्थों में भी उस का प्रयोग मिलता है। इस का कारण यह रहा कि ब्राह्मण लोग वौद्धों में भी वेरोकटोक आ-जा सकते थे। व्रह्म की माया से लड़ाई चल रही थी। मेरे अनुमान में, 'व्रह्म' विदेशी था और 'माया' देशी थी। द्रविड़ भाषाओं में 'माया' और 'मायम्' शब्दों के अर्थ जानने की आवश्यकता है। लेकिन यहाँ उस विस्तार में जाने का अवसर नहीं है। उत्तर भारत की भाषाओं में और कवीर की वाणी में भी 'माया' शव्द के अर्थ वहुत कुछ नया बताते हैं जो वेदान्त के अर्थ से एकदम भिन्न हैं। यहाँ केवल यह देखा जाए कि ब्राह्मणों की इस दार्शनिक शब्दावली के प्रयोग थेरीगाथा में हुए हैं जो आगे दिए जा रहे हैं :

9. मायम्

(i) अकासिं विविधं मायं, उज्जग्घन्ती बहुं जनं।[35]

—"मनुष्यों के पतन के लिए मैं कई प्रकार के मायाजाल फैलाती थी।"[36]

(ii) मायं विय अग्गतो कतं, सुपिनन्तेव सुवण्णपादपं।
उपगच्छसि अन्ध रित्तकं, जनमज्झेरिव रुप्परूपकं।। 396।।

—"अज्ञानी आदमियों की भीड़ में जादूगर के द्वारा दिखाए गए मिथ्या, तुच्छ जादू को देख कर तू उस के पीछे दौड़ रहा है। उसे सच और मूल्यवान समझ रहा है।"[37]

10. मोक्ष

जव निब्बान की बात चल रही हो तव वौद्ध धर्म में वैदिक धर्म के 'मोक्ख' शब्द की जरूरत कैसे आ पड़ी? वौद्धों के पास निर्वाण शब्द है, तव थेरीगाथा में 'मोक्ष' शब्द का प्रयोग कैसे हो सका? इस की 508वीं गाथा इस प्रकार है :

मोक्खम्हि विज्जमाने, किं तव कामेहि येसु वधवन्धो।
कामेसु हि असकामा, वधवन्धदुखानि अनुभोन्ति।। 508।।

—"मोक्ष के विद्यमान होने पर वध और वन्धन से भरी हुई कामासक्ति से तुम्हें क्या प्रयोजन है? कामासक्ति वध और वन्धन को पैदा करती है। कामासक्त मनुष्य अनेक प्रकार के दुक्ख भोगते हैं।"[38]

यह त्रिपिटक में जरूर व्राह्मणों की मिलावट और घुसपैठ है। इसे रोकने और वाहर रखने का वौद्धों ने कोई उपाय नहीं खोजा। उन्होंने व्राह्मणों से अपने धर्म की रक्षा करने के वारे में विचार तक नहीं किया।

11. चौरासी की संख्या

चुल्लासीति सहस्सानि, सब्बा जीवसनामिका।

—"तेरी जीवन्ती नाम की चौरासी हजार कन्याएँ इसी श्मशान में जलाई गई हैं।"[39]

भारतीय जीवन में 'चौरासी' की संख्या का खास महत्व है। आजकल चौरासी लाख योनियों का मुहावरा चलता है। बौद्ध काल में यह मुहावरा 'चौरासी हजार' की संख्या का चलता था। यह किसी समय किसी शहर, राज्य या राजधानी की जनसंख्या रही होगी। चौरासी हजार पलंगों का जिक्र भी आता है। इस गाथा में भी ये योनियाँ नहीं वल्कि कन्याओं की संख्या है जो अतिशयोक्ति हो सकती है लेकिन अलौकिक और पुनर्जन्म की योनियाँ नहीं हैं।

ग. भिक्षुणियों का मार से युद्ध

वौद्ध धर्म में 'मार' एक महत्वपूर्ण शब्द है। इसे कुछ ऐसा मान लिया गया है जैसे दूसरे कई धर्मों में 'शैतान' होता है। खुद वुद्ध की मार से लड़ाई चलती है। डा. अम्वेडकर ने मार से बुद्ध की इस लड़ाई का अपनी पुस्तक में वर्णन किया है जो इस

प्रकार है—"जब वह (गौतम) ध्यान करने के लिए दृढ़ आसन लगा कर बैठा तो बुरे-विचारों और बुरी-चेतनाओं के झुण्ड के झुण्ड ने—जिन्हें पौराणिक भाषा में मार-पुत्र कहा गया है—उस पर आक्रमण किया।"[40] तो, यह डा. अम्बेडकर के लिए पौराणिक भाषा का शब्द है। डा. भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने धम्मपद के अनुवाद में इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—"मार—इन्द्र से ऊपर और ब्रह्मा से नीचे का देवता, जिसे वैदिक साहित्य में प्रजापति कहते हैं।"[41] उन्होंने इस का आगे खुलासा किया है—"राग, द्वेष, मोह आदि मन की दुर्वृत्तियाँ, जो सत्य के मार्ग में बाधक होती हैं, उन्हें ही रूपक मान कर मार नाम का एक देवता माना गया है।"[42] इस बारे में थेरीगाथा के अनुवादक डा. विमल कीर्ति ने क्या कहा है? वे लिखते हैं—"मार एक मिथक है। यह कोई देवता नहीं है, बल्कि साधक के मन का विकार है।"[43]

ऐसा नहीं लगता कि बौद्धों द्वारा प्रयोग किया गया शब्द 'मार' संस्कृत भाषा का ही है। बौद्धों के रूप में आर्य साहित्य 'मार' से लड़ रहा है। 'मार' बौद्धों और आर्यों का शत्रु है। जाना जाए कि 'मार' को फारसी भाषा का शब्द माना गया है। उस में इस का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"सर्प, अहि, भुजग, भुजंग, नाग, साँप।"[44] इस 'मार' से निम्नलिखित शब्द और बनते हैं—"मारगजीदः (साँप का डसा हुआ), मारगीर (सँपेरा), मारगुर्जः (फन वाला साँप), मारपेच (वह चित्र जिस में कई साँप परस्पर गुँथे हों), मारमाही (सर्पमीन), मारमुहरः (साँप का मन, मणि)।"[45]। क्या केरल का 'माही' क्षेत्र फारसी भाषा का यही 'माही' शब्द है जो राजनीति और प्रशासन की दृष्टि से संघ शासित क्षेत्र पाण्डिचेरी से जुड़ा हुआ है और पहले फ्रांसीसियों के अधिकार में था? 'माही' का अर्थ 'मछली' और 'माहीगीर' का अर्थ 'मछेरा' है।

'मार' द्रविड़ व्युत्पत्ति का शब्द भी हो सकता है। वहाँ पुरुषों के 'मुरसोली मारू' और 'मारा पाण्डियन' जैसे नाम मिलते हैं। आर्य साहित्य में ऐसे नामों की खोज मुश्किल है। मलयालम में इस के अर्थ इस प्रकार हैं—'छाती', 'पाँच हाथ की लम्बाई जो छाती से हो कर हाथों को दोनों ओर लम्बे फैलाने से बनती है', 'विरोध', 'विनिमय' और 'पत्नी को दिया हुआ दान।'[46]

इस शब्द के इसी तरह के कई अर्थ तमिल तथा अन्य द्रविड़ भाषाओं में मिलते हैं।[47] 'मारा पाण्डियन' में यह जवान हट्टा-कट्टा मर्द है। हो न हो, विरोध में हरा कर उसे ही आर्य संस्कृति ने 'माड़न' बनाया है। आज हिन्दी में 'माड़ा' का अर्थ कमजोर है। लेकिन 'माडन्' मलयालम में एक ग्रामीण देवता है।[48] मैं उत्तर प्रदेश मेरठ जिले के एक गाँव का रहने वाला हूँ—और मेरे एक दादा का नाम 'माड़े' था।

डा. अवन्तिका प्रसाद मरमट ने अपनी पुस्तक 'नाग संस्कृति कोश' में 'मार' शब्द के अर्थ इस प्रकार दिए हैं—"1. सर्प नाम 2. कामदेव 3. विष, जहर।"[49] खोजे जाएँ तो हिन्दी में मार से बने अनेक शब्द मिलते हैं—बटमार, लूटमार, छुरीमार, मारधाड़, मारपीट, मारकाट, मार-मुक्ते, मारामारी।

खैर, जाना यह जाए कि थेरीगाथा में भी 'मार' से थेरियों की लड़ाई ठनी हुई है। इन स्त्रियों के मार से सवाल-जवाव होते हैं। मार इन्हें लुभाता है और ये उस पर उलटा वार करती हैं। 164वीं गाथा में लिखा मिलता है—"चित्तेन वञ्चिता सत्ता, मारस्स विसये रता —अर्थात—"....चित्त के द्वारा वंचित हुए मनुष्य मार...के जाल में फँसते हैं।"[50] इस की 231वीं गाथा इस प्रकार है :

सतं सहस्सानिपि धुत्तकानं, समागता एदिसका भवेय्युं।
लोमं न इञ्जे नपि सम्पवेधे, किं मे तुव मारं करिस्ससेको।। 231।।[51]

—"अरे मार! यदि तेरे सदृश एक लाख धूर्त भी आ जाएँ, तो भी मेरे एक रोयें को नहीं हिला सकते, मुझे प्रकम्पित नहीं कर सकते। तेरी एक की तो गिनती ही क्या है?"[52]

मार ने चाला थेरी से क्या पूछा है? मार का पूछना है :

कं नु उद्दिस्स मुण्डासि, समणी विय दिस्सासि।
न च रोचेसि पासण्डे, किमिदं चरसि मोमुहा।। 183।।[53]

—"भिक्खुणी चाला! किसलिए तूने सिर को मुंडवा कर भिक्खुणी का वेश धारण कर लिया है? श्रमणी-सी दिखाई पड़ने वाली! तू क्यों यह मिथ्या विश्वास स्वीकार किए हुए है? बता, भिक्खुणी! क्यों तू यह मोहमय आचरण कर रही है?"[54]

चाला मार के इस प्रश्न का जो उत्तर देती है वह इस प्रकार है—"एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक"[55]—अर्थात—"पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया गया है। दुष्ट! तू नष्ट कर दिया गया है।"[56]

मार थेरी उपचाला से कहता है जो चाला की छोटी वहन है :

किं नु जातिं न रोचेसि, जातो कामानि भुञ्जति।
भुञ्जाहि कामरतियो, माहु पच्छानुतापिनी।। 190।।[57]

—"उपचाला! तुझे जन्म से विराग क्यों? जन्म प्राप्त करके ही तो काम-भोगों का सुख अनुभव किया जाता है। तू काम-भोगों का आनन्द ले, अन्यथा वाद में पछतायेगी।"[58]

मार को उपचाला का जो जवाब है वह इस प्रकार है :

जातस्स मरणं होति, हत्थपादान छेदनं।
वधबन्धपरिकिलेसं, जातो दुक्खं निगच्छति।। 191।।[59]

—"जन्म का परिणाम मृत्यु है। जन्म ग्रहण करने वाले की कभी न कभी मृत्यु होती ही है। जन्म होने से ही हाथ और पैरों का काटा जाना होता है। जन्म लेने से ही बध, बन्धन और नाना कलेश होते हैं। जिसने जन्म लिया है, वह दुक्ख पाता ही है।"[60]

अन्त में उपचाला भी उन्हीं शब्दों को दोहराती है जो चाला ने मार से कहे थे—"पापी मार!....समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया है।.... ।"[61]

उधर, डा. अम्बेडकर यह भी नहीं मानना चाहते कि 'जीवन स्वभावतः दुख है।'[62] मेरा पूछना यह है कि डा. अम्बेडकर उस रास्ते पर क्यों जा रहे हैं जिस में वे खुद परेशान हैं? उन्होंने अपने सन्तों का रास्ता क्यों छोड़ा या दृढ़ता से उसे क्यों नहीं पकड़े रखा? इस त्रिपिटक के खुद्दक निकाय के इस अति महत्वपूर्ण और विश्व के अमर ग्रन्थ थेरीगाथा का क्या करें जिस की गाथा में लिखा हुआ है कि जन्म ही दुख का कारण है?

घ. थेरीगाथा और कामसूत्र

डा. रांगेय राघव ने अपनी पुस्तक 'महायात्रा : गाथा—भाग 2 : रैन और चन्दा' में अपने ब्राह्मण की प्रशंसा करते हुए लिखा है—"वह (ब्राह्मण) बौद्ध भिक्षुओं की भाँति स्त्री का शत्रु नहीं था, महायानियों की भाँति छिप कर व्यभिचार नहीं करता था। जब लोक में वाममार्ग फैल गया तो उस ने वाममार्ग को भी उपासना और सिद्धि का एक अंग मात्र मान लिया।"[63] डा अम्बेडकर ने इस तरह के आरोपों का जवाब अपने लेख 'द राइज एण्ड फाल आप हिन्दू वूमैन' में देने की कोशिश की है। उस की जाँच-परख इस पुस्तक के अगले अध्याय में की जाएगी लेकिन यहाँ यह जाना जाए कि वात्स्यायन का 'कामसूत्र' निश्चित रूप से त्रिपिटक के बाद की रचना है। वेन्डी डोनिजर और सुधीर काकर ने इस का अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए भूमिका में इस के समय का निर्धारण 225 ईस्वी पश्चात किया है।[64] लेकिन अनुवादक-द्वय ने भूमिका में एक खास बात और कही है जो इस प्रकार है—"निश्चित रूप से, वात्स्यायन और अन्य प्राचीन भारतीय कामशास्त्रियों की गणना ऐसे लोगों में की जा सकती है जिन्होंने ऐसे युग में जिस में दुखमार्गी बौद्ध दृष्टि ने प्रेम के देवता को मार या मृत्यु के रूप में जान रखा था, रति सुख के झण्डे को आगे बढ़ाया।"[65] यहाँ तक इतिहास का मूल्यांकन सही है कि ब्राह्मण-दृष्टि बौद्ध-दृष्टि की विरोधी थी। लेकिन अनुवादक-द्वय यह बताना भूल गए कि आपस में एक दूसरी की विरोधी होने पर भी ब्राह्मण-दृष्टि और बौद्ध-दृष्टि दोनों ही गलत हैं। काम को ले कर ब्राह्मणों का दर्शन व्यभिचार में लिप्त होता है तो बौद्धों का दर्शन बेघर हो कर संन्यास धारण कर लेता है। परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए इन में से कोई भी सही नहीं है—काम को जारकर्म बनाने वाले भी और काम को मार कहने वाले भी। दोनों घरों से भागे फिरते हैं। मानव समाज का केन्द्र ही इन के हाथ में है। कबीर की आजीवक दृष्टि से कामसूत्र और थेरीगाथा की दोनों किताबें मनुष्य का नुकसान कर रही हैं। इसलिए ध्यान रखा जाए कि बौद्ध और ब्राह्मण एक-दूसरे के जवाब हैं लेकिन सच्चाई के जवाब नहीं। सच्चाई के हिसाब से ये दोनों दृष्टियाँ गलत हैं। व्यभिचार और संन्यास दोनों सदाचार से कोसों दूर हैं।

ऐसा नहीं है कि प्रव्रज्या ग्रहण करने के दिन ही किसी भिक्षु या भिक्षुणी को निर्वाण प्राप्त हो जाता है। थेरीगाथा में प्रमाण मिलते हैं कि वे इस वेश में 25 वर्ष तक बिना निर्वाण प्राप्त किए रही हैं। इस दौरान उन का चित्त काम भोगों में लिप्त रह कर चलायमान रहा है। इस से यह बात सिद्ध होती है कि क्यों कामसूत्र के लेखक ने भिक्षु या भिक्षुणी वेश का विश्वास नहीं किया। बहरहाल, कामसूत्र ने विश्वास नहीं किया है, बल्कि भिक्षुणियों को कामभोग के लिए नायिका के रूप में शामिल किया है।

थेरीगाथा के प्रमाण इस प्रकार हैं कि इस दौरान उन का चित्त चलायमान रहा है। 39वीं गाथा में अपरा सामा कहती हैं :

पण्णवीसतिवस्सानि, यतो पब्बजिताय मे।
नाभिजानामि चित्तस्स, समं लद्धं कुदाचनं।।[66]

—"मुझे गृहस्थ जीवन का त्याग किए पूरे पच्चीस साल हो गए, किन्तु कभी मैंने चित्त की शान्ति प्राप्त की हो, ऐसा मैं नहीं जानती।"[67]

उधर, कामसूत्र के प्रमाण हैं कि भिक्षुणियाँ कामभोग करती हैं। उन में से कुछ यहाँ दिए जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. विधवानाथाप्रव्रजिताभि सह सूत्राध्यक्षस्य।

—"विधवा, अनाथा और संन्यासिनी स्त्रियों के साथ सूत्राध्यक्ष सहवास कर सकता है।"[68]

2. सैव प्रव्रजिता षण्ठीति सुवर्णनाभः।

—"आचार्य सुवर्णनाभ का मत है कि परिव्राजिका विधवा छठे प्रकार की नायिका है।"[69]

बुद्ध हो या कोई अन्य और, भिक्षु रूप में मनुष्य की जीवन-शैली खड़ी करनी ही गलत है। यह अस्वाभाविक, अव्यावहारिक और अमानवीय भी है। ब्राह्मणों के संन्यासी हों या जैनियों के श्रमण—आजीवक समाज ऐसी जीवन-शैली को कभी नहीं अपना सकता। यदि यह अध्यात्म है तो यह अपराधों की आध्यात्मिकता है।

कामसूत्र का अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले उक्त लेखक-द्वय ने कामसूत्र को बौद्ध-ग्रन्थों से इस रूप में जोड़ा है कि कामसूत्र उन का जवाब है। लेकिन यह जवाब इसी रूप में ठहरता है कि कामसूत्र स्त्री को वेश्या बनाता है और थेरीगाथा उसे भिक्षुणी बना रही है। पत्नी का सम्मान न ब्राह्मणों के पास है और न बौद्धों के पास। घर-गृहस्थी की बात दोनों में से कोई नहीं जानता। दोनों अपनी-अपनी बारी से परिवार को कमजोर कर रहे हैं।

यह बात सही नहीं भी हो सकती कि कामसूत्र थेरीगाथा का जवाब है। लेकिन इस का उल्टा भी सच हो सकता है कि थेरीगाथा कामसूत्र का जवाब है। वात्स्यायन का कामसूत्र भले ही 225 ई. प. में लिखा गया हो लेकिन यह अपने से किसी पुरानी लम्बी परम्परा की कड़ी है। कामसूत्र में ही माना गया है कि उन से पहले इस विषय के अनेक

लेखक हुए हैं। कहना यह है कि कामसूत्र की परम्परा बुद्ध से पहले तक जाती है।

जाना जाए कि थेरीगाथा में अनोपमा की कहानी विचित्र है। वह 'साकेत नगर के मध्य नामक धनी सेठ की लड़की थी।'[70] वह कहती है—"बड़े-बड़े राजकुमारों और श्रेष्ठि के पुत्रों ने मेरे साथ विवाह के लिए प्रार्थनाएँ कीं, उत्कट लालसाएँ प्रकट कीं। उन्होंने मेरे पिता के पास दूतों को यह कह कर भिजवाया कि, "अनुपमा को हमें दो। हम तुम्हारी बेटी को तौल कर उस के आठ गुने रत्न और मुद्राएँ देंगे।""[71] मूल पालि में 'राजपुत्तेहि'[72] और 'सेट्ठिपुत्तेहि'[73] शब्द आए हैं। यदि बेटी वाले की तरफ से दहेज नहीं है तो यह नई बात है या फिर अनुपमा को वेश्याओं की तरह खरीदा जा रहा है—अन्दाज नहीं लगाया जा सकता कि सच बात क्या है।

बुद्ध के समय में वेश्यावृत्ति का क्या हाल था उस का पता थेरीगाथा की 25वीं गाथा से चलता है जो थेरी अड्ढकासि की है। वह भिक्खुणी कहती है :

> याव कासिजनपदो, सुङ्को मे तत्थको अहु।
> तं कत्वा नेगमो अग्घं, अड्ढेनग्घं ठपेसि मं।।[74]

> —"सम्पूर्ण काशी-राज्य की जितनी (एक दिन की) आय है,
> उतना ही विपुल मेरा (एक रात का) दाम था। उतना ही मूल्य,
> उस से कम नहीं, निगम के द्वारा मेरी (एक रात की) सेवाओं
> के लिए मेहनताना-स्वरूप निश्चित था।"[75]

अड्ढकासी नाम की इस स्त्री का जन्म वाराणसी के एक वैभव-सम्पन्न सेठ-परिवार में हुआ था। वह राजगृह चली गई थी और वहाँ वेश्या हो गई थी। खास बात यह है कि जबकि काशी को तीर्थ कहा जाता है, बुद्धकाल में वहाँ वेश्यावृत्ति के अड्डे होने का यह पक्का सबूत मिलता है। चूँकि, निगम के द्वारा इस वेश्या की रकम तय होती थी इसलिए पक्का सबूत यह भी है कि वेश्यावृत्ति वैधानिक थी।

थेरीगाथा से यह भी पता चलता है कि तब घरों में क्या हो रहा था—और वेश्याएँ कैसे बनती थीं। उप्पलवण्णा की गाथा में समाधान गलत है, जो एक ही है कि घर-बार छोड़ दो, लेकिन तत्कालीन सामाजिक बुराइयों के बारे में खूब पता चलता है कि तब हो क्या रहा था। डा. विमल कीर्ति ने लिखा है—"उस की सास ने उसे घर से बाहर निकाल दिया था, क्योंकि पति की अनुपस्थिति में उस को गर्भ रहा था....। उक्त स्त्री अपने पति को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते राजगृह गई और वहाँ एक धर्मशाला में उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह नहाने गई हुई थी, तो इस बच्चे को एक व्यापारी ने उठा लिया और उस का लालन-पालन किया। बाद में इस स्त्री को एक डाकू उड़ा ले गया और उस से इस की एक पुत्री हुई।"[76] इस के बाद की घटना इस प्रकार व्यक्त की गई है—"एक दिन इस पति से उस का झगड़ा हो गया और क्रोध में इस ने अपनी पुत्री को चारपाई पर दे मारा जिस से उस के सिर में चोट आ गई। पति के क्रोध से भयभीत हो कर वह वहाँ से भाग कर राजगृह आ गई और एक वेश्या की तरह रहने लगी। यहीं उस का पूर्व पुत्र उस के

पास आया, जिसे इस स्त्री के साथ अपने मातृ सम्बन्ध के बारे में कुछ पता नहीं था। वे दोनों पति-पत्नी के रूप में रहने लगे। बाद में उस स्त्री की डाकू से उत्पन्न लड़की के साथ भी इस पुरुष ने विवाह कर लिया।"[77] आगे डा. विमल कीर्ति ने लिखा है—"एक दिन उस की बड़ी स्त्री अपनी छोटी सौत के सिर को देख रही थी कि उस की चोट को देख कर पिछली बात याद आ गई और पूछताछ करने पर पता चल गया कि यह उस की पुत्री है।"[78]

विश्लेषण किया जा सकता है कि इस कहानी के सूत्र इस प्रकार चले हैं :

1. एक स्त्री गैर-मर्द से गर्भवती हुई।
2. यह बर्दाश्त से बाहर की बात थी, इसलिए सास ने उसे घर से निकाल दिया।
3. वह एक दूसरे शहर चली गई और वहाँ उस के एक पुत्र पैदा हुआ।
4. उस के पुत्र को एक व्यापारी उठा ले गया और उसे पाला-परोसा। बड़ी बात है कि उस समय के व्यापारी दूसरे की औलाद को पाल सकते हैं।
5. इस स्त्री को एक डाकू ने रख लिया।
6. डाकू से इस स्त्री के एक लड़की पैदा हुई।
7. पति-पत्नी में झगड़ा हुआ और औरत ने अपनी बेटी को चारपाई पर दे मारा।
8. यह औरत घर से भाग गई।
9. बेटी को उस डाकू पति ने ही पाला होगा।
10. वह माँ-स्त्री वेश्या बन गई।
11. व्यापारी द्वारा पाला-परोसा उस का बेटा पति के रूप में उस के जीवन में आया। इस का मतलब है कि उम्र का हिसाब नहीं रखा गया है। बेटे के रूप में पति पूरी एक पीढ़ी छोटा है।
12. इस पति ने डाकू से पैदा लड़की के साथ भी विवाह कर लिया।
13. इस का मतलब है कि एक पति दो पत्नियाँ रख सकता है और दोनों सौतें साथ-साथ रहती हैं।

नहीं लगता कि यह घरों की कहानी है। यह बदफैल औरतों की और वेश्याओं की कहानी है। जो पुरुष पति के रूप में दो औरतें रखता है, उस की कोई शालीनता नहीं है। मूल स्त्री बदचलन थी और वह पुरुष भी जिस ने उसे अनधिकृत रूप से गर्भवती किया था। उस बदमाश पुरुष की कहानी इस में नहीं दी गई कि वह कौन था—और उस का क्या हुआ। वह सिरे से खारिज है। भारत के पारिवारिक इतिहास में जार पुरुष ऐसे ही बचता आ रहा है।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-273
2. वही, पृ.-240
3. यदि मे वचनं करिस्ससि, सुखिता एहि अगारमावस। वही, पृ.-251
4. वही, पृ.-198
5. वही, पृ.-156
6. वही, पृ.-156
7. वही, पृ.-159
8. वही, पृ.-159
9. वही, पृ.-243
10. उदहारी अहं सीते, सदा उदकमोतरिं।
    अय्यानं दण्डभयभीता, वाचादोसभट्टिता ।। 236 ।। वही, पृ.-202
11. वही, पृ.-63
12. वही, पृ.-43
13. वही, पृ.-165
14. वही, पृ.-115
15. वही, पृ.-115
16. हित्वानहं ञातिगणं, दासकम्मकरानि च।
    गामखेत्तानि फीतानि, रमणीये पमोदिते ।। 341 ।। वही, पृ.-241
17. वही, पृ.-56
18. वही, पृ.-269
19. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, सम्पादक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010, द्वितीय संस्करण 1995, पृ.-769
20. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-276
21. वही, पृ.-244
22. वही, पृ.-233
23. वही, पृ.-272, 277
24. वही, पृ.-280-81
25. वही, पृ.-163
26. वही, पृ.-163
27. वही, पृ.-271
28. वही, पृ.-283
29. वही, पृ.-245
30. वही, पृ.-254
31. वही, पृ.-83
32. वही, पृ.-37
33. वही, पृ.-277
34. वही, पृ.-245
35. वही, पृ.-103
36. वही, पृ.-103
37. वही, पृ.-255
38. वही, पृ.-284
39. वही, पृ.-88
40. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-63

41. धम्मपदं, अनुवादक ड़ा. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपुर-441002, सातवां संस्करण, 14 अक्तूबर 1996, पृ.-106

42. वही, पृ.-106

43. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110 063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-199 फुटनोट

44. उर्दू-हिन्दी शब्दकोश, संकलनकर्ता, मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, सप्तम संस्करण 1992, पृ.-493

45. वही, पृ.-493

46. मलयालम-इंग्लिश-हिन्दी-निघन्टु, बी. रामकुमार, सिसो पब्लिशर्स, मेडिकल कॉलेज पो. ओ., तिरुवनन्तपुरम-695 011, फर्स्ट एडिशन, 1995, पृ.-956, इस में गुन्डर्ट के शब्दकोश का लाभ लिया गया है।

47. Dravidian Etymological Dictionary, by T. Burrow and M.B. Emeneau, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., Post Box 5715, 54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055, Ist Indian Edition 1998, Entry 3960, p.-322

48. मलयालम-इंग्लिश-हिन्दी निघन्टु, बी. राम कुमार, सिसो पब्लिशर्स, मेडिकल कॉलेज पो.ओ., तिरुवनन्तपुरम-695 011, फर्स्ट एडिशन, 1995, पृ.-949

49. नाग संस्कृति कोश, डा. अवन्तिका प्रसाद मरमट, नाग स्मृति प्रकाशन, 79, अशोक नगर, उज्जैन, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण 1997, पृ.-96

50. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक, डा. विमल कीर्ति, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-165-66

51. वही, पृ.-199

52. वही, पृ.-199

53. वही, पृ.-174

54. वही, पृ.-174

55. वही, पृ.-175

56. वही, पृ.-175

57. वही, पृ.-177

58. वही, पृ.-177

59. वही, पृ.-177

60. वही, पृ.-178

61. वही, पृ.-178

62. भगवान बुद्ध और उनका धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.24

63. महायात्रा : गाथा—भाग 2 : रैन और चन्दा, डा. रांगेय राघव, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, 56ए, जीरो रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1964, पृ.-771

64. Kamasutra : A New Translation by Wendy Doniger and Sudhir Kakar, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX 2 6 DP, Ist Edition 2002, Introduction, p.-xi, Footnote-2

65. "Vatsyayana and other ancient Indian Sexologists can centainly be viewed as flag bearers for sexual pleasure in an era where the sombre Buddhist view of life which equated the god of love with Mara or Death was still influential."
ibid, p.-xxxix

66. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण, 2003, पृ.-79

67. वही, पृ.-79

68. कामसूत्रम्, वात्स्यायन, हिन्दी व्याख्याकार, देवदत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पो. वो. नम्बर 1139, कं. 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-221001, सप्तम संस्करण वि. सं. 2060, पृ.-576
69. वही, पृ.-171
70. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-157
71 वही, पृ.-159
72. वही, पृ.-159
73. वही, पृ.-159
74. वही, पृ.-65
75. वही, पृ.-65
76. वही, पृ.-194-95
77. वही, पृ.-195-96
78. वही, पृ.-196

अध्याय–3

थेरीगाथा : हिन्दू कोड बिल की हत्या

I

डा. अम्वेडकर ने 10 अक्टूवर, 1951 को हिन्दू कोड विल के मामले पर संसद में भारत सरकार के विधि मन्त्री के पद से अपना इस्तीफा देते हुए अपने भाषण में कहा था–"इसे (हिन्दू कोड विल को) चार वर्ष तक जीवित रख कर मार डाला गया। इस की मृत्यु पर किसी ने चार आँसू तक नहीं गिराये।"[1] यह सही वात थी और इन शब्दों में उन का सच्चा दर्द उजागर हुआ था। जो वे अक्सर कहा करते थे, उन शब्दों को, सोहन लाल शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू कोड विल और डॉ. अम्वेडकर' में उद्धृत किया है–"...मुझे भारतीय संविधान के निर्माण से भी अधिक दिलचस्पी और खुशी हिन्दू कोड विल पारित करने में है।"[2] डा. अम्वेडकर ने इस विल के महत्व को इन शब्दों में वताया था–"हिन्दू कोड इस देश की विधायिका द्वारा उठाया गया अब तक के सब से वड़े समाज सुधार का काम था। इस के महत्व की तुलना में भारत की विधायिका ने न तो कभी अतीत में कोई कानून पारित किया है और न भविष्य में ही पारित किए जाने की संभावना है।"[3]

अव यह वात वताई जाए कि डा. अम्वेडकर ने थेरीगाथा को पढ़ा था। ऐसा इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि उन्होंने इस पुस्तक से अपने साहित्य में उद्धरण दिए हैं। यह मई 1950 की वात है जव कलकत्ते से 'महावोधि' के अंक में उन का अंग्रेजी लेख 'द राइज एण्ड फाल ऑफ हिन्दू वूमैन' छपा था। तव उन के पास थेरीगाथा का अंग्रेजी में 'साम्स आफ द सिस्टर्स' के शीर्षक से अनुवाद था। अपने लेख में वे 11वीं थेरीगाथा से, जो मुत्ता की कथा है, उद्धृत करते हैं–"अच्छी मुक्त हो गई हूँ! मैं अच्छी तरह मुक्त हो गई हूँ!"[4] इस के वाद उन्होंने व्राह्मण पुत्री मेत्तिका के शब्द उद्धृत किए हैं जो 24वीं थेरीगाथा में आते हैं। उद्धृत शब्द इस प्रकार हैं–"....मैं पर्वत की चोटी पर बैठ गई। वहीं मेरा चित्त मुक्त हो गया।"[5] इस के वाद उन्होंने अपने इस लेख में

सोमा की थेरीगाथा को भी उद्धृत किया है।[6] उन्होंने इस लेख में 'थेरीगाथा' की प्रस्तावना लिखने वाली मिसेज रीज डेविड्स को भी, कई बार उन की प्रस्तावना से, प्रशंसात्मक रूप में उद्धृत किया है।[7]

डा. भदन्त आनन्द कौसल्यायन बताते हैं कि डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में भी थेरीगाथा तथा थेरी-गाथा अट्ठकथा को उद्धृत किया है।[8] किसा-गौतमी की थेरीगाथा को जो 63वें नम्बर की है, डा. अम्बेडकर ने अपनी उक्त पुस्तक में 'किसा-गौतमी को संतोष' के शीर्षक के अन्तर्गत सविस्तार दिया है।[9]

अब पूछना यह है कि जो डा. अम्बेडकर संसद के भीतर हिन्दू कोड बिल के लिए लड़ रहे थे वे संसद के बाहर स्त्रियों के मामले में थेरीगाथा के कैसे हो गए। फर्क यह है कि जबकि डा. अम्बेडकर भारत की आजाद संसद में हिन्दू कोड बिल के द्वारा विवाह में नारी के तलाक लेने की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे थे, थेरीगाथा में बुद्ध इन थेरियों के लिए घर, विवाह और परिवार को छुड़वा रहे थे। यह फर्क है और भारी फर्क है। किसी भी सम्यक और बौद्धिक मूल्यांकन में इस बात को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता कि नारी-मुक्ति की ये दोनों धाराएँ अलग-अलग हैं।

अच्छा है या बुरा है, कोई प्रशंसा कर सकता है या एतराज उठा सकता है—लेकिन ब्राह्मण के पास अपने धर्म के साथ-साथ विवाह और उत्तराधिकार आदि का एक पूरा पर्सनल कानून है। उस ने राज्य और कानून के भी नियम बना रखे हैं। लेकिन पूरे बौद्ध धर्म का पर्सनल कानून कहाँ है? जब बौद्ध धर्म विदेशों में फैला था तो यह धर्म के साथ-साथ अपना कौन-सा पर्सनल कानून उन-उन देशों में ले गया था? भारत में इस्लाम एक धर्म के रूप में आया तो अपना एक विशिष्ट पर्सनल कानून भी साथ में लाया है। ईसाई धर्म हमेशा अपने साथ अपना पर्सनल कानून आगे ले कर चलता है। एक क्षत्रियों द्वारा खड़े किए गए भारत के तीनों—बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म—ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने पर्सनल कानून तैयार करने की जरूरत नहीं समझी।

इस का मतलब यह है कि पर्सनल कानूनों के काम को या तो इन्होंने ब्राह्मण धर्म के हाथ में छोड़ दिया है या लोक-व्यवहार पर। तभी ऐसा हो सका है कि आज के हिन्दू पर्सनल कानून में हिन्दू की परिभाषा यह की गई है कि उस में बौद्ध, जैन और सिक्ख सम्मिलित हैं। तब यदि हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म को अपने विभिन्न धार्मिक पंथ कह देता है तो उसे ऐसा कहने से कैसे रोका जा सकता है? असल में, हिन्दू कानून के बनाने में अड़चन यह नहीं थी कि बौद्ध विरोध कर रहे थे या जैन विरोध कर रहे थे या सिक्ख विरोध कर रहे थे। विरोध इन धर्मों का सन्दर्भ दिए बिना दलित-पिछड़ों तथा द्विजों के बीच का था। जब सिक्खों ने विरोध करना चाहा था तो बाबा साहेब डा. अम्बेडकर ने ही उन के नेतृत्व और प्रतिनिधियों से पूछा था कि हिन्दू कानून से बाहर रहने के लिए, बताइए, आप का अपना अलग पर्सनल कानून कहाँ है। तब इस के जवाब में उन्हें चुप रहना पड़ा था। उस समय बाबा साहेब ने बौद्ध धर्म को

भी एक पंथ ही माना था। बात भी सही है, बुद्ध के सौ-सौ साल बाद भिक्षुओं ने तीन संगीतियाँ खड़ी करके त्रिपिटक तैयार कर लिया पर किसी ने बाद तक की शताब्दियों में भी पर्सनल कानून का चौथा पिटक तैयार नहीं किया। इस के लिए देश-विदेश में कभी कोई धर्म-संगीति नहीं बैठी। बौद्ध धर्म के संसार में फैलने ने उन-उन देशों के समाजों में उन के पर्सनल कानूनों को न तो बदला और न छेड़ा। समाजों को बदल कर उन्हें एक करने की यह ताकत केवल इस्लाम और ईसाइयत ने दिखाई है।

डा. अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल पर बोलते हुए 6 फरवरी, 1951 को संसद में कहा था—"पहली बात जिस पर मैं जोर देना चाहूँगा और यह भी चाहूँगा कि उसे सांसदगण अपने ध्यान में रखें, वह यह है कि समाजशास्त्रीय दृष्टि से हम भारत में या अन्यत्र जो धर्मों की विभिन्नताएँ पाते हैं उन के दो वर्गीकरण पाते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं जो कानूनी व्यवस्था को अपना अंग मानते हैं और उस कानूनी व्यवस्था को उन से अलग नहीं किया जा सकता। कुछ धर्म ऐसे हैं जिन के पास कानूनी व्यवस्था जैसी नाम की कोई चीज ही नहीं है, वे केवल पंथ के मामले मात्र हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ, हिन्दू धर्म की विशेषता यह है कि यह एक ऐसा धर्म है जिस का कानूनी ढाँचा इस के साथ एकमेक हो कर जुड़ा हुआ है। यही बात सब से ज्यादा ध्यान में रखने की जरूरत है। यदि कोई इस बात को समझ जाता है तो फिर उस के लिए यह समझना मुश्किल नहीं रह जाएगा कि सिक्खों को हिन्दू धर्म में क्यों लाया गया है, बौद्धों को हिन्दू धर्म में क्यों लाया गया है और जैनियां को हिन्दू धर्म में क्यों लाया गया है।"[10]

इस के बाद डा. अम्बेडकर खासमखास बुद्ध पर ही बोले थे। यह अच्छा हुआ कि बुद्ध को ले कर यह बात उन की दृष्टि में बहुत साफ थी। उतने ही साफ शब्दों में उन्होंने इसे रखा भी है जो इस प्रकार है—"बुद्ध का वैदिक ब्राह्मणों से मतभेद पंथगत मामलों तक सीमित था। बुद्‌ध ने अपने अनुयायियों के लिए कोई पृथक कानूनी व्यवस्था खड़ी नहीं की थी; उन्होंने कानूनी व्यवस्था को ज्यों की त्यों छोड़ दिया था।"[11]

इस के बाद डा. अम्बेडकर एक दूसरी बात कहते हैं जिस की जरूरत नहीं थी। उन्होंने बुद्ध के बारे में कहा था—"हो सकता है कि उस समय जो कानूनी व्यवस्था लागू थी वह अच्छी रही हो, कि उस में कोई दोष या कमियाँ न रही हों। इसलिए, उन्होंने कुछ धार्मिक मामलों में जो बदलाव किए, उन के परिणामस्वरूप अपना ध्यान कानूनी व्यवस्था में बदलाव लाने की तरफ नहीं लगाया।"[12]

यही बात उन्होंने महावीर और सिक्ख गुरुओं के बारे में भी कही। वे अपनी बात जारी रखते हुए कहते हैं—"इसी प्रकार, जब महावीर ने अपने धर्म की स्थापना की तो उन्होंने जैनियों के लिए नई कानूनी व्यवस्था नहीं बनाई। उन्होंने पहले की कानूनी व्यवस्था को जारी रखने की अनुमति दी और मैं समझता हूँ, यदि मैं गलत हूँ तो सरदार हुकम सिंह मेरी बात में सुधार करेंगे जब मैं कहता हूँ कि दस गुरुओं में से किसी ने भी कभी सिक्खों के लिए कानून की कोई किताब तैयार नहीं की।"[13] इस के बाद उन्होंने

अपनी पहली कही हुई ये बातें इन शब्दों में पुनः दोहराई—"मुश्किल है, इसे आप मुश्किल कह सकते हैं; इसे आप सौभाग्य कह सकते हैं; इसे आप दुर्भाग्य कह सकते हैं; मुझे शब्दों से कुछ नहीं लेना—लेकिन सच यही है। इस देश में, यद्यपि धर्म बदले हैं, लेकिन कानून एक रहा है।"[14]

तभी पूछा जा रहा है कि थेरीगाथा में यह स्त्री की कौन-सी स्वतन्त्रता है और उस के किस दुख का निवारण है जिस पर डा. अम्बेडकर इतने खुश हुए हैं कि बौद्ध धर्म अपना लिया। सब कुछ जानते हुए उन के द्वारा ऐसे कैसे हुआ?

थेरीगाथा की किसा गोतमी कहती है—"जो ऐसा कहते हैं कि "स्त्री होना दुक्ख है" ऐसे मनुष्यों के चित्त को संयमी बनाने वाले उन सारथी-स्वरूप (भगवान बुद्ध) ने कहा है—...सपत्नियों के साथ एक घर में रहना दुक्ख है, बच्चों को ....जनना दुक्ख है।"[15] "कोई-कोई....जनने वाली माताएँ एक बार ही मृत्यु चाहती हुई अपना गला काट लेती हैं ताकि दुबारा यह असह्य दुक्ख न सहना पड़े। कुछ सुकुमारियाँ विष खा लेती हैं। बच्चा जब पैदा नहीं होता और गर्भ बीच में रुक जाता है तो भ्रूण मातृघातक बन जाता है और जच्चा और बच्चा दोनों-के-दोनों ही विपदा महसूस करते हैं।"[16]

यह बात सही है कि सौतों के साथ रहना दुख है। लेकिन ऐसा नहीं है कि हर औरत के साथ सौत लगी होती है। यह सम्भव नहीं है। फ्रेडरिक एंगेल्स ने सही कहा है—"सामाजिक संस्थाएँ जो भी रही हों, पुरुषों और स्त्रियों की संख्या अभी तक, मोटे तौर पर, सदा बराबर रही है.... ।"[17] उन्होंने आगे लिखा है—"बहु-पत्नी विवाह केवल धनिकों तथा अभिजात लोगों का विशेषाधिकार है.... । आम लोगों के पास एक-एक पत्नी होती है।"[18] फिर, यदि पति बहु-पत्नियाँ रखते हैं तो इस गलत प्रथा को मिटाने की कोशिश की जानी चाहिए थी। यह खुद बुद्ध का काम था कि परिवार में ऐसे सुधारा और बदलाव लाते। वे समाज और परिवार की समकालीन प्रथाओं को ज्यों की त्यों स्वीकार करके भाग क्यों रहे हैं? बहु-पत्नी प्रथा का दुख स्थायी कैसे रह सकता है? डा. अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल की बहस की वजह से आज के हिन्दू कानून में बहु-पत्नी प्रथा समाप्त कर दी गई है। बुद्ध ने यह काम करने का बीड़ा क्यों नहीं उठाया था? इस के बाद यदि बच्चे को जन्म देने के सुख को ही बुद्ध माँ का स्त्री के रूप में दुख मानते हैं तो क्या किया जाए? तब आगे की कोई भी बहस रुक ही जानी चाहिए। उन्होंने ऐसी स्त्री का उदाहरण दिया है कि इस वेदना की वजह से कई स्त्रियाँ अपना गला काट लेती हैं। क्या उपदेश दिया जा रहा है कि इसी दुख की वजह से कुछ कुमारियाँ जहर खा लेती हैं! किस दुनिया की बात हो रही है? कभी प्रसव बिगड़ जाया करता है तो आज का चिकित्सा-विज्ञान उसे सफल बनाने में हमारी बेहद सहायता करता है। हम बुद्ध की सुनें या मेडिकल साइंस की सुनें—? किसा गोतमी ने अपनी गाथा में जो पटाचारा की जीवन कथा के अंश सुनाए हैं वे नारी-जीवन के दुक्खों को दिखाने के लिए सही उद्धरण नहीं हैं। वे दुख पुरुषों पर भी आ पड़ते हैं। पर बुद्ध का उपदेश यही है कि तब पुरुष भी

घर से भागें। हिन्दुस्तान के प्राचीन लोग इसी विहार की ओर घर से भगने और भगाने में राष्ट्र को खो बैठे थे।

II

डा. विमल कीर्ति ने 'थेरीगाथा' की भूमिका में लिखा है—"नारी के लिए एक मात्र गृहस्थ-जीवन ही विकल्प नहीं है।"[19] पहली दृष्टि में उन का यह कथन सही प्रतीत होता है। इस से लगता है कि नारी दूसरे काम कर सकती है। पर ऐसे वे कौन-से काम हैं जो नारी गृहस्थ रहते हुए नहीं कर सकती? बात नारी तक सीमित नहीं है, पुरुषों के लिए भी वे कौन-से काम हैं जो वे गृहस्थ रहते हुए नहीं कर सकते? किसी नारी या पुरुष की व्यक्तिगत रुचि की बात हो सकती है कि उसे गृहस्थ जीवन में रमना ज्यादा अच्छा नहीं लगता। लेकिन तब वह अपने जीवन की प्रतिशतता के छोटे भाग को गृहस्थ के लिए दे सकता है। लेकिन यदि कोई नारी या पुरुष गृहस्थ के विरोध में ही खड़ा हो जाता है तो मनोविज्ञान की भाषा में उसे मानसिक बीमार कहा जा सकता है लेकिन वह सच में समाज का अपराधी है। सवाल यह है कि नारी अपने लिए गृहस्थ जीवन के बजाय कई दूसरे विकल्प खोल ले लेकिन उन नए विकल्पों में से एक यह गृहस्थ जीवन का नाश क्या है। थेरीगाथा की इस पूरी पुस्तक में गृहस्थ जीवन का विरोध और अपमान भरा हुआ है। एक गाथा में भी परिवार को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा गया। एक तरह से इन औरतों में घर से दूर जाने की भागमभाग और खीचमखीच लगी हुई है। कहीं घरों में पहले से आग लगी हुई है तो कहीं जानबूझ कर बसे-बसाए घरों को उजाड़ा जा रहा है।

परिवार की और समाज की हर समस्या का समाधान बेघर होने का दे कर बुद्ध ने भारतीय समाज का और उस के विकास का बहुत नुकसान किया है। वे समाज में किसी बदलाव होने की संभावना को रोक कर खड़े हो गए हैं। भिक्षु या भिक्षुणियाँ बन कर पुरुष और स्त्रियाँ मनुष्य के किसी सरोकार की चीजें नहीं रह जाते। यह अनहोनी घटित हुई थी कि शेष समाज अपने शोषण, दासप्रथा और अस्पृश्यता समेत ज्यों का त्यों यथावत चलता रहेगा। घर के भीतर स्त्री की स्वतन्त्रता का बिगुल नहीं बजाया गया बल्कि घर छुड़वा कर संन्यास की अलग से नपीरी बजाई गई है। यह व्यवस्था में दखल नहीं थी बल्कि व्यवस्था से भाग जाना था। यदि स्त्री और पुरुष भिक्षुणी और भिक्षु न बन कर घरों की व्यवस्था को ले कर लड़ते तो जारकर्म और बलात्कार पर रोक लगती। वे उस लड़ाई में शहीद भी हो जाते तो उस शहादत का महान अर्थ निकलता—लेकिन अब भिक्षु और भिक्षुणियाँ बन कर वे अपने पेटों में ही मुक्के मार कर रह गए हैं। इसे समस्या का समाधान कौन कहेगा?

थेरीगाथा में एक भी स्त्री को यह सलाह नहीं दी गई कि वह अपने पति से दुखी होने के कारण दूसरे व्यक्ति से पुनर्विवाह कर ले। किसी वेश्या को यह आदेश या उपदेश

नहीं दिया गया कि वह वेश्यावृत्ति के कलंकित धन्धे को छोड़ कर विवाह रचा ले। बुद्ध का पूरा धर्म विवाह की व्यवस्था के खिलाफ खड़ा है। बुद्ध के दर्शन की शुरूआत ही इस जगह से शुरू होती है कि जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी होने के कारण जन्म ही दुख का कारण है। निर्वाण प्राप्ति के चक्कर में खुद बुद्ध घर को छोड़ कर भागे ही थे।

बात भी ठीक है, जिस दर्शन में जन्म ही दुख का कारण है, उस में जन्म के बाद मृत्यु तक के बीच में विवाह, पति और पत्नी सुख के कारण कैसे माने जा सकते हैं? यही थेरीगाथा का लब्बोलुबाब है। ये स्त्रियाँ नहीं हैं, भिक्षुणियाँ हैं। इन में गृहस्थ जीवन की स्त्रियों का एक भी गुण नहीं है। यह ऐसे ही है, जैसे भिक्षुओं में भी गृहस्थ जीवन के पुरुषों का कोई गुण शेष नहीं रहता। यह एक भिन्न समाज है—और संन्यासियों तथा संन्यासिनियों का समाज है। भिक्षु संघ एक क्लब की तरह है जिस के सदस्यों के लिए नियम बने हुए हैं। लेकिन हमें क्लब नहीं चाहिए, समाज चाहिए। यदि बुद्ध एक नया और समानान्तर भिक्षु-संघ बनाते जो बाल-बच्चों समेत अपने आप में आत्म-निर्भर और पूर्ण होता तो बात समझी जा सकती थी। उन के भिक्षु संघ की कमी और अव्यावहारिकता यह है कि वह बच्चे पैदा नहीं करता और अपनी रोटियों के लिए भिक्षु-संघ से बाहर के समाज पर निर्भर रहता है।

यहाँ डा. अम्बेडकर के संन्यास पर विचार जाने जा सकते हैं।

हिन्दू स्वामी करपात्री बाबा साहेब डा. अम्बेडकर के हिन्दू कोड बिल का जबर्दस्त विरोध कर रहे थे। इस विरोध के लिए उन्होंने एक आन्दोलन ही चला रखा था। इस पर डा. अम्बेडकर ने हिन्दू स्वामी करपात्री के बारे में सोहन लाल शास्त्री से कहा था—"संन्यासी के लिए उन के (हिन्दू) धर्मशास्त्रों में ही लिखा है कि सांसारिक कामों को त्याग कर, आत्मचिन्तन करें और लोगों को आत्मचिन्तन का उपदेश दें।...उन्हें क्या आवश्यकता है कि वह हिन्दू कोड के विरुद्ध आन्दोलन चलाएँ। यह गृहस्थियों के लिए बनाए जाने वाले सामाजिक नियम हैं। एक संन्यासी को ऐसी उलझनों में फँसने का क्या काम? वह संसार तथा सांसारिक झमेलों को त्याग चुके हैं। उन की बला से कोई तलाक लेता है या देता है, यह राजनीति का प्रश्न है।"[20] यहाँ डॉ. अम्बेडकर की यही बात मुझे बुद्ध के बारे में और उन की इन औरस पुत्रियों थेरियों के बारे में दोहरानी है। ये सारी की सारी घर छोड़ कर बेघर हो गई हैं। इन पर विवाह का, तलाक का, उत्तराधिकार, भरण-पोषण और गोद का कोई नियम लागू नहीं है। दलित इन का क्या करें—और इन से क्या उपदेश और सीख लें? हमारे सन्त भी कमा कर खाते हैं। हमारे सन्तों ने कभी संन्यास का वरण नहीं किया। लेकिन ये थेरियाँ केवल घर तोड़ने और छोड़ने की बात कर रही हैं। उपदेश के नाम पर इन की जबान पर दूसरा कोई शब्द नहीं है।

इन में से एक भी स्त्री का पुनर्विवाह नहीं कराया गया। इस पुस्तक में यह नहीं माना गया कि तुम्हारा पति अलग से खराब है बल्कि यह माना गया है कि हर पति मूलतः खराब होता है। इस सिद्धान्त में, उधर पति को उपदेश देकर भिक्षु बनाते समय

भी यह नहीं माना गया कि अमुक पत्नी खराब है, बल्कि यह माना गया है कि हर पत्नी खराब होती है। बुद्ध के दर्शन में विवाह की व्यवस्था को ही स्त्री और पुरुष के लिए दूषित माना गया है। डॉ. अम्बेडकर की पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड ह्विज धम्मा' में भी प्रकृति नामक चाण्डाली कन्या के साथ हुए वार्तालाप में बुद्ध इसी दर्शन का प्रचार करते हैं। दुख की बात है कि बुद्ध के इस विवाह-विरोधी वार्तालाप को डा. अम्बेडकर ने बड़े गर्व से अपनी पुस्तक में स्थान दिया है।

कहानी लम्बी है जिस में प्रकृति नाम की चाण्डाल कन्या बुद्ध के शिष्य आनन्द से अपना विवाह रचाना चाहती है। जब बात बुद्ध के सामने पहुँची तो प्रकृति का सीधा तर्क था—"मैंने सुना है कि वह अविवाहित है। मैं भी अविवाहित हूँ।"[21] बात फिर लम्बी बढ़ी। उसे काट कर यहाँ रखा जा रहा है जो डा. अम्बेडकर ने स्वयं दी है :

"31. तथागत ने कहा—"आखिर तू चाहती क्या है? उस के शरीर का कौन सा हिस्सा है जिस से तुझे प्रेम है?" लड़की बोली—"मैं उस की नाक से प्यार करती हूँ। मैं उस के मुँह से प्यार करती हूँ। मैं उस के कानों से प्यार करती हूँ। मैं उस की आवाज से प्यार करती हूँ(।) मैं उस की आँखों से प्यार करती हूँ। मैं उस की चाल से प्यार करती हूँ। "

"32. तब तथागत बोले—"क्या तुम जानती हो कि आँखें आँसुओं का अड्डा मात्र हैं। नाक सींढ़ का घर है। मुँह में थूक ही भरा रहता है। कानों में मैल ही मैल होता है और शरीर मल-मूत्र का खजाना मात्र है।"

"33. जब स्त्री-पुरुष सहवास करते हैं वे बच्चों को जन्म देते हैं। जहाँ जन्म है, वहीं मृत्यु भी है। जहाँ मृत्यु है वहीं दुःख भी है। लड़की! मैं नहीं जानता कि आनन्द से शादी करके तू क्या पायेगी?"[22]

तो, यह कुल बुद्ध-वचन है और डा. अम्बेडकर इसे गर्व से उद्धृत कर रहे हैं। विवाह की बात खत्म करके वह भिक्षुणी-संघ में ले ली गई। बुद्ध उस की प्रशंसा इन शब्दों में कर रहे हैं—"भाग्यवान है हे प्रकृति! यद्यपि तू चाण्डाल-कन्या है किन्तु तू श्रेष्ठ पुरुषों और स्त्रियों के लिए आदर्श का काम देगी। तू 'नीच' जाति की है सही, लेकिन ब्राह्मण तुझ से शिक्षा ग्रहण करेंगे।.... तेरी कीर्ति राज-सिंहासन पर बैठी हुई रानियों की कीर्ति से बढ़ जायगी।"[23]

सो तो ठीक है, कीर्ति बढ़ ही रही है जो उस का नाम आज भी हम तक आया है। लेकिन मेरा कहना यह है कि उस की कीर्ति पचास गुनी बढ़ती यदि बुद्ध आनन्द के साथ उस का विवाह करा देते। वह सच्ची सामाजिक क्रान्ति होती—लेकिन उसे ही तो बुद्ध और उन के ब्राह्मण पिछले ढाई हजार सालों से रोक कर बैठे हुए हैं। बुद्ध की चाहत

पूरी हुई कि वह भिक्षुणी बन गई, कहीं यदि प्रकृति की चाहत पूरी हुई होती कि एक चाण्डाल कन्या क्षत्रिय आनन्द से विवाह कर लेती तो इस देश का सामाजिक और राजनैतिक इतिहास बदल गया होता।

यह बुद्ध से सम्बन्धित बात हुई लेकिन डा. अम्बेडकर की सोच ऐसी कैसे चली? उन्होंने बुद्ध द्वारा वर्णित शरीर का ऐसा घृणित वर्णन कैसे बर्दाश्त कर लिया? क्या यह सोच सही है जो बुद्ध ने मनुष्य के शरीर के बारे में दी है? क्या इसे दलित लोग स्वीकार कर सकते हैं? संसार की हर माँ अपने बच्चों को इसी रूप में पालती है जिस रूप में बुद्ध को मनुष्य के शरीर से जुगुप्सा पैदा हो रही है। इसलिए, प्रकृति नाम की चाण्डाल-कन्या की दीक्षा में बुद्ध द्वारा किया गया देह और विवाह का यह वर्णन घिनौना, अवास्तविक और अवांछनीय है। कम से कम डा. अम्बेडकर को इसे अपनी पुस्तक में नहीं रखना चाहिए था। डा. अम्बेडकर का ऐसी सोच से क्या मतलब कि 'मुँह में थूक ही भरा रहता है'[24] और 'नाक सींढ़ का घर है।'[25] बच्चे फूल से हाथ में आते हैं। यदि स्त्री मनुष्य के बारे में ऐसा सोचने लगी तो बच्चों को कौन पालेगा? उन्हें कौन नहलाए-धुलाएगा और कपड़े पहनाएगा? पुरुष भी स्त्री के बारे में ऐसा क्यों सोचेगा कि वह उसे तोहफे में मिला सबसे सुन्दर गुलाब नहीं है? स्त्री के बालों का मुंचन और मुंडन इसलिए क्यों करवाया जा रहा है कि अन्यथा वह सुन्दर लगने लगेगी? आकर्षण को जान बूझ कर क्यों मिटाया जा रहा है?

एक प्रश्न और है जिस की जानकारी सब से ज्यादा खुद डा. अम्बेडकर को है। उन्होंने इसे अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' के 'परिचय' में उठाया है। वे लिखते हैं—"दूसरी समस्या चारों आर्य-सत्यों से ही उत्पन्न होती है। प्रथम सत्य है दुख आर्य सत्य? तो क्या यह चारों सत्य भगवान बुद्ध की मूल शिक्षाओं में समाविष्ट होते हैं? जीवन स्वभावतः दुःख है, यह सिद्धान्त जैसे बुद्धधर्म की जड़ पर ही कुठाराघात करता प्रतीत होता है। यदि जीवन ही दुःख है, मरण भी दुःख है, पुनरुत्पत्ति भी दुःख है, तब तो सभी कुछ समाप्त है। न धर्म ही किसी आदमी को इस संसार में सुखी बना सकता है और न दर्शन ही। यदि दुःख से मुक्ति ही नहीं है तो फिर धर्म भी क्या कर सकता है और बुद्ध भी किसी आदमी को दुःख से मुक्ति दिलाने के लिए क्या कर सकते हैं क्योंकि जन्म ही स्वभावतः दुःखमय है।"[26] इस के बाद वे पूछते हैं—"प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या यह चारों आर्य सत्य भगवान बुद्ध की मूल शिक्षा में ही हैं अथवा ये बाद का भिक्षुओं द्वारा किया गया प्रक्षिप्तांश है?"[27] अब यदि ये प्रक्षिप्त अंश हों तो तब डा. अम्बेडकर उन्हें अपनी पुस्तक में गर्व से उद्धृत क्यों कर रहे हैं? उन्होंने ही प्रकृति नामक चाण्डाल कन्या से बुद्ध का वचन उद्धृत किया है जिसे यहाँ एक बार पुनः दोहराया जा सकता है—"जब स्त्री-पुरुष सहवास करते हैं तो बच्चों को जन्म देते हैं। जहाँ जन्म है, वहीं मृत्यु भी है। जहाँ मृत्यु है वहीं दुःख भी है। लड़की! मैं नहीं जानता कि आनन्द से शादी करके तू क्या पायेगी?"[28] यहाँ जन्म ही दुःख सिद्ध हो रहा है। साथ ही,

यहाँ एक बात और कही जा सकती है कि जिस जगह अनुवाद करते समय भदन्त आनन्द कौसल्यायन 'पुनरुत्पत्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह डा. अम्बेडकर के मूल अंग्रेजी पाठ में rebirth है जिस का अनुवाद 'पुनर्जन्म' किया जाना चाहिए था, न कि 'पुनरुत्पत्ति'।

III

किसी की बात वहाँ तक ठीक है कि सेक्स को ले कर स्त्रियों और पुरुषों में, स्त्रियों और स्त्रियों में तथा पुरुषों और पुरुषों में झगड़े होते हैं। बुद्ध ने भी इन सम्बन्धों को ले कर झूठ-तूफान, मारकाट और हत्या-आत्महत्या के नजारे देखें होंगे। यह बात भी बिलकुल सही है कि इन वजहों से परिवार और समाज का सारा वातावरण अशान्त हो जाता है। लेकिन उन की यह समझ एकदम गलत थी कि इस अशान्ति से बचने के लिए घर-परिवारों को छोड़ और तोड़ दिया जाए। ये तो बसाए जाने थे। सेक्स और सन्तान की उत्पत्ति के लिए हम कुत्ते-बिल्ली और बन्दरों तथा लंगूरों की तरह ऊधम नहीं मचा सकते। हम घोड़ों और गधों के सेक्स-सम्बन्धों से अलग मनुष्य हैं। ऐसे मनुष्य ने भोजन के मामले में भी अन्य सभी जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों से अपनी अलग पहचान बनाई है। पर इस अलग पहचान के लिए घर-बार छोड़ना किसने बताया? हम अपनी सेक्स-सम्बन्धी समस्याओं को कानून और उस की शिक्षा के द्वारा राज्य और दण्ड के द्वारा सही रास्ते पर ला सकते हैं। और चूँकि मानव समाज विकास कर रहा है, इसलिए समय के अनुसार अपनी परिभाषाओं, लक्ष्यों और आदर्शों की तुलना और उनमें परिवर्तन करते जाएँगे। इस कार्य में दुनिया को छोड़ कर भाग जाना किसने बताया?

परिवार को ले कर बुद्ध के चिन्तन का नुकसान यह हुआ कि पारिवारिक व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन और उस का सही विकास नहीं हो सका। परिवार विकसित होते-होते बुद्ध को जिस रूप में या विभिन्नताओं में मिला उन्होंने उसे वहीं तक या उन्हीं अवस्थाओं तक रूढ़ और रुद्ध करके घर छोड़ने का रास्ता अपनाया। यह निहायत गैर-जरूरी सोच थी। परिवार के लिए वे कोई आदर्श नहीं दे सके बल्कि परिवार को ही मिटा दिया। यह कोई सोच नहीं है, यह कोई अच्छा दर्शन नहीं है। इस के मूल्यांकन में इस की प्रशंसा नहीं की जा सकती।

मेरे एक मित्र ने एक बौद्ध से पूछ लिया कि बुद्ध काम क्या करते थे। मेरे मित्र प्राध्यापक हैं।उस बौद्ध ने उन से पूछा कि आप क्या करते हैं। मित्र ने जवाब दिया कि मैं टीचर हूँ और पढ़ाता हूँ। बौद्ध व्यक्ति ने कहा कि यही काम बुद्ध करते थे। मेरे मित्र ने उन्हें जवाब दिया कि मेरा एक प्रक्रिया के तहत योग्यता के आधार पर चयन हुआ है। लेकिन मेरा कहना इस से ज्यादा है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि बुद्ध जो शिक्षा देते थे वह परिवार को तोड़ने वाली थी। वह शिक्षा ही गलत थी क्योंकि बुद्ध ने व्यवहार में भी अपने घर को छोड़ रखा था। मेरा कहना है, वह व्यवहार भी गलत था—उन के सिद्धान्त और व्यवहार में एकरूपता थी लेकिन एकरूपता समेत उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों गलत थे।

एक सवाल यह जरूर बचा रहता है कि इतनी स्त्रियाँ भिक्षुणियाँ कैसे बन गईं? स्त्रियों को घर से बेघर करने में बुद्ध सफल कैसे हुए? लेकिन इस प्रश्न का उत्तर भी ब्राह्मणों के समाज का अध्ययन करने से मिल सकता है। सवाल ब्राह्मणों से पूछा जाना चाहिए कि वे अपने समाज में इतनी वेश्याएँ कैसे रख सके। यदि बौद्धों के पास भिक्षुणी-समाज है तो ब्राह्मणों के पास वेश्या-समाज है। किसी भी सभ्य समाज में वेश्या को सम्मान से नहीं देखा जा सकता। लेकिन यह ब्राह्मणी समाज की व्यवस्था रही है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में मन्त्री के रूप में एक पृथक गणिका-अध्यक्ष का पद सृजित कर रखा है। इसलिए, जिस समाज में वेश्या को सम्मान दिया जा रहा हो, उस में वेश्या को अपमानित करने के लिए भिक्षुणी को सम्मान देना वाजिब ही है। समाज जब सच्चाई से कटता है तो किसी भी ऐल-फैल या अति को फैशन भी बना लेता है। हाँ, यहाँ यह कहना गलत न होगा कि वेश्या और भिक्षुणी सदाचार की सच्चाई से कटे हुए समाज के दो विपरीत फैशन ही थे। आजीवकों की दृष्टि से इन बुराइयों को भेड़ाचाल कहा जा सकता है।

चन्दा नाम की विधवा ब्राह्मणी की कथा अकथ है। वह निस्संतान भी थी। उसने अपनी गाथा विधवा के रूप में ही कही है। इस का मतलब यह है कि विधवा ब्राह्मणी का पुनर्विवाह नहीं हो सकता था। वह अपने दुख का सच्चा बयान करती है। वह कहती है :

दुग्गताहं पुरे आसिं, विधवा च अपुत्तिका।
विना मित्तेहि ञातीहि, भत्तचोळस्स नाधिगं।। 22।।[29]

—"मैं विधवा और निस्संतान, पहले बड़ी मुसीबतों में पड़ी थी। मेरे मित्र और अपना कहने वाला कोई नहीं था, जाति वाले मेरे कोई नहीं थे। मुझे भोजन और वस्त्र मिलना भी आसान नहीं था।"[30]

पत्तं दण्डञ्च गण्हित्वा, भिक्खमाना कुला कुलं।
सीतुण्हेन च डय्हन्ती, सत्त वस्सानि ञ्चारिहं।। 23।।[31]

—"मैं एक हाथ में लकड़ी और दूसरे हाथ में भिक्खापात्र लेकर घर-घर भिक्खा माँगती फिरती थी, गर्मी और सर्दी से व्याकुल हुई, मैं सात वर्ष तक इसी प्रकार घूमती रही।"[32]

सच्ची जरूरत है, ऐसी स्त्रियों के लिए समाज की तरफ से कुछ किया जाना चाहिए। उस के ब्राह्मण समाज ने उसे घर-घर की भिखारिन बना कर छोड़ दिया। न उस का पुनर्विवाह किया और न उस के खाने-पीने का कोई अन्य इन्तजाम। समाज भूल जाए लेकिन ऐसी स्त्रियों के लिए राज्य की तरफ से कोई सहायता जरूर पहुँचनी चाहिए। यदि राज्य और समाज में से कोई भी इन लोगों की चिन्ता नहीं करता तो यह सच में शोचनीय स्थिति है।

संदर्भ

1. हिन्दू कोड बिल और डा. अम्बेडकर, सोहन लाल शास्त्री, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली-110063, पृ.-135
2. वही, पृ.-12
3. "The Hindu Code was the greatest social reform measure ever undertaken by the Legislature in the country. No law passed by the Indian Legislature in the past or likely to be passed in the future can be compared to it in point of its significance."
Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and speeches, Vol. 14, Part Two, Edited by Vasant Moon, Education Department, Govt. of Maharashtra, Mumbai-400032, Ist Edition, 6 December, 1995, p.-1325
4. The Rise and Fall of Hindu Woman, B.R. Ambedkar, Bheem Patrika Publications, Nakodar Road, Jalandhar-144003, Edition 10 September 1988, p.-19
5. ibid., p.-19
6. ibid., p.-19
7. ibid., pp. 19-20
8. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-419, 422
9. वही, पृ.-449-50, 457
10. "The first thing that I would like to emphasize and which I would like Members of Parliament to bear in mind is this, that from a sociological point of view the variety of religions that we have in India or elsewhere seems to me to fall into two categories. There are religions which have as their part a legal system, which you cannot sever from those religions. There are religions which have no legal system at all, which are just pure matters of creed. The peculiarity about the Hindu religion, as I understand it, is this, that it is the one religion which has got a legal framework integrally associated with it. Now, it is very necessary to bear this thing in mind, because if one has a proper understanding of this, it would not be difficult to understand why Sikhs are brought under the Hindu religion, why Buddhists are brought under the Hindu religion and why Jains are brought under the Hindu religion."
Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings And Speeches, Vol. 14, Part Two, Edited by Vasant Moon, Education Department, Govt. of Maharashtra, Mumbai-400 032, Ist Edition, 6 December 1995, p.-887
11. "When the Buddha differed from the *Vedic Brahmins*, his difference was hinted to matters of creed. The Buddha did not propound a separate legal system for his own followers; he left the legal system as it was."
ibid., p.-887
12. "It may be that the legal system that then prevailed was a good system; that it had no blemishes and no faults. So, he did not direct his attention to making any changes in the legal system in consequence of the changes that he introduced in certain religious notions."
ibid., pp.-887-88
13. "In the same way, when Mahavir founded his own religion he did not create a new legal system for the Jains. He allowed the legal system to continue

and I think Sardar Hukam Singh will correct me if I am wrong when I say that none of the ten Gurus ever created a law book as such for the Sikhs." ibid., p.-888

14. "The trouble is–you may call it trouble; you may call it good fortune; you may call it misfortune; I am not particular about words – the fact is this. In this country, although religions have changed, the law has remained one." ibid., p.-888

15. दुक्खो इत्थिभावो, अक्खातो पुरिसदम्मसारथिना।
सपत्तिकम्पि हि दुक्खं, अप्पेकच्चा सकिं विजातायो।।216।।
थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-189

16. गलके अपि कन्तन्ति, सुखुमालिनियो विसानि खादन्ति।
जनमारकमज्झगता, उभोपि व्यसनानि अनुभोन्ति।। 217।।
वही, पृ.-189

17. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स : संकलित रचनाएँ, खण्ड-3, भाग-2, हिन्दी अनुवाद, प्रगति प्रकाशन, 21, जूवोव्स्की बुलवार, मास्को, सोवियत संघ, संस्करण 1978, पृ.-71-2

18. वही, पृ.-72

19. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, भूमिका, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-20

20. हिन्दू कोड विल और डॉ. अम्वेडकर, सोहन लाल शास्त्री, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली-110063, चतुर्थ संस्करण, 2003, पृ.-22

21. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डॉ. भीमराव रामजी आम्वेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय वौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, वलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-154

22. वही, पृ.-155
23. वही, पृ.-156
24. वही, पृ.-155
25. वही, पृ.-155
26. वही, परिचय, पृ.-24
27. वही, परिचय, पृ.-24
28. वही, पृ.-155

29. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-142

30. वही, पृ.-142
31. वही, पृ.-142
32. वही, पृ.-142

भाग—दो



अध्याय—4

बुद्ध क्षत्रिय थे

क्या मुझे यहाँ वह प्रसंग उठाना चाहिए कि बुद्ध क्षत्रिय थे? सवाल इसलिए वाजिब है क्योंकि कई लोगों ने मेरी इस मान्यता को ही चुनौती दी है कि बुद्ध क्षत्रिय थे। वे बुद्ध को क्षत्रिय नहीं मानना चाहते।

मैं उस बहस को लम्बी नहीं करना चाहता कि बुद्ध के क्षत्रिय न होने के उन के तर्क क्या हैं। वे मेरे मित्र हैं और मेरे विरोधी नहीं हैं। मेरा मतलब भी बुद्ध के क्षत्रिय होने से वहीं तक है जहाँ तक खुद बाबासाहेब डा. अम्बेडकर ने उन्हें क्षत्रिय कहा है। वे 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ अच्छी तरह से जानते थे क्योंकि 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' लिखने से पहले वे अपनी ऐतिहासिक खोज पर आधारित पुस्तक 'हू वर द शूद्रास'? हाऊ दे केम टु बी द फोर्थ वर्णा इन द इन्डो-आर्यन सोसाइटी' लिख चुके थे।

आगे मुझे बाबा साहेब डा. अम्बेडकर की पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' से ही उद्धरण देने हैं जिस में उन्होंने बुद्ध को क्षत्रिय लिखा है। मुझे मूल अंग्रेजी पुस्तक से ही उद्धरण देने चाहिए क्योंकि तब शंका की कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी। लेकिन, चूँकि मैं अपनी यह पुस्तक हिन्दी में लिख रहा हूँ और हिन्दी में बाबा साहेब की इस पुस्तक का अनुवाद उपलब्ध है इसलिए मैंने अनुवाद को ही देने के लिए यहाँ सुभीते के लिए चुना है। अनुवाद बौद्ध विद्वान भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है जिसे प्रामाणिक मानने में कुछ अपवादों को छोड़ कर ज्यादा कठिनाई नहीं होनी चाहिए। थोड़ी-बहुत अनुवाद में चूक हुई है तो उसे मैंने संभाल भी लिया है। इस के लिए सावधानी यह बरती गई है कि जहाँ मूल अंग्रेजी में 'क्षत्रिय' शब्द आया है तभी हिन्दी में 'क्षत्रिय' होने पर उसे रक्खा गया है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने ऐसा भी किया है कि जहाँ मूल अंग्रेजी में क्षत्रिय शब्द न आ कर दूसरा समानार्थी शब्द आया है, उस का अनुवाद भी 'क्षत्रिय' कर दिया है। प्रमाण की दृष्टि से ऐसा अनुवाद अप्रामाणिक है। लेकिन नीचे मैं प्रामाणिक अनुवाद ही दे रहा हूँ। लेकिन भदन्त आनन्द कौसल्यायन इस वजह से फिर सही हो सकते हैं कि मूल पालि में या संस्कृत में शब्द 'खत्तिय' या 'क्षत्रिय'

ही रहा हो, जिस का अंग्रेजी में अनुवाद warrior या noble कर दिया गया हो और बाबा साहेब ने उसे warrior या noble ही रहने दिया हो। खैर, मैंने उन्हें मूल से मिलाने की कोशिश नहीं की, कारण, मेरा उद्देश्य उस के बिना भी पूरा हो जाता है।

विषय बुद्ध की आरम्भिक प्रवृत्तियों का है। बुद्ध की शान्त और अहिंसक प्रवृत्तियों से उन की माँ प्रजापति गौतमी बड़ी चिन्तित हो उठी थीं। डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिया गया माँ का और बेटे का यह संवाद इस प्रकार है :

"16. वह उससे तर्क करती—"तुम भूल गए हो कि तुम एक क्षत्रिय कुमार हो। लड़ना तुम्हारा "धर्म" है। शिकार के माध्यम से ही युद्ध-विधा में निष्णात हुआ जा सकता है, क्योंकि शिकार करके ही तुम ठीक-ठीक निशाना लगाना सीख सकते हो। शिकार-भूमि ही युद्ध-भूमि का अभ्यास क्षेत्र है।"

17. लेकिन सिद्धार्थ बहुधा गौतमी से पूछ बैठते, "तो माँ! एक क्षत्रिय को क्यों लड़ना चाहिए?" और गौतमी का उत्तर होता, "क्योंकि यह उसका धर्म है।"

18. सिद्धार्थ उस के उत्तर से सन्तुष्ट न होता। वह गौतमी से पूछता—"माँ! यह तो बता कि आदमी का आदमी को मारना एक आदमी का ही 'धर्म' कैसे हो सकता है?" गौतमी उत्तर देती—"यह सब तर्क एक संन्यासी के योग्य है। लेकिन क्षत्रिय का तो 'धर्म' लड़ना ही है। यदि क्षत्रिय भी नहीं लड़ेगा तो राष्ट्र का संरक्षण कौन करेगा।"

19. "लेकिन माँ! यदि सब क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे को प्रेम करें तो क्या बिना कटे-मरे वे राष्ट्र का संरक्षण कर ही नहीं सकते?" गौतमी निरुत्तर हो जाती।"[1]

अपने मित्रों की सन्तुष्टि और इस अनुवाद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए कुछ शब्द मैं बाबा साहेब अम्बेडकर की मूल अंग्रेजी पुस्तक से ही रख रहा हूँ जो इस प्रकार हैं :

16. She used to argue with him saying : "You have forgotten that you are a Kshatriya and fighting is your duty."[2]

एक अन्य प्रकरण 'बिदाई के शब्द' का है। सिद्धार्थ ने स्वीकार किया है कि वह प्रव्रज्या लेगा। लेकिन उस के पिता शुद्धोधन और उस की माता प्रजापति गौतमी उस के इस फैसले से सहमत नहीं हैं। प्रजापति गौतमी सिद्धार्थ से कहती है कि 'तुम हम सब को इस प्रकार छोड़ कर अकेले कैसे जा सकते हो?' माँ-बेटे का वह संवाद इस प्रकार है :

"10. सिद्धार्थ ने सान्त्वना दी—"माँ ! क्या तुमने हमेशा क्षत्राणी होने का दावा नहीं किया? क्या यह ऐसा ही नहीं है? तुम्हें वीरता का त्याग नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दुखी होना तुम्हारे लिए अशोभनीय है। यदि मैं युद्ध-भूमि में गया होता और वहाँ जा कर मर गया होता तो तुम क्या करती? क्या तव भी तुम इसी प्रकार दुःखी हुई होती।"

11. गौतमी वोली—"नहीं, यह तो एक क्षत्रिय के योग्य होता। लेकिन अव तुम लोगों से दूर जंगल में जंगली जानवरों के साथ रहने जा रहे हो। हम यहाँ शान्त कैसे रह सकते हैं? मैं यही कहती हूँ कि तुम हमें भी साथ ले चलो।"[3]

यहाँ पुनः अपने मित्रों की सन्तुष्टि के लिए वावा साहेव अम्बेडकर की अंग्रेजी पुस्तक से कुछ मूल शब्द रखना उचित रहेगा। वे इस प्रकार हैं :

"10. Siddharth Said : "Mother, have you not always claimed to be the mother of a Kshatriya ? Is that not so? You must then be brave. This grief is unbecoming of you."[4]

वावासाहेव ने वुद्ध के गोत्र के वारे में लिखा है—"The Gotra of the Family was Aditya."[5]—अर्थात, "परिवार का गोत्र आदित्य था।"[6] यदि किसी को आदित्य का पूरा अर्थ जानना हो तो उसे मोनियर विलियम्स की 'ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी' की मदद लेनी चाहिए। 'आदित्य' सूर्य से सम्वन्धित है। इस का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है जो आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ है। अर्थ इस प्रकार है—"relating or belonging to or coming from the Adityas, R.V. i. 105"[7]

वावा साहेव डा. अम्वेडकर सिद्धार्थ के पिता शुद्धोधन का परिचय इन शब्दों में देते हैं—"शुद्धोधन वड़ा धनी आदमी था। उस के पास वहुत वड़े-वड़े खेत थे और नौकर-चाकर भी अनगिनत थे। कहा जाता है कि अपने खेतों को जोतने के लिए उसे एक हजार हल चलवाने पड़ते थे।"[8] "वह वड़े अमन-चैन की जिन्दगी वसर करता था। उस के कई महल थे।"[9]

इससे आगे मैं अपनी वातों के वजाय एम. सी. राज के तर्क आगे रखना चाहता हूँ। उन्होंने धर्म ग्रन्थ के रूप में अंग्रेजी में एक पुस्तक 'दलितोलोजी : द वुक आफ द दलित प्योपल' लिखी है। लेखक ने लिखा है कि यह पुस्तक उन्होंने अम्वेडकर युग के पहले और दूसरे साल में लिखी है। इस अम्वेडकर युग की शुरूआत और घोषणा भी उन्होंने स्वयं की है जो 10 जनवरी 2000 का दिन है।[10] इस से साफ जाहिर है कि वे डा. अम्वेडकर का वेहद सम्मान करते हैं लेकिन डा. अम्वेडकर के वौद्ध धर्म को अपनाने के वारे में एम. सी. राज के क्या विचार हैं? वे लिखते हैं—"हम वावा साहेव अम्वेडकर की धर्मों के वारे में लम्वी खोज के परिणामस्वरूप उन के द्वारा वौद्ध धर्म ग्रहण करने

के निर्णय का सम्मान करते हैं जो उन्होंने दलित जनता के उत्पीड़न के इतिहास के अध्ययन में अटकलों के आधार पर लिया था। चूँकि, उन्होंने यह मान लिया था कि दलित लोग शुरूआत में बौद्ध थे इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म में धर्मान्तरण किया था। वे अपने निर्णय में पूर्णतः ईमानदार थे। लेकिन हमें सोचना चाहिए कि यदि बाबा साहेब ने अपनी खोज में कोई भूल की थी तो वे गलत निर्णय पर ही पहुँचे थे।''[11]

इस के बाद एम. सी. राज ने संक्षेप में बताया है कि बौद्ध धर्म दलित समुदायों के अनुकूल नहीं है। इस का रास्ता दलितों की जीवन-शैली से बहुत दूर का है। न ही बौद्ध धर्म इस की अपनी बौद्धिकता के मुकाबले में भावात्मक है। इस में सैद्धांतिक कमी यह है कि यह इच्छा को दुख का कारण मानकर चलता है। इस में अन्य धर्मों की तरह व्यक्तिवादी सिद्धान्त की गूंज है।[12]

अन्त में उन्होंने बिना ज्यादा लम्बी धार्मिक और दार्शनिक बहस में पड़े कहा है कि 'यदि हमें बाबा साहेब के बौद्ध धर्म सम्बन्धी निर्णय पर आलोचनात्मक ढंग से सोचने की जरूरत पड़े तो उस कार्य को करने का हम में भरपूर साहस होना चाहिए लेकिन इस साहस दिखाने में अपने महान नेता के प्रति असम्मान भावना नहीं होनी चाहिए।'[13]

बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के ऐतिहासिक दृष्टि से शूद्रों को क्षत्रिय ठहराने और फिर उसी तर्क पर धार्मिक दृष्टि से बुद्ध धर्म को अपनाने के निर्णय को हिन्दी के एक लेखक मेहर सिंह पूषण ने भी गलत ठहराया है। इस के लिए उन्होंने अपनी 'मूलवंशी और बौद्ध-धर्म' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है। मुख्य रूप से उन्होंने डा. अम्बेडकर के पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का खण्डन किया है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त का खण्डन करने में उन से कुछ चूक भी हुई है लेकिन उस चूक की वजह से डा. अम्बेडकर के सिद्धान्त का बचाव नहीं किया जा सकता। मेहर सिंह पूषण की उस चूक समेत डा. अम्बेडकर का पुनर्जन्म के बचाव का कोई भी तर्क स्वीकार्य नहीं हो सकता।

खैर, पुनर्जन्म के विषय को इस पुस्तक के अगले अध्यायों में कुछ तफसील से रखा जाएगा। यहाँ मेहर सिंह पूषण के उन विचारों को बताया जा सकता है जो उन्होंने बुद्ध के विवाह-विरोधी प्रवचन के खिलाफ रखे हैं। यहाँ उन से डा. अम्बेडकर को उन की पुस्तक 'भगवान बुद्ध और उन का धर्म' से उद्धृत करने में कोई चूक भी नहीं हुई है। प्रकरण वही प्रकृति नामक चण्डाल कन्या और आनन्द के विवाह के सम्बन्ध का है जिस में 'तथागत की बात सुन कर प्रकृति ने आनन्द से विवाह करने का विचार त्याग दिया'[14] था। मेहर सिंह पूषण ने इस पर वही प्रतिक्रिया जाहिर की है जो एम. सी. राज द्वारा बताई गई दलितों की जीवन-शैली से मेल खाती है। वे लिखते हैं—''बौद्ध धर्मियों की दृष्टि में यह बहुत बड़ी उपलब्धि हो सकती है। लेकिन समाज और संसार के व्यवहार पर विचार कीजिये और चिन्तन कीजिये इस से घटिया और घिनौनी बात कोई दूसरी नहीं हो सकती। क्योंकि यदि स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण समाप्त हो गया तो समाज में घृणा उत्पन्न होगी। यदि स्त्री पुरुष से और पुरुष

स्त्री से घृणा करने लगां तो नई सृष्टि नहीं होगी। यदि स्त्री पुरुष की नाक, आँख और शरीर को घृणां का खजाना समझने लगेगी तो वैवाहिक विचारों का त्याग ही नहीं करेगी बल्कि वह घृणा करने लगेगी तो नयी सृष्टि नहीं होगी। घृणा से समाज में अलगाव और निराशा होगी क्योंकि तथागत ने प्रकृति को समझाते हुए यह भी कहा है कि जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु है और जहाँ मृत्यु है वहाँ दुख है, इसलिए वैवाहिक सम्बन्ध व्यर्थ है। यदि मानव उत्पत्ति को ही दुख का कारण मान लिया जाये तो मानव उत्पत्ति का सिलसिला ही रुक जायेगा। क्या मानव उत्पत्ति को रोक कर समाज एक कदम भी आगे चल सकेगा? क्या नई सृष्टि की कल्पना की जा सकती है? यदि सृष्टि नहीं होगी तो समाज ही नहीं होगा। यदि समाज नहीं होगा तो इन प्राणहीन सिद्धांतों का क्या होगा।"[15] वे आगे लिखते हैं, "सहवास और आकर्षण प्राकृतिक गुण हैं। यह सभी जीव जन्तुओं में पाया जाता है—जो स्त्री पुरुषगमन से वंचित रहती है और सांसारिक कार्यो से अलग रहती है उस का सामाजिक मूल्यांकन कीजिये और चिन्तन कीजिये। आप पायेंगे कि बौद्ध धर्म के सिद्धान्त समाज का अधोपतन ही हैं। यदि सम्पूर्ण समाज इन्हें स्वीकार कर ले और बौद्ध बन कर भिक्षु संघ बना ले तो समाज का विनाश निश्चित है।"[16]

मेहर सिंह पूषण की उपरोक्त बातों को सही ठहराते हुए पुनः एम. सी. राज के दृष्टिकोण पर आया जाए। दलितों की जीवन-शैली को ठीक तरह से समझने में चूक एम.सी. राज से भी हुई है लेकिन डा. अम्बेडकर तो बौद्ध धर्म को अपना कर अपनी परम्परा से ही कट गए हैं। एम. सी. राज ने मातृसत्ता पर सारा जोर दे दिया है लेकिन डा. अम्बेडकर की बौद्ध थेरियाँ तो मातृसत्ता और पितृसत्ता दोनों को ही तिलांजलि दे बैठी हैं।

संदर्भ

1. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-12
2. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches : Vol. 11 : The Buddha And His Dhamma, Education Department, Government of Maharashtra, Bombay-400 032, 4th Edition 1991, p.-11
3. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ-29
4. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches : Vol. 11 : The Buddha And His Dhamma, Education Department, Governemt of Maharashtra, Bombay-400 032, 4th Edition 1991, p.-30
5. ibid., p.-2
6. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-4

7. A Sanskrit-English Dictionary, M. Monier-Williams, Motilal Banarsidass, 41 U.A., Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110 007, Reprint 1997, p.-137
8. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-4
9. वही, पृ.-4
10. Dalitology : The Book of the Dalit People, M.C. Raj, Ambedkar Resource Centre, Rural Education for Development Society, REDS Road, Shanthinagar, Tumkur-572102, Karnataka, India, Year of Publication 2001, p.-48
11. "We respect the decision of Babasaheb Ambedkar to become a Buddhist based on his prolonged research into religions and his surmises on the history of the objugation of the Dalit people. Since Babasaheb took a stand that the Dalit people were originally Buddhists he also connected himself to Buddhism. He was absolutely honest in his decision. However, we must realize that if Babasaheb had made a mistake in his research then he could have arrived at a wrong conclusion."
ibid., p.-525
12. "...its way of life is far removed from Dalit way of life. The expression of Buddhist doctrine also heavily concentrates on intellectual, doctrinal dimensions. Such a heavy one-sided focus on intellecutal dimension with corresponding absence of emotive dimension do not make it possible for the Dalit communities to identify themselves with Buddhism. The doctrinal flaw in Buddhism is its pointing to desire as the cause of suffering. Like other dominant religions Buddhism has an individualistic doctrinal streak."
ibid., p.-525
13. "Therefore, if there is a need for us to critically look at Babasaheb's decision about Buddhism we should have the courage to do so without bringing any disrespect to our great leader."
ibid., p.-526
14. मूलवंशी और बौद्धधर्म, मेहर सिंह पूषण, रमा पूषण प्रकाशन, जैन धर्मशाला, नई बस्ती, बिजनौर, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1-3-1993, पृ.-81
15. वही, पृ.-81
16. वही, पृ.-81

अध्याय–5

'गोत्र ले कर चलने वाले जनों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं'[1]

जे. एच. हटन अपनी पुस्तक 'भारत में जातिप्रथा' में लिखते हैं–"एक जातक कथा में दो ब्राह्मण कन्याओं ने जो नगर के दरवाजे पर खेल रही थीं, दो चंडालों को देख लिया। वे तुरन्त वहाँ से भाग गईं और पानी से धो कर उन्होंने अपनी आँखों की अस्पृश्यता मिटाई।"[2] इस उद्धरण से क्या सिद्ध होता है? इस से यह सिद्ध होता है कि जातक काल के समाज में ब्राह्मणी व्यवस्था के चाण्डाल मौजूद थे। अस्पृश्यता को ले कर दीघ निकाय (2.4.1) के घटिकार सुत्त से एक अन्य उद्धरण लिया जा सकता है। इस में लिखा गया है–"वेहलिंग ग्राम निगम में घटिकार नामक कुम्भकार (कुम्हार) भगवान काश्यप का अग्र उपस्थाक (प्रधान सेवक) रहता था। घटिकार कुम्भकार का जोतिपाल नामक माणवक (ब्राह्मण तरुण) प्रियमित्र था।"[3] इस में आगे लिखा गया है–"घटिकार कुम्भकार ने शिर से नहाए जोतिपाल माणवक के केश पर हाथ फेर कर यह कहा–"सौम्य जोतिपाल! यह पास में...दर्शन साधु-सम्मत है।' तव आनन्द! जोतिपाल माणवक, को यह हुआ–आश्चर्य भो! अद्भुत भो! जो कि यह घटिकार कुम्भकार इतरजाति (नीच जाति) का होते भी शिर से नहाए हमारे केश को छू रहा है। यह छोटी वात न होगी।"[4]

अव इस चर्चा को आगे बढ़ाया जा सकता है कि एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में मृगारमात्ता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे। उस समय वाशिष्ठ और भारद्वाज नाम के दो ब्राह्मण उन से प्रव्रज्या लेना चाहते थे। तव भगवान ने वाशिष्ठ को सम्वोधित किया–"वाशिष्ठ, तुम तो ब्राह्मण जाति और ब्राह्मण कुल के हो। ब्राह्मण कुल से घर से वेघर हो प्रव्रजित होना चाहते हो। वाशिष्ठ, क्या तुम्हें ब्राह्मण लोग नहीं निंदते हैं? क्या तुम्हारी हँसी नहीं उड़ाते हैं?" पूछने पर वाशिष्ठ वताते हैं कि ब्राह्मण लोग उन की क्या कह कर निंदा करते हैं और हँसी उड़ाते हैं–"भन्ते, ब्राह्मण लोग कहते हैं–ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, दूसरे वर्ण हीन हैं, ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं; ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं; ब्राह्मण ही ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए पुत्र ब्रह्मजात, ब्रह्मनिर्मित और ब्रह्मदायाद हैं। सो तुम लोग श्रेष्ठ वर्ण से गिर कर नीचे हो गए। ये

मुन्डी, श्रमण, नीच (इब्भ), कृष्ण, भ्रष्ट और ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हैं।"[5] तब भगवान बुद्ध उन से कहते हैं—"वाशिष्ठ, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं।" फिर भगवान बुद्ध कहते हैं कि ब्राह्मणों में भी धार्मिक और अधार्मिक लोग होते हैं, क्षत्रियों में भी अच्छे और बुरे लोग होते हैं। वैश्यों में भी जीव हिंसा करने वाले और जीव हिंसा न करने वाले लोग होते हैं तथा शूद्रों में भी प्रशंसित कार्यों को करने वाले और निन्दित कार्यों को करने वाले लोग होते हैं। वे कहते हैं—"इन्हीं चार वर्णों में जो भिक्षु अर्हत, क्षीणास्रव, ब्रह्मचारी, कृतकृत्य, भारमुक्त, परमार्थ प्राप्त, भव-बंधन मुक्त, ज्ञानी और विमुक्त होता है, वह सभी से बढ़ जाता है, धर्म से ही अधर्म से नहीं।"[6] बुद्ध आगे और कहते हैं—"वाशिष्ठ, इस प्रकार भी जानना चाहिए कि धर्म ही मनुष्य में श्रेष्ठ है। वाशिष्ठ, नाना जाति के, नाना नाम के, नाना गोत्र के, नाना कुल के, तुम लोग घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हो।"

भगवान बुद्ध के इस उपदेश से क्या अर्थ निकलता है? इस से यही अर्थ निकलता है कि समाज के क्षेत्र में चारों वर्णों को अनछेड़ और बरकरार रखते हुए बुद्ध ने धर्म के क्षेत्र में पाँचवें भिक्षु वर्ण को प्रतिष्ठित कराने की कोशिश की है। यूँ, बुद्ध ने चार वर्ण नहीं तोड़े बल्कि उन में पाँचवाँ भिक्षु वर्ण जोड़ा है। साथ ही, हिन्दू धर्म ने कभी पाँचवें वर्ण को मान्यता नहीं दी है। हिन्दुओं के यहाँ चार वर्ण ही माने गए हैं। पंचम वर्ण की बात बार-बार सामने आती है लेकिन उन्हें वर्णब्राह्य ही कहा गया है। वे आखिर में अन्त्यज और अस्पृश्य बना दिए गए हैं। लेकिन बुद्ध ने यह पाँचवाँ वर्ण कहाँ से बनाया है? वे इसे विदेश से नहीं लाए। उन्होंने समाज के पहले चार वर्णों में से ही पाँचवाँ वर्ण बनाया है। यदि वे ऐसा न करते तो उन का भिक्षु संघ इतना बड़ा भी न हो सकता था। यदि वे भिक्षु बनने की प्रक्रिया को केवल ब्राह्मणों या क्षत्रियों तक सीमित कर देते तो उन का भिक्षु संघ बाकी समाज में लोकप्रिय नहीं हो सकता था। अगला प्रश्न है, बुद्ध ने भिक्षु बनाने की प्रक्रिया में क्या शर्त जोड़ी थी? वह शर्त यह थी कि भिक्षु बनने में किसी मनुष्य को अपने घर से बेघर होना पड़ता था और उसे सम्पत्ति छोड़नी पड़ती थी। तब उस का परिवार उस से छूट जाता था। पर क्या बुद्ध ने एक परिवार छुड़वा कर भिक्षु के रूप में व्यक्ति का दूसरा निजी परिवार बनवाया था? नहीं, बुद्ध ने ऐसा कुछ नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति को भिक्षु संघ दिया था, कोई नया परिवार नहीं। बुद्ध ने इतना ही किया था कि शूद्र भी भिक्षु बन सकता है। बुद्ध शूद्र को हिन्दू धर्म का संन्यासी नहीं बना सके। वे हिन्दू धर्म की संन्यास व्यवस्था में छेड़छाड़ नहीं कर सके। उन्होंने भिक्षु के नाम से अपना अलग संन्यास खड़ा किया।

पर क्या उस समय शूद्र सच में धार्मिक नहीं बन सकते थे? क्या उस समय भी उनका अपना धार्मिक विश्वास नहीं था? क्या वे इन बातों पर नहीं सोचते होंगे कि मृत्यु क्या है और जन्म क्या है? सृष्टि क्या है और ईश्वर क्या है? चाँद और सितारे क्या हैं, भूत और बलाय क्या हैं? कोई भी मनुष्य जीवधारी इन प्रश्नों से अछूता नहीं रह सकता।

जव शूद्र को ब्राह्मण धर्म में इन विषयों पर सोचने की मनाही रही थी तो शूद्र ने तब भी इन विषयों पर सोचना वन्द नहीं किया होगा। शूद्रों का अपना कोई धर्म होगा जिस में रह कर वे सोचते रहे होंगे। हाँ, उन के उस धर्म का ब्राह्मण धर्म से कोई नाता नहीं रहा होगा। इस में यह हो सकता है कि वे अपने धार्मिक विश्वास की खातिर घर-बार न छोड़ते होंगे। वे ऐसा चाहते भी न होंगे। इसे यूँ समझा जा सकता है कि शूद्रों में अनुमत विवाह को पिशाच विवाह बताया गया है। पिशाच विवाह का मतलब है कि वर सोती हुई या नशे में धुत्त वधू को चोरी से ले जाएगा। लेकिन यह ऐसा शूद्रों को वदनाम करने के लिए कहा गया है। तव भी शूद्र लोग समाज में सव से अधिक संख्या में रहे थे। इतने बड़े समाज के विवाह इस प्रकार नहीं होते रहे होंगे जैसी हिन्दू शास्त्रों ने सूचना दी है। हाँ, शूद्रों के विवाह में कोई संस्थागत धार्मिकता नहीं रही होगी। बिरादरी के लोग या पंच ही सब कुछ कर देते होंगे। आज भी चमारों की बारात में कोई साधु जाता है तो उस की भी विवाह के संस्कार में कोई भूमिका नहीं होती। वह साधु एक बाराती बन कर जाता है और इस के सिवा कुछ नहीं। रात में संस्कार के समय वह बारात के साथ सोता रह सकता है और दोनों ओर के बड़े-बूढ़ों के सामने विवाह का संस्कार सम्पन्न किया जा सकता है। फिर भी, यदि शूद्रों के विवाह में कोई धार्मिक संस्कार किया जाता होगा तो वह धार्मिकता शूद्रों की अपनी होती होगी और ब्राह्मणों की नहीं। यूँ, शूद्रों का कोई न कोई धार्मिक विश्वास अवश्य रहा है। कम से कम किसी मनुष्य को एक दार्शनिक बनने से नहीं रोका जा सकता।

बुद्ध ने चार वर्णों की उत्पत्ति की वात भी कही है। ब्राह्मण इसे एक तरीके से कहते हैं लेकिन बुद्ध इसे दूसरे तरीके से कहते हैं। बुद्ध ने ब्राह्मण से पहले क्षत्रिय की उत्पत्ति की वात कही है। समाज में चावल की चोरी होने लगी थी। कुछ आलसी लोग ऐसी चोरी करने लगे थे। ऐसे चोरों को पकड़ने के लिए महाजनों द्वारा सम्मत होने से 'महासम्मत महासम्मत' क्षत्रिय की उत्पत्ति हुई। जिन्होंने स्वयं चोरी करनी छोड़ दी, उन्हें ब्राह्मण कहा गया। उन्हीं प्राणियों में कितने लोग मैथुन कर्म कर के नाना कार्यों में लग गए। वे वैश्य कहलाए। उन्हीं प्राणियों में बचे कुछ क्षुद्र आचार वाले प्राणी थे। 'क्षुद्र आचार' करने वाले शूद्र कहलाए।[7]

बुद्ध ने वाशिष्ठ से ब्रह्मा सनत्कुमार की गाथा भी दोहराई है और उस गाथा पर अपनी मोहर लगाते हुए कहा है—"यह गाथा सनत्कुमार ने ठीक ही कही है, वेठीक नहीं कही। सार्थक कही, अनर्थक नहीं। इस का मैं भी अनुमोदन करता हूँ।"[8] लेकिन यह गाथा क्या थी? इस में दो बातें थीं—

1. गोत्र ले कर चलने वाले जनों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं।
2. जो विद्या और आचरण से युक्त है, वह देव मनुष्यों में श्रेष्ठ है।[9]

भगवान बुद्ध ने अम्बष्ठ माणवक को यह बात अच्छी तरह समझाई है कि गोत्र ले कर चलने वालों में क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं। उन्होंने बताया है कि यदि क्षत्रिय कुमार ब्राह्मण

कन्या से सहवास कर के पुत्र उत्पन्न करता है तो उस पुत्र की ब्राह्मणों में मान्यता होगी लेकिन क्षत्रियों में नहीं। ब्राह्मण लोग उस पुत्र को श्राद्ध, स्थालि-पाक, यज्ञ या पाहुनाई में अपने साथ खिलाएंगे, उसे वेद मन्त्र भी वचाएंगे, उसे ब्राह्मण स्त्री पाने में भी रुकावट नहीं होगी, लेकिन क्षत्रिय लोग उसे क्षत्रिय अभिषेक से अभिषिक्त नहीं करेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मण कुमार द्वारा क्षत्रिय कन्या के साथ सहवास करने से उत्पन्न पुत्र की स्थिति है। वह पुत्र ब्राह्मणों में आसन पाएगा, ब्राह्मण उसे श्राद्ध, स्थालिपाक, यज्ञ या पाहुनाई में अपने साथ खिलाएंगे। ब्राह्मण उसे वेद मन्त्र भी वचाएंगे, उसे ब्राह्मण स्त्री पाने में भी रुकावट नहीं होगी। लेकिन उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिषेक से अभिषिवत्त नहीं करेंगे। पहला पुत्र माता की ओर से ठीक नहीं है तो दूसरा पुत्र पिता की ओर से ठीक नहीं है। वे कहते हैं—''स्त्री की ओर से भी, पुरुष की ओर से भी क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मण हीन हैं।''[10] बुद्ध ने उदाहरण दे कर यहाँ तक कहा है--''जव वह क्षत्रियों में परम नीचता को प्राप्त है, तव भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ हैं, ब्राह्मण हीन हैं।''[11] प्रगति प्रकाशन, मास्को द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'भारत का इतिहास' में इस अन्तर को जान कर स्वीकार किया गया है। उस में लिखा गया है—''ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वप्रथम स्थान ब्राह्मणों और उन के वाद क्षत्रियों का है, जवकि वौद्ध ग्रन्थों में ब्राह्मण क्षत्रियों के वाद दूसरे स्थान पर आते हैं।''[12] पुनः कहा जाए कि बुद्ध के अनुसार, जो विद्या और आचरण से युक्त हैं, वह देव मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, पर वह कौन है और कव तक ऐसा रहता है? बुद्ध ने कहा है—''अनुपम-विद्या-आचरण सम्पदा को जातिवाद नहीं कहते, नहीं गोत्रवाद कहते, न ही मान-वाद—'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहते हैं। जहाँ अम्वष्ठ, आवाह-विवाह होता है...., वहीं यह जातिवाद...., गोत्रवाद...., मानवाद, 'मेरे तू योग्य है', 'मेरे तू योग्य नहीं है' कहा जाता है।''[13] यहाँ स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि बुद्ध ने जातिवाद बन्धन, गोत्रवाद वन्धन, मानवाद वन्धन और आवाह-विवाह वन्धन को ज्यों का त्यों छोड़ दिया है। उन के अनुसार यदि भिक्षु वनना है तो इन सव को छोड़ना पड़ेगा। पर तव व्यक्ति घर और परिवार को ही छोड़ देता है। निष्कर्ष में, बुद्ध ने व्यक्ति को घर और परिवार से मुक्ति का रास्ता दिखाया है, जातिवाद और गोत्रवाद से नहीं।

सामाजिक समस्या का यह समाधान नहीं है। यह सामाजिक वन्धनों को नष्ट करने का बुद्ध का कोई उत्तर नहीं है। बुद्ध कहते हैं कि भिक्षु बनो तो जातिवाद नष्ट हो जाएगा जबकि सवाल यह है कि विना भिक्षु बने भी जातिवाद को नष्ट किया जाना है। बुद्ध का कहना है कि यदि घर को नहीं छोड़ोगे तो जातिवाद का वन्धन नहीं छूट सकता। उन के अनुसार, विना घर छोड़े जातिवाद से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। लेकिन, इधर की शर्त यह है कि समाज जाति बन्धनों के लिए सुरक्षित और निरापद जगह नहीं रहनी चाहिए। समाज एक ही तरह का नहीं रहता। हिन्दू समाज में चार वर्ण हैं लेकिन दूसरे समाज में चार वर्ण नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि समाज में रहते हुए जाति वंधन से नहीं लड़ा जा सकता। बुद्ध उस व्यक्ति के लिए क्या सन्देश देंगे जो भिक्षु भी

नहीं बनना चाहता और जाति बन्धन से भी लड़ना चाहता है? वास्तव में, बुद्ध के पास ऐसे व्यक्ति के लिए कोई नया उपदेश नहीं है। उलटे, बुद्ध ने यह भी बताया है कि ब्राह्मण बनाने वाले धर्म क्या-क्या हैं। सामदण्ड ब्राह्मण बुद्ध से कहते हैं कि ब्राह्मण होने के पाँच लक्षण हैं—(1) ब्राह्मण दोनों ओर से सुजात हो, (2) अध्यापक वेदपाठी मन्त्रधर त्रिवेद पारंगत हो, (3) अभिरूप दर्शनीय अत्यन्त गौर वर्ण से युक्त हो, (4) शीलवान हो, और (5) पंडित, मेधावी, यज्ञ दक्षिणा ग्रहण करने वालों में प्रथम या द्वितीय हो।"[14] बुद्ध अपनी बात मनवाते हैं कि यदि कोई व्यक्ति शीलवान और प्रज्ञावान हो तभी वह सच्चा ब्राह्मण कहलवाता है। लेकिन ऐसा हिन्दू शास्त्र भी कहते हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण-ब्राह्मणी से पैदा हो परन्तु उस में अन्य अपेक्षित गुण न हों, हिन्दू शास्त्र उस ब्राह्मण को अन्य ब्राह्मणों की तुलना में हेय समझते हैं। यह बुद्ध की कोई नई और बड़ी बात नहीं है कि उन्होंने ब्राह्मण होने के लिए किसी व्यक्ति के शीलवान होने और प्रज्ञावान होने की शर्त रखी है। फिर, बौद्धों के दीघ निकाय में छह 'अभिजातियों' की बात भी सामने आई है। स्पष्ट है, ये 'जाति' से आगे 'अभिजातियाँ' हैं।[15] फिर, कर्म के अनुसार वर्ण विभाजन को मानने का मतलब वर्ण-व्यवस्था का अनुमोदन है। यह वर्ण व्यवस्था का खंडन या नाश नहीं है जिस की शूद्र और अछूत को हमेशा जरूरत थी।

बौद्धों के मज्झिम निकाय में भी वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा और अस्पृश्यता पर विचार हुआ है। ये माधुरिय सुत्त (2. 4. 4), कण्णत्थलक सुत्त (2.4.10), अस्सलायण सुत्त (2.5.3), एसुकारि सुत्त (2.5.6) और वासेट्ठ सुत्त (2.5.8) हैं। माधुरिय सुत्त में बुद्ध ने क्या किया है? इस सुत्त में बुद्ध के सामने ब्राह्मणों की एक चुनौती थी। ब्राह्मण कहते थे—"ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है, और वर्ण हीन (नीच) हैं; ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, और वर्ण कृष्ण हैं, ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं...ब्रह्मा के दायाद हैं।"[16] बुद्ध ने इस चुनौती का सामना यह कह कर दिया है कि लोक में यह हल्ला ही भर है कि "ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है....ब्रह्मा के दायाद हैं।"[17] बुद्ध ने तर्क दे कर बताया है कि असली कसौटी पंचशील की है। यदि ब्राह्मण भी प्राणीहिंसक हो, चोर हो, दुराचारी हो, मिथ्यादृष्टि रखता हो, मृषावाद....चुगली....कटुवचन....बकवाद करने वाला हो, लोभी और द्वेषी हो, तो शरीर को छोड़ मरने के बाद वह भी नरक में उत्पन्न होगा। इसी प्रकार यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी इन दुष्कर्मों को करेंगे तो वे भी नरक में उत्पन्न होंगे। इस के विपरीत यदि क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र में से कोई इन दुर्गुणों से विरत हो तो वह मरने के बाद स्वर्ग लोक में उत्पन्न होगा। बुद्ध ने इस माधुरिय सुत्त में एक अन्य बात भी कही है। बुद्ध ने कहा है—"कोई क्षत्रिय सेंघ मारे, गाँव लूटे, चोरी करे, बटमारी करे, परस्त्रीगमन करे तो उसे चोर कहा जाएगा।" बुद्ध ने यह भी कहा है—"जो उस की पहले क्षत्रिय संज्ञा थी, वह अब अन्तर्धान हो गई; (अब) चोर ही उस की संज्ञा है।"[18] ऐसे ही यदि कोई "ब्राह्मण...वैश्य...शूद्र सेंघ मारे...तो चोर ही उस का नाम है।"

देखा जा सकता है कि बुद्ध के ये दोनों तर्क वर्ण व्यवस्था के खंडन में किसी खास

मतलब के नहीं हैं। ये दोनों तर्क हिन्दू शास्त्रों में भी ज्यों के त्यों मिलते हैं। वहाँ भी ब्राह्मण को, क्षत्रिय को, वैश्य को या शूद्र को ऊपर गिनाए गए दुर्गुणों से दूर रहने के लिए कहा गया है। वहाँ भी ये दुर्गुण ही हैं और इन का मनुष्यों के वर्णों और पेशों से कोई मतलब नहीं है। हिन्दू शास्त्र भी चोर को चोर ही कहते हैं और उसे दण्ड देते हैं। वहाँ वर्ण सापेक्ष दण्ड की मात्रा घट या बढ़ सकती है पर और कोई अन्तर नहीं है। हाँ, बुद्ध ने यह अवश्य कहा है कि चोरी करने पर एक क्षत्रिय की "जो पहले संज्ञा थी, वह अब अन्तर्धान हो गई, (अब) चोर ही उसकी संज्ञा है।" लेकिन उन के इस कथन से कुछ साफ पता नहीं चलता कि वे इस में क्या कहना चाहते हैं। प्रश्न यह है कि जब क्षत्रिय ने चोरी की तो वह चोर कहा गया लेकिन यदि वह चोरी करनी छोड़ दे तो उसे पुनः क्या कहा जाएगा? बुद्ध के उत्तर में उसे पुनः क्षत्रिय ही कहा जाएगा और ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र में से कुछ नहीं कहा जाएगा। किसी भी स्थिति में बुद्ध की यह ताकत या दृष्टि नहीं है कि वे व्यक्तियों के वर्ण परिवर्तन करा सकें। जहाँ तक सामान्य धर्म की बात है तो जहाँ बुद्ध ने पंचशील खोजे हैं मनूस्मृति ने वहाँ धर्म के उन से दुगने दस लक्षण गिना दिए हैं। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि बुद्ध ने इस में स्वर्ग और नरक के अन्धविश्वास अलग से जोड़ दिए हैं।

बुद्ध ने व्यक्ति की सामाजिक संज्ञा मिटाने का एक अन्य प्रयास और किया है। यह उसे भिक्षु बनाने का है। इस में यदि "कोई क्षत्रिय केश, दाढ़ी मुँडा कर काषाय वस्त्र पहन कर घर से बेघर (अनागरिक) हो प्रव्रजित (संन्यासी) हो" और "(वह) प्राणातिपात से विरत, अदत्तादान....मृषावाद से विरत हो, एकाहारी, ब्रह्मचारी, शीलवान (सदाचारी) कल्याण धर्मी हो" "जो उस की पहले क्षत्रिय संज्ञा थी वह अब अन्तर्धान हो गई; (अब) श्रमण ही उसकी संज्ञा है।"[19] ऐसे ही ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के बारे में कहा गया है। लेकिन बुद्ध के सामने यह चुनौती इस के बाद भी ज्यों की त्यों खड़ी है कि जब तक वह व्यक्ति घर से बेघर हो भिक्षु नहीं बन जाता तब तक उस की सामाजिक संज्ञा उस के वर्ण की ही रहती है। चुनौती यह है कि बिना भिक्षु बनाए और पंचशील का पालन कराते हुए व्यक्ति की सामाजिक संज्ञा या तो समाप्त की जाए या बदल दी जाए। बुद्ध ने भिक्षु को एक नए वर्ग के रूप में खड़ा कर के उस की मान्यता प्राप्त करवा ली है लेकिन पंचशील के पालन के बाद भी वे व्यक्तियों को पेशों की स्वतंत्रता नहीं दिला सके और न ही उन की ऐसी कोई कोशिश थी।

मज्झिम निकाय के कण्णत्थलक सुत्त में मुख्य बात परलोक के सम्बन्ध में पूछी और बताई गई है। उस में कहा गया है कि परलोक के संबंध से चारों वर्ण क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र में प्रधानीय अंगों से युक्त होने पर कोई भेद या नानात्व नहीं रहता। आग आग है और "नाना काष्ठों से बनाई आगों का, लौ से लौ का, रंग से रंग का, आभा से आभा का कोई भेद" नहीं होता।[20] पर ये पाँच प्रधानीय गुण क्या हैं जिन के कारण वर्णों में भेद नहीं रहता? ये गुण इस प्रकार हैं कि भिक्षु तथागत की बोधि में

श्रद्धालु होता है, अरोगी होता है, शठ नहीं होता, उद्योगशील होता है और प्रज्ञावान होता है। यहाँ देखा जा सकता है कि इन में से कोई भी बात व्यक्ति के सामाजिक पेशे को नहीं छूती और दखलअन्दाजी की बात तो बहुत दूर की रह जाती है।

अस्सलायन सुत्त में चारों वर्णों की शुद्धि (चातुव्वणी सुद्धि) का प्रश्न है। ब्राह्मणों को इस बात से परेशानी थी कि श्रमण गौतम लोगों में चारों वर्णों की शुद्धि का उपदेश करते हैं, इस सुत्त में भी ब्राह्मण मानते थे—"ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं, दूसरे वर्ण छोटे हैं। ब्राह्मण ही शुक्ल वर्ण हैं, दूसरे वर्ण कृष्ण हैं। ब्राह्मण ही शुद्ध होते हैं, अब्राह्मण नहीं। ब्राह्मण ही ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, मुख से उत्पन्न, ब्रह्मज, ब्रह्म निर्मित, ब्रह्मा के दायाद हैं।"[21] इस सुत्त में बुद्ध ने एक तर्क तो वही दोहराया है जो उन्होंने पहले माधुरिय सुत्त में कहा था। यह चारों वर्णों के लोगों का नरक में और स्वर्ग में उत्पन्न होने का है। लेकिन इस में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने के लिए नए तर्क भी दिए गए हैं। बुद्ध का पहला तर्क है—"ब्राह्मणों की ब्राह्मणियाँ ऋतुमती, गर्भिणी, जनन करती, पिलाती देखी जाती हैं।"[22] तब "योनि से उत्पन्न होते हुए भी वे ब्राह्मण ऐसा" कैसे कह सकते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं और दूसरे वर्ण छोटे हैं? लेकिन बुद्ध का दूसरा तर्क ज्यादा सूचनापरक और ताकतवर है। बुद्ध वाद-विवाद के लिए उन के पास आए ब्राह्मणों के प्रतिनिधि आश्वलायन ब्राह्मण से पूछते हैं—"तुमने सुना है कि यवन और कम्बोज में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास (गुलाम)। आर्य दास हो (सक—)ता है, दास आर्य हो (सक—)ता है?" आश्वलायन बुद्ध के इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—"हाँ, भो! मैंने सुना है कि यवन और कम्बोज में ऐसा ही है।"

बुद्ध ने एक अन्य तर्क भी दिया है जो तत्कालीन भारतीय समाज के बारे में ज्यादा सूचनाएँ देता है। बुद्ध आश्वलायन से पूछते हैं—"आश्वलायन! (यदि) यहाँ मूर्द्धा-भिषिक्त क्षत्रिय राजा, नाना जाति के सौ पुरुष इकट्ठे करे (और उन्हें कहे)—आवें आप सब, जो कि क्षत्रिय कुल से, ब्राह्मण कुल से और राजन्य (राज सन्तान) कुल से उत्पन्न हैं; और शाल (साखू) को या सरल (वृक्ष) की या चन्दन की या पदमू (काष्ठ) की उत्तरारणी ले कर आग बना के तेज प्रादूर्भूत करें। (और) आप भी आवें जो कि चाण्डाल कुल से, निषाद कुल से, बसोर (वेणु) कुल से, रथकार कुल से, पुक्कस कुल से उत्पन्न हुए हैं, और कुत्ते के पीने की, सूअर के पीने की कठरी की, धोबी की कठरी की या रेंड की लकड़ी की उत्तरारणी ले कर आग बनावें, तेज प्रादुर्भूत करें। तो क्या मानते हो, आश्वलायन क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र कुलों से उत्पन्नों द्वारा शाल-सरल-चन्दन-पद्म की उत्तरारणी ले कर जो आग उत्पन्न की गई है, तेज प्रादुर्भूत किया गया, क्या वही अर्चिमान (लौ वाला), वर्णवान, प्रभास्वर अग्नि होगा? उसी आग से अग्नि का काम लिया जा सकता है? और जो वह चाण्डाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्नों द्वारा श्वपान-कठरी की शूकर-पान-कठरी की, रेंड-काष्ठ की उत्तरारणी को ले कर उत्पन्न आग है, प्रादुर्भूत तेज (है), वह अर्चिमान, वर्णवान, प्रभास्वर न होगा? उस आग से अग्नि का

काम नहीं लिया जा सकेगा?" आश्वलायन उत्तर देते हैं—"नहीं, भो गौतम! जो वह क्षत्रिय....कुलोत्पन्न द्वारा....आग बनाई गई है....वह भी अर्चिमान ....आग होगी, उस आग से भी अग्नि का काम लिया जा सकता है; और जो वह चाण्डाल....कुलोत्पन्न द्वारा. ...आग बनाई गई है....वह भी अर्चिमान....आग होगी। सभी आग से अग्नि का काम लिया जा सकता है।"[23]

इस सुत्त में बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था के खंडन में एक और तर्क पेश किया है। बुद्ध ने कहा है कि यदि क्षत्रिय कुमार ब्राह्मण कन्या के साथ संवास करे और उन के सहवास से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह माता-पिता के समान होगा। ऐसे ही यदि ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय कन्या से संवास करे और उन के सहवास से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह भी माता-पिता के समान होगा। लेकिन यदि घोड़ी का गधे से जोड़ा मिलाया जाए तो उन से जो बच्चा पैदा होगा वह घोड़ी या गधे के समान नहीं बल्कि एक तीसरा खच्चर होगा। इस प्रकार मनुष्य की जाति एक ठहरती है।[24] इस के अलावा, बुद्ध ने ब्राह्मणों की वर्ण श्रेष्ठता के लिए एक सन्देह और चुना है। उन्होंने असित देवल ऋषि की कथा दी है। असित देवल ऋषि सात ब्राह्मणों से पूछते हैं—

"जानते हैं आप, कि जननी (माता) ब्राह्मण ही के पास गई, अब्राह्मण के पास नहीं?"

"नहीं।"

"जानते हैं आप, कि जननी (माता) की माता सात पीढ़ी तक मातामहयुगल (नानी) ब्राह्मण ही के पास गई, अब्राह्मण के पास नहीं?"

"नहीं, भो!"

"जानते हैं आप कि जनिता (पिता)....पितामह युगल (दादा) सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणी ही के पास गए, अब्राह्मणी के पास नहीं?"

"नहीं भो!"

....

"जब ऐसा (है) तब जानते हो कि तुम कौन हो?"

"भो! हम नहीं जानते हम कौन हैं?"[25]

बुद्ध के ये सारे तर्क ठीक हैं पर ये ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता को चुनौती देने के लिए ही हैं। इन में कोई भी तर्क ऐसा नहीं है जो ब्राह्मणों से उन का पेशा छीन रहा हो या उन्हें शूद्र का काम करने के लिए विवश कर रहा हो। उलटे, दीघ निकाय के एसुकारि सुत्त में बुद्ध जन्मना वर्ण के सिद्धान्त को मान बैठते हैं। एसुकारि ब्राह्मण का बुद्ध से एक बहुत अच्छा प्रश्न था। यह सेवा और कर्म के बारे में था। ब्राह्मण कहते थे कि ब्राह्मण की सेवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र करेंगे, क्षत्रिय की सेवा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र करेंगे, वैश्य की सेवा वैश्य और शूद्र करेंगे तथा शूद्र की सेवा केवल शूद्र करेंगे। लेकिन बुद्ध इस प्रश्न से सीधे नहीं टकराए। वे इस से बच कर एक तरफ निकल गए हैं।

उन्होंने इस प्रश्न का सन्दर्भ ही बदल दिया है। वे अपने उन्हीं शीलों का जिक्र करने लगते हैं। वे कहते हैं—"ब्राह्मण ऊँचे कुल वाला भी कोई प्राणातिपाती (हिंसक) होता है, अदत्तादायी (चोर)...काम मिथ्याचारी...., मृषावादी ...., पिशुनभाषी (चुगलखोर)...., परुष भाषी...., सप्रलापी (बकवादी)...., अभिध्यालु (लोभी)...., व्यापन चित्त (द्वेषी)...., मिथ्या दृष्टि (झूठी धारणा वाला) होता है। इसलिए ब्राह्मण! मैं उच्च कुलीनता को श्रेय नहीं कहता।"[26] इसी प्रकार उच्च कुल वाला भी इन दुर्गुणों से विरत रह सकता है। इसलिए बुद्ध ने उच्च कुलीनता को पापीय भी नहीं कहा। बुद्ध ने कहा है—"न मैं सब को परिचरणीय कहता हूँ, और न मैं सब को अपरिचरणीय (असेवनीय) कहता हूँ। ब्राह्मण! जिस को परिचरण करते परिचर्या के हेतु श्रद्धा बढ़ती है, शील (सदाचार) बढ़ता है, श्रुत (ज्ञान) बढ़ता है, त्याग बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, उसे मैं परिचरणीय कहता हूँ।"[27]

बुद्ध का ऐसा उत्तर देने पर एसुकारि ब्राह्मण प्रश्न को और सीधा बनाते हैं। वे साफ पूछते हैं—"भो गौतम! ब्राह्मण चार (प्रकार के) स्वधन (अपना धन) बतलाते हैं—(1) भिक्षाचर्या को ब्राह्मण का स्वधन बतलाते हैं; भिक्षाचर्या स्वधन को अतिक्रमण करने वाला ब्राह्मण अदत्त को लेने वाले गोप की भाँति अकृत्यकारी होता है। भो गौतम! ब्राह्मण इसे ब्राह्मणों को स्वधन बतलाते हैं। (2) भो गौतम! ब्राह्मण धनुकलाप (शस्त्र शिल्प) को क्षत्रिय का स्वधन बतलाते हैं। धनुकलाप (रूपी) स्वधन को अतिक्रमण करने वाला क्षत्रिय....अकृत्यकारी होता....। (3)....कृषि, गोरक्ष्य (गोपालन) को वैश्य का स्वधन बतलाते हैं....। (4) ....असितव्याभंगि (लकड़ी काटने-ढोने आदि) को शूद्र का धन बतलाते हैं। असितव्याभंगि (रूपी) स्वधन को अतिक्रमण करने वाला शूद्र अदत्त को लेने वाले गोप की भाँति अकृत्यकारी (पापकारी) होता है। भो गौतम! ब्राह्मण यह चार (प्रकार के) स्वधन बताते हैं। यहाँ आप गौतम क्या कहते हैं?"[28] इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध का पूरा समाज दर्शन आ जाता है। बुद्ध इस प्रश्न से बच नहीं सके और उन्होंने इस का उत्तर दिया है। कहना पड़ता है कि उन्होंने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया है वह शूद्र वर्ग के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध हुआ है। बुद्ध का उत्तर है—"ब्राह्मण! मैं लोकोत्तर आर्यधर्म को पुरुष का स्वधन प्रज्ञापन करता हूँ। ब्राह्मण! माता-पिता के पुराने कुलवंश को अनुस्मरण करते जहाँ इस (पुरुष) का जन्म होता है, वही उसकी संज्ञा होती है। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने पर क्षत्रिय इस की संज्ञा होती है। ब्राह्मण....। वैश्य....। शूद्र कुल में उत्पन्न होने पर शूद्र इस की संज्ञा होती है।"[29] इतना ही नहीं, इस से आगे बुद्ध अलग-अलग अग्नियों की उपमा भी दे बैठते हैं। वे कहते हैं—"जिस जिस प्रत्यय (आश्रय) को ले कर आग जलती है, वही, वही (उस की) संज्ञा होती है।"[30] यहाँ उन्होंने काष्ठ-अग्नि, सकलिकाग्नि, तृणाग्नि और गोमय-अग्नि के चार उदाहरण दिए हैं कि वे अग्नि की चारों संज्ञाएँ अलग-अलग हैं।

इतना तय हो जाने के बाद आगे मज्झिम निकाय के वासेट्ठ सुत्त के कथन में कुछ दम नहीं रह जाता। इस सुत्त में भी उन्होंने वर्ण भेद को संज्ञा भेद का शब्द दे कर पीछा

छुड़ाना चाहा है। उन्होंने कहा है–

"मनुष्यों में भेद सिर्फ संज्ञा में है।
मनुष्यों में जो गोरक्षा से जीविका करता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को कृषक जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो किसी शिल्प से जीविका करता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को शिल्पी जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो व्यापार से जीविका करता है।
वाशिष्ठ ! ऐसे को बनिया जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो परप्रेषण से जीविका करता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को प्रेष्यक जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो अदत्तादान से जीता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को चोर जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो इषु अस्त्र से जीता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को योधाजीवी जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो पुरोहिती से जीता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को याजक जानो, ब्राह्मण नहीं।।
मनुष्यों में जो ग्राम राष्ट्र का उपभोग करता है।
वाशिष्ठ! ऐसे को राजा जानो, ब्राह्मण नहीं।।"[31]

यहाँ लम्बे उद्धरण में देखा जा सकता है कि पेशे के रूप में एक ब्राह्मण को छोड़ कर बुद्ध ने बाकी वर्णों और वर्गों के पेशे ज्यों के त्यों गिना दिए हैं। ब्राह्मण को उन्होंने भिक्षु के रूप में बचा लिया है और उसे उपाधियों में अर्हत, ऋषभ, प्रवर, महर्षि, विजेता, अकम्प, स्नातक और बुद्ध कहा है। जहाँ तक लोक और कर्म की बातें हैं उन्हें बुद्ध ने ज्यों की त्यों अनछेड़ बना कर रखा है। वे कहते हैं–"लोक में यह संज्ञाएँ हैं, (यह) कल्पित नामगोत्र हैं। वहाँ-वहाँ कल्पित (कर के) लोक-व्यवहार से चला आया है। अज्ञों की धारणा में चिरकाल से (यह) घुसा हुआ है।"[32] पर, प्रश्न यह है कि क्या बुद्ध ने इस लोक संज्ञा वाले और कल्पित नाम गोत्र वाले लोक-व्यवहार के खिलाफ चलने की कोशिश की थी। क्या उन्होंने वर्ण विरोध का झंडा ले कर ब्राह्मणी समाज व्यवस्था से बगावत की थी? उन के अगले कथन से पता चलता है कि उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। उन्हें जब वर्ण विरोध करने का दायित्व मिला, उन्होंने वर्ण को जन्मना और कर्मणा के दो भागों में बाँट कर जन्मना वर्ण का विरोध किया जिस का पुनर्जन्म और संज्ञाओं में विश्वास रखने के कारण कोई अर्थ नहीं रह जाता। वे कहते हैं–

"जानने वाले नहीं कहते–'ब्राह्मण जन्म से होता है।'
जन्म से न ब्राह्मण होता है, न जन्म से अब्राह्मण।
कर्म से ब्राह्मण होता है (और) कर्म से अब्राह्मण।।

कर्म से कृषक होता है (और) कर्म से शिल्पी।
कर्म से वनिया होता है (और) कर्म से प्रेष्पक।।
कर्म से चोर होता है (और) योधाजीव भी कर्म से।
कर्म से याजक होता है (और) राजा भी कर्म से।
प्रतीत्य-समुत्पाद-दर्शी (और) कर्म-विपाक-कोविद।।
पण्डित(जन) इस प्रकार कर्म को यथार्थ से जानते हैं।।
लोक कर्म से चल रहा है, प्रजा कर्म से चल रही है।
चलते हुए रथ के (चक्के की) आणी की भाँति प्राणी कर्म में बँधे हैं।।"[33]

मुख्य प्रश्न अन्त में भी ज्यों का त्यों रह जाता है—यह ठीक है कि लोग कर्म से बँधे हैं पर क्या व्यक्ति कर्म को वदल भी सकता है? यदि चाहे तो क्या एक कृषक, शिल्पी, योधाजीव या याजक में से कुछ वन सकता है? बुद्ध का उत्तर वही है कि जो जिस कुल में पैदा हो गया उस की संज्ञा वही है और वही उस का कर्म है। इस प्रकार वर्ण भेद को संज्ञा भेद कहने से शूद्र का काम नहीं चल जाता। संज्ञा भेद वर्ण भेद का नया तकनीकी नाम या अनुवाद भर है, यह उस का खात्मा नहीं है।

मज्झिम निकाय में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का अच्छा वर्णन भी हो गया है। इस में जो सूचनाएँ मिलती हैं वे वताती हैं कि उस समय शूद्र और चाण्डाल समुदायों में कौन-कौन से पेशे सम्मिलित थे। इस में जाति के भी कई विश्लेषण मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं—जाति, अनुजात (पीछे उत्पन्न), अभिजाति (जन्म), इतर जाति (नीच कुल), आजानेय (अच्छी जाति का), जाति संस्कार (जन्म दिलाने वाले पूर्वकृत कर्मों के चित्त-प्रवाह पर पड़े संस्कार), ज्ञाति (जाति), ज्ञाति दासी (जाति वालों की दासी), ज्ञाति सलोहति (जाति भाई), पच्चाजात (नीच कुल) और सुजात (सुन्दर जन्म वाला, कुलीन) हैं। नीचता के अन्य द्योतक शब्द इस प्रकार हैं—इभ्य (नीच), चाण्डाल, दास, निषाद, पिशाच, पुक्कस, वृषल, शूद्र, शूद्री, सुद्द, हीन (नीच)। निचले स्तर की पेशेवर जातियों के नाम इस प्रकार आए हैं—इषुकार (वाण वनाने वाला लोहार), कर्मार पुत्र (सोनार), काष्ठ हारक (लकड़हारा), तृणहारक (घसियारा), दन्तकार (हाथी के दाँत का काम करने वाला), रजक पुत्र (रंगरेज का पुत्र), रथकार (वढ़ई), वन कर्मिक (वन में काम करने वाला), वेणुकार, शौडिक कर्मकर (शराब वनाने वाला), शमशानिक (शमशान में रहने वाला)।

बुद्ध का धर्म मूलतः वेघर वालों का धर्म है। गृहस्थ लोगों के लिए इस में कोई सम्मान और आकर्षण नहीं है। गृहस्थ और भिक्षु की तुलना में उन्होंने भिक्षु जीवन को ही तरजीह दी है। व्यक्ति को बिना भिक्षु बनाए बुद्ध के पास उन की समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। डॉ. बी. आर. अम्वेडकर ने अपनी पुस्तक 'भगवान बुद्ध और उन का धर्म' में बताया है कि बुद्ध ने धर्म प्रचार के लिए दो प्रकार की दीक्षाएँ दी हैं—एक भिक्षु की दीक्षा जिस को सामूहिक रूप से 'संघ' कहा जाता है और दूसरी उपासक की दीक्षा

है अर्थात गृहस्थ बौद्ध की।[34] इस में सच यह है कि बुद्ध ने गृहस्थ को कोई धर्म-दीक्षा नहीं दी है। डॉं. अम्वेडकर ने अपनी पुस्तक में लिखा है—"एक उपासक बनने के लिए किसी 'संस्कार' की आवश्यकता नहीं। एक भिक्षु वनने के लिए 'उपसम्पन्न' होना आवश्यक है।"[35] यही अन्तर बौद्ध धर्म की सामाजिक कमजोरी का मूल द्योतक है। बुद्ध ब्राह्मणी समाज व्यवस्था के गृहस्थ लोगों को 'संस्कार' दे कर अपने धर्म के गृहस्थ नहीं वनाते थे। यदि किसी को गृहस्थ में रहना है तो उसे ब्राह्मणी समाज व्यवस्था के चंगुल में ही पड़े रहना है। ब्राह्मणी समाज व्यवस्था के कब्जे से निकलने का बुद्ध के पास एक ही रास्ता था कि व्यक्ति घर से वेघर हो कर भिक्षु वन जाए। ऐसी स्थिति में उसे अपनी सम्पत्ति से भी वंचित होना पड़ता था।

असल में, बुद्ध ने गृहस्थों से जो कहा है वह उन का वही बहुचर्चित पंचशीलों, आष्टांगिक मार्ग तथा दस पारमिताओं का उपदेश है। इसलिए, मुख्य प्रश्न यही है कि भिक्षु को दीक्षित करने में बुद्ध उस व्यक्ति का वर्ण और उस की जाति मिटा देते थे लेकिन क्या हिन्दू गृहस्थ को बौद्ध गृहस्थ बनाने में वे उस व्यक्ति के वर्ण और उस की जाति को मिटा सकते थे? कहीं तक भी ढूँढ़ मचाई जाए इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में ही आता है। इसलिए, कुल मिला कर बुद्ध और बुद्ध के धर्म ने क्या किया है? बुद्ध का सारा सुधार भिक्षु संघ तक सीमित रहा है। खुद समाज में उन के इन धार्मिक सुधारों का कोई प्रभाव नहीं रहा। समाज में उन्होंने ब्राह्मणी व्यवस्था के वर्ण विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बौद्धों के क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के क्रम में बदल दिया है। इस में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की पारस्परिक स्थिति वदली है लेकिन वैश्य और शूद्र जहाँ के तहाँ रहे हैं।

दूसरा अन्तर यह आया है कि ब्राह्मणों की धार्मिक व्यवस्था में शूद्र को संन्यास धारण करने और मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। बुद्ध ने शूद्र को भिक्षु संघ में प्रवेश करा कर उसे निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार दिया है। स्वयं बुद्ध ने कहा है—"हे शिष्यो, जिस प्रकार बड़ी-बड़ी नदियाँ चाहे वे जितनी भी हों; गंगा, यमुना, अचिरावती, सरयू, माही आदि जव महासागर में पहुँचती हैं तो वे अपना पुराना नाम-धाम त्याग देती हैं और उन का केवल एक नाम 'महासागर' हो जाता है उसी प्रकार हे शिष्यो, ये चार जातियाँ, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र जव तथागत के द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार अपना घर त्याग देते हैं और गृहविहीन अवस्था में आ जाते हैं तो अपना पुराना नाम व वंश त्याग देते हैं और फिर उन का केवल एक नाम रह जाता है, भिक्षु जो शाक्य वंश के बुद्ध के अनुयायी हैं।"[36] लेकिन इस उद्धरण का अर्थ क्या निकलता है? इस का अर्थ यह निकलता है कि घर को त्याग कर ही कोई भिक्षु संघ में आ कर समानता प्राप्त कर लेता है। उपालि नाई, सुणीत भंगी, सती धीवर, नन्द ग्वाले, दो पंथक अधर्मज और प्रतिलोमपुत्र, शिकारी की पुत्री चाणा, पुन्ना और पुन्निका दास पुत्रियों सुमंगल माता वनवासिनी और सुभा लुहार पुत्री की धर्म दीक्षा को इसी रूप में समझा जा सकता है।

प्रश्न यह है कि यदि कोई गृह त्याग न करे तो उस के सामाजिक दुःखों का नाश करने के लिए बुद्ध के पास क्या उपाय है। वास्तविकता यह है कि बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं है। उलटे, बुद्ध ने आदेश दिया है—"हे भिक्षुओ, किसी भी कर्जदार को 'पबज्जा' नहीं मिलनी चाहिए। जो भी किसी कर्जदार व्यक्ति को पवज्जा देता है व दुक्कट अपराध का दोषी है।"[37] ऐसे ही बुद्ध ने एक दूसरा आदेश दिया है—"हे भिक्षुओ, किसी भी दास को पब्बज्जा नहीं मिलनी चाहिए। जो भी किसी दास को पब्बज्जा देता है वह दुक्कट अपराध का दोषी है।"[38] इतना ही नहीं, बुद्ध ने सामाजिक संस्थाओं को त्यों का त्यों छोड़ दिया है। वे उपदेश देते हैं—"प्रज्ञा और सदाचार की श्रेष्ठतम पूर्णता में जन्म या वंश का इस गर्वोक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है कि 'तुम उतने ही प्रतिष्ठित हो जितना मैं' या 'तुम उतने प्रतिष्ठित नहीं हो जितना मैं।' इस प्रकार की चर्चा केवल विवाह सम्बन्ध तय करते समय होती है क्योंकि हे अम्वथ, जो व्यक्ति जन्म, कुल या सामाजिक प्रतिष्ठा या वैवाहिक सम्बन्धों की श्रेष्ठता के विचारों के वंधन में जकड़े हुए हैं वे उत्कृष्ट प्रज्ञा और सदाचार से परे हैं।"[39]

प्रश्न यह है कि बुद्ध ने विवाह-संस्था में जा कर दखल क्यों नहीं दी। विवाह में जन्म, कुल और सामाजिक प्रतिष्ठा को वरकरार क्यों रहने दिया? उन्होंने यह क्यों नहीं लिखा कि विवाह के समय भी जन्म, कुल और सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखना चाहिए? ओल्डन वर्ग ने सही लिखा है—"बुद्ध के स्वभाव में वह उत्साह और लगन ही नहीं थी जो पीड़ितों को अत्याचारियों से बचाने का बीड़ा उठाने वाले लोगों में होती है। राज्य और समाज जैसे हैं वैसे ही रहने दो। इन के संचालन और क्रियाकलाप के साथ ऐसे धार्मिक व्यक्ति का कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। जिस ने भिक्षु बन कर संसार को त्याग दिया है उस के लिए वर्ण भेद का कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि अब उस पर सांसारिक बातों का कोई प्रभाव नहीं होता। किन्तु उस को यह विचार कभी नहीं आता कि जो लोग सांसारिक परिस्थितियों में फँसे हुए हैं और उस से बहुत पीछे रह गए हैं उन के कल्याण के लिए वह वर्ण व्यवस्था को समाप्त कराने या उसके नियमों की कठोरता को तोड़ने का प्रयास करे।"[40]

संदर्भ

1. दीघ निकाय, अनुवादक भिक्षु राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ-226001, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ.-39, 245
2. भारत में जाति प्रथा : स्वरूप, कर्म और उत्पत्ति, लेखक जे. एच. हटन, अनुवादक मंगल नाथ सिंह, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम हिन्दी संस्करण 1983, पृ.-117
3. दीघ निकाय, अनुवादक भिक्षु राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ-226001, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ.

-328

4. वही, पृ-329
5. वही, पृ.-240
6. वही, पृ.-241
7. वही, पृ.-243-45
8. वही, पृ.-245
9. वही, पृ.-39, 245
10. वही, पृ.-38-9
11. वही, पृ.-39
12. भारत का इतिहास : संक्षिप्त रूपरेखा, लेखक को. अ. अतोनोवा, ग्रि. म. बोंगर्द-लेविन और ग्रि. ग्रि. कोतोव्स्की, सम्पादक नरेश वेदी, प्रगति प्रकाशन, मास्को पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, 5 ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-110055, संस्करण 1973, पृ.-125
13. दीघ निकाय, अनुवादक भिक्षु राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ-226001, द्वितीय संस्करण, 1979, पृ.-39
14. वही, पृ.-45
15. वही, पृ.-295
16. मज्झिम निकाय, अनुवादक महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, श्रावस्ती, बहराइच, तृतीय संस्करण, 1991, पृ.-343
17. वही, पृ.-344
18. वही, पृ.-345
19. वही, पृ.-345
20. वही, पृ.-373
21. वही, पृ.-390
22. वही, पृ.-390
23. वही, पृ.-391
24. वही, पृ.-391
25. वही, पृ.-393
26. वही, पृ.-404
27. वही, पृ.-404
28. वही, पृ.-404
29. वही, पृ.-405
30. वही, पृ.-405
31. वही, पृ.-414
32. वही, पृ.-416
33. वही, पृ.-416
34. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डॉ. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-92
35. वही, पृ.-92
36. लोकायत, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, अनुवादक, वृज शर्मा, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, 4 कम्युनिटी सेन्टर, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-1, नई दिल्ली-110008, प्रथम हिन्दी संस्करण 1982, पृ.-362
37. वही, पृ.-367
38. वही, पृ.-367
39. वही, पृ.-362
40. वही, पृ.-363

अध्याय–6

थेरीगाथा का चाण्डाल

बुद्ध को उन चीजों का फायदा मिला जो उन्होंने अच्छे काम नहीं किए और उन्हें उन चीजों का नुकसान नहीं मिला जो उन्होंने अच्छे काम नहीं किए। यह भारत के इतिहास का श्रेष्ठ पाठ है कि बौद्ध धर्म वड़ी चतुराई से चला है। वह मिटा अपनी आन्तरिक कमजोरियों से था, लेकिन उस का साम्राज्य गलतफहमियों को बरकरार रखने के कारण टिका रहा था। उदाहरण के रूप में जाति के सन्दर्भ को लिया जा सकता है। एक प्रश्न है और उस के दो उत्तर हैं :

प्रश्न – क्या बुद्ध ने जाति तोड़ी थी ?

उत्तर 1.– बुद्ध ने जाति नहीं तोड़ी थी।

उत्तर 2.– बुद्ध ने जाति तोड़ी थी।

क्या दोनों उत्तर सही हो सकते हैं? जी हाँ, परस्पर-विरोधी दीखने पर भी ऊपर दिए गए दोनों उत्तर एकदम सही हैं। प्रश्न को सही परिप्रेक्ष्यों में देखना चाहिए! दोनों परिप्रेक्ष्य अलग-अलग हैं—एक सामाजिक व्यवस्था काहै और दूसरा भिक्षु संघ का है। इस एक ही प्रश्न के इन दो सन्दर्भों में उत्तर भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी भी हैं।

क्या बौद्ध साहित्य में ऐसा कोई उदाहरण है जो इन दोनों परस्पर-विरोधी उत्तरों को इतनी स्पष्टता से समझा सके जितनी स्पष्टता और जितने जोर से मैं यहाँ इन्हें रख रहा हूँ? जी हाँ, 'दिव्यावदान' में आई हुई यश अमात्य की कहानी मेरी दलील की पक्की गवाही है। धर्मानन्द कोसम्वी अपनी पुस्तक 'भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन' में लिखते हैं—"अशोक राजा अभी-अभी बौद्ध हो गया था और वह सब भिक्षुओं के चरण छूता था। यह देखकर यश नामक उस का अमात्य बोला, "महाराज इन शाक्य श्रमणों में सब जातियों के लोग हैं। उन के सामने आप अपना अभिषिक्त मस्तक झुकायें, यह उचित नहीं है।"[1] अशोक के कई उत्तरों में से दिया गया एक उत्तर यह है :

आवाहकालेऽथ विवाहकाले जातेः परीक्षा न तु धर्मकाले।
धर्मक्रियाया हि गुणा निमित्ता गुणाश्च जाति न विचारयन्ति।।

—"लड़के और लड़की के विवाह में जाति का विचार करना उचित है। धार्मिक विषय में जाति का विचार करने का कारण नहीं है, क्योंकि धार्मिक कार्यों में गुण देखने पड़ते हैं और गुण तो जाति पर निर्भर नहीं हुआ करते।"[2]

इस प्रकरण का शीर्षक धर्मानन्द कोसम्बी ने 'अशोक कालीन बौद्ध-संघ में जाति-भेद नहीं था' रखा है। मुझे इस शीर्षक से कुछ भी आपत्ति नहीं है। यह सौ प्रतिशत सही शीर्षक है। इस कथन में लेशमात्र भी झूठ नहीं है कि बौद्ध-संघ में जाति-भेद नहीं था। लेकिन यहाँ उस श्लोक की आधी ही बात रखी गई है, आधी को पूर्णतः भुला दिया गया है। यदि जोर संघ पर दिया जा रहा है तो वही शीर्षक निकलेगा जो ऊपर दिया गया है लेकिन यदि जोर समाज पर दिया जाए तो शीर्षक एकदम बदल जाएगा। तब शीर्षक होगा—'अशोक कालीन बौद्ध-समाज में जाति भेद था।' कोई बताए कि यह शीर्षक देने में मैं कहाँ गलत हूँ। किसी की हिम्मत नहीं है कि मेरे इस शीर्षक को गलत साबित कर दे। उलटे, धर्मानन्द कोसम्बी तो इस शीर्षक से खुश ही होंगे। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में दो उपशीर्षक और इस प्रकार रखे हैं :

1. "श्रमण जाति-भेद को नहीं तोड़ सके।"[3]
2. "श्रमणों में जाति-भेद नहीं था।"[4]

यहाँ कोई इस मुगालते में न रहे कि जब धर्मानन्द कोसम्बी ने उपशीर्षक 'श्रमण जाति-भेद को नहीं तोड़ सकें' रखा है तो उन्हें बौद्ध ग्रन्थों का ज्ञान नहीं था। उन्हें बताया जा सकता है कि धर्मानन्द कोसम्वी ने 'मज्झिमनिकाय' के 'वासेट्ठसुत्त' 'अस्सलायनसुत्त', 'एसुकारि सुत्त' और 'मधुरसुत्त' को पढ़ कर और उन्हें अपनी पुस्तक में पर्याप्त विस्तार से लिख कर ही अपना उपरोक्त उपशीर्षक दिया है।[5] उन की व्याख्या या स्पष्टीकरण इस प्रकार है—"इन सव सुत्तों पर अच्छी तरह विचार करने से यह दिखाई देता है कि बुद्ध को या उन के शिष्यों को जाति-भेद बिलकुल पसन्द नहीं था और उसे नष्ट करने के लिए उन्होंने वहुत चेष्टा की थी। परन्तु यह कार्य उन के बूते से बाहर का था।"[6]

'थेरीगाथा' इस वावत हमें क्या सूचना देती है? रोहिनी अपने पिता को जवाव देती है कि उसे श्रमण क्यों प्रिय हैं। 285वीं गाथा इस प्रकार है :

नानाकुल पब्बजिता, नानाजनपदेहि च।
अञ्ञमञ्ञं पियायन्ति, तेन मे समणा पिया।।

—"नाना कुलों, नाना जनपदों से आ कर उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की है। फिर भी वे एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहते हैं। इसलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं।"[7]

लेकिन यह गाथा मेरे पक्ष की काट कहाँ है? यह वही बात है जो मैं निष्कर्ष निकालता आ रहा हूँ। मैंने कब कहा है कि भिक्षु-संघ में प्रवेश करने पर जाति-भेद की ऐसी कोई पाबन्दी थी? भिक्षु किसी भी जाति से बनाया जा सकता था लेकिन जब कोई

भिक्षु अपने संघ को छोड़ कर पुनः गृहस्थ जीवन में जाना चाहे, जिसकी बौद्ध धर्म में उसे अनुमति है, तो मेरा कहना यह है कि तब वह अपनी मूल जाति में ही लौटेगा और उसी का सदस्य बाजेगा, जहाँ मूल समाज में जातिप्रथा यथावत मौजूद है।

इस जगह कोई व्यक्ति धर्मानन्द कोसम्बी की इस व्याख्या से मतभेद रख सकता है क्योंकि यहाँ मेरा भी उन से मतभेद है। मेरा मतभेद यह है कि बुद्ध ने भिक्षु संघ बताया था, बौद्ध समाज नहीं। इस बात को बाबा साहेब डा. अम्बेडकर ने भी जाना है। वे अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में लिखते हैं—"भिक्षुओं का एक संगठित 'संघ' था, गृहस्थों का नहीं था।"[8]

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक में एक शीर्षक 'संघ में प्रवेश' रखा है। इस बारे में वे लिखते हैं :

"1. संघ का प्रवेश सभी के लिए खुला था।
2. जाति-पाँति की कोई बाधा न थी।
3. स्त्री पुरुष की कोई बाधा न थी।
4. हैसियत की कोई बाधा न थी।
5. जाति-पाँति के लिए संघ में कोई स्थान न था।
6. सामाजिक-स्थिति का संघ में कोई स्थान न था।
7. संघ के भीतर, सभी सदस्य समान थे।"[9]

इन शब्दों को लिखने में डा. अम्बेडकर बहुत जोश में हैं। उन का जोश सच्चा है लेकिन गृहस्थ जीवन की चर्चा में उन के इस जोश की सारी हवा निकल जाती है। सच बात यह है कि बौद्ध धर्म भिक्षुओं का ही धर्म है। स्पष्ट है, ऐसी जोशीली घोषणा वे समाज और परिवार को ले कर नहीं कर सकते थे। वे इस अन्तर को बहुत गहराई से जानते थे। मैं तो कहूँगा, वे ही भिक्षु और गृहस्थ के इस भेद को सब से ज्यादा जानते थे। वे लिखते हैं :

"6. केवल भिक्षा ही वह डोरी थी, जिस से भिक्षु और गृहस्थ परस्पर बंधे थे।
7. भिक्षु भिक्षा पर निर्भर करते थे और गृहस्थ उन्हें भिक्षा देते थे।
8. गृहस्थ संगठित न थे।
9. संघ-दीक्षा थी, जिस का मतलब था किसी की भी भिक्षु-संघ में दीक्षा।
10. संघ-दीक्षा से आदमी 'संघ' और 'धर्म' दोनों में दीक्षित हो जाता था।
11. लेकिन ऐसे लोगों के लिए जो प्रव्रजित बन 'संघ' की दीक्षा तो न चाहते थे, केवल 'धर्म' की दीक्षा चाहते थे, कोई पृथक 'धर्म-दीक्षा' न थी।...

12. यह एक बड़ी गम्भीर कमी रह गई। यह कमी उन कारणों में से एक थी जो अन्त में जा कर भारत से बौद्ध-धर्म के लुप्त हो जाने के कारण बने।

13. इसी पृथक धर्म-दीक्षा के न होने के कारण गृहस्थ एक धर्म से दूसरे धर्म में भटक सकते थे और उस से भी बुरी बात यह कि बौद्ध धर्म को अपनाये रहते समय ही कोई दूसरा धर्म भी अपनाये रह सकते थे।''[10]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने ऊपर 11वें नम्बर की मद पर अपनी टिप्पणी दी है—''त्रिशरण तथा पंचशील ग्रहण गृहस्थों की धर्म-दीक्षा ही तो है।''[11] लेकिन यह उत्तर एक सामयिक उत्तर है। त्रिशरण और पंचशील के ग्रहण में वर्णों और जातियों को तोड़ना शामिल नहीं है। त्रिशरण में संघ की शरण शामिल है जो पुनः भिक्षुओं की जमात है। क्या उन के लिए ऐसी शर्त थी कि बौद्ध भिक्षु किसी अबौद्ध गृहस्थ से भिक्षा ग्रहण नहीं करेंगे? इसलिए यहाँ बाबा साहेब का मत ही ठीक है तथा उस मत के विरोध में दलील देने की जरूरत नहीं है।

भारत में धर्मों के भेद भिक्षुओं, अर्हतों, साधुओं और संन्यासियों में ऊपर-ऊपर चले हैं, इन सब को पालने वाली गृहस्थ जनता एक थी जो वर्णों, जातियों और अस्पृश्यताओं में बुरी तरह विभक्त और जकड़ी पड़ी थी। उपनयन संस्कार द्विजों के होते थे, बाकी शूद्रों और अन्त्यजों के नहीं। बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण संन्यासियों में स्पर्धा लगी रहती थी कि कौन किस घर से भिक्षा उड़ा ले जाएगा। आज भी हिन्दू समाज के गृहस्थ लोग वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, सूफी आदि का भेद किए और जाने बिना, जो भी द्वार पर आ जाता है, भिखारियों को दो मुट्ठी चून दे देते हैं। आज भी कई मामलों में हिन्दू की परिभाषा यह लिख कर की गई है कि जो मुसलमान, ईसाई, यहूदी और पारसी नहीं है, वह हिन्दू है। और, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि यह हिन्दू समाज ऐसा पहले से नहीं रहा है। इस्लाम के आगमन से पहले भारत में धर्मभेद केवल भिक्षुओं और संन्यासियों तक सीमित रहे थे, भारतीय समाज के अपने भेद वर्णभेद, जातिभेद और अस्पृश्यता भेद के ही रहे थे।

आश्चर्य की बात यह है कि आगे खुद डा. अम्बेडकर बचाव की मुद्रा में आ जाते हैं—और तर्क को उस की सीमा नहीं छूने देते जब इस आरोप से निपटते हैं 'कि एक मजहब के रूप में बौद्ध-धर्म केवल भिक्षुओं का धर्म है।'[12] सही रास्ते पर चल कर भी आगे वे नहीं मानने देते कि बौद्ध धर्म का 'सर्व-साधारण से कोई सम्बन्ध नहीं'[13] है या 'बौद्ध-धर्म ने जन-साधारण को अपने दायरे से बाहर ही रखा है।'[14] 'बुद्ध के प्रवचनों में 'भिक्षु' शब्द इतनी अधिक बार'[15] आने के बावजूद वे अपने बचाव का रास्ता निकालना चाहते हैं कि 'धर्म' का कोई एक ऐसा भाग भी है जो भिक्षुओं के लिए ही है और गृहस्थों के लिए नहीं?'[16] यह पूछ कर आगे डा. अम्बेडकर हारी हुई बाजी को यह लिख कर जीतना चाहते हैं—''क्योंकि 'प्रवचन' प्रायः भिक्षुओं को ही सम्बोधित कर के किए गए,

इसलिये इस से यह अनुमान नहीं निकालना चाहिये कि तमाम 'प्रवचन' भिक्षुओं के लिए ही थे। नहीं, भगवान बुद्ध के उपदेश भिक्षुओं तथा गृहस्थों—दोनों के लिए थे।"[17] यह केवल खींचतान करके बौद्ध धर्म को बचाना है कि 'हाँ, इस में थोड़ा भेद अवश्य है कि भिक्षुओं से अधिक आशा रखी गई है और गृहस्थों से उतनी नहीं'[18] या कि 'भेद इतना ही है कि भिक्षु के लिये वे अनुल्लंघनीय 'व्रत' है, किन्तु गृहस्थ के लिए वे स्वेच्छा से ग्रहण किये गए 'शील' हैं।'[19] यहाँ मेरा कहना यह है कि यदि बुद्ध के सामने कोई गृहस्थ बैठा है तो वह भिक्षु बनाए जाने के लिए है, गृहस्थ रहने देने के लिए नहीं। थेरीगाथा की इन 73 स्त्रियों में, जिन की वास्तविक संख्या 73 से बहुत ज्यादा है, सभी से गृहस्थी छुड़वा कर उन्हें भिक्षुणियाँ बनाया गया है न कि उन में से किसी एक भी भिक्षुणी को गृहस्थन बनाया गया हो। बल दे कर कहा जा सकता है कि थेरीगाथा की पूरी किताब किसी गृहस्थ स्त्री के काम की चीज नहीं है। मैं तो यहाँ तक सिफ़ारिश करता हूँ कि यह किताब किसी दलित गृहस्थ स्त्री को नहीं पढ़नी चाहिए। हिन्दुओं की पुस्तक 'कामसूत्र' को पढ़ कर कोई स्त्री वेश्या, रखैल या परपत्नी बनना चाहेगी और बौद्धों की इस पुस्तक 'थेरीगाथा' को पढ़ कर वह भिक्षुणी बनना चाहेगी। कहने का मतलब यह है कि ये दोनों पुस्तकें बारी-बारी से बसी-बसाई गृहस्थियों में आग लगा देंगी। इस से समाज को कोई फ़ायदा—?

थेरीगाथा की मेरे लिए सब से बड़ी मदद इस की 511 वीं गाथा में प्रयुक्त हुए शब्द 'चण्डाल' की है। गाथा इस प्रकार है :

कामं कामेसु दमस्सु, ताव सुनखो व सङ्खलावद्धो।
काहिन्ति खु तं कामा, छाता सुनखं व चण्डाला।। 511।।

—"अपनी काम-तृष्णा का दमन करो, उस में अपने को मत बाँधो, अन्यथा भूखे चांडालों के द्वारा जंजीर में बाँधे हुए कुत्तों के समान तुम्हारी दुर्गतिपूर्ण मृत्यु होगी। जिस प्रकार भूखे चाण्डाल जंजीर में बाँधे हुए कुत्ते को मार कर खा जाते हैं, उसी प्रकार काम-भोग तुम्हें अपनी जंजीर में बाँध कर खा जाएंगे।"[20]

जाने क्यों डा. विमलकीर्ति ने इस गाथा का अनुवाद करते समय अपनी आपत्ति दर्ज नहीं की? चाण्डाल के रूप में इस में दलितों के इतिहास की कड़ी हाथ लगती है। यहाँ वर्णित चाण्डाल बौद्ध क्यों नहीं है? वह बौद्धों से अलग क्यों है? और यह किसी एक चाण्डाल के बारे में गाथा नहीं है बल्कि चाण्डाल जाति के बारे में बखान की गई उन की भोजन-शैली है। यहाँ डा. विमलकीर्ति की कलम अवश्य रुक जानी चाहिए थी। आश्चर्य है, आपत्ति एक तरफ़, उन्होंने इस गाथा पर अपनी कोई छोटी-मोटी टीका-टिप्पणी तक नहीं की। पता चलता है कि त्रिपिटक के सम्पादन के समय में चाण्डाल एक पृथक रूप से गिनाई जाने वाली जाति है।

संदर्भ

1. भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन, धर्मानन्द कोसम्वी, अनुवादक श्रीपद जोशी, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1982, पृ.-224
2. वही, पृ.-225
3. वही, पृ.-223
4. वही, पृ.-223
5. वही, पृ.-213-23
6. वही, पृ.-223
7. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-219
8. भगवान वुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्वेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय वौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, वलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-331
9. वही, पृ.-331-2
10. वही, पृ.-356
11. वही, पृ.-360
12. वही, पृ.-357
13. वही, पृ.-357
14. वही, पृ.-357
15. वही, पृ.-357
16. वही, पृ.-357
17. वही, पृ.-357
18. वही, पृ.-359
19. वही, पृ.-360
20. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-285

अध्याय—7

इसिदासी के पुनर्विवाह : वैश्य और शूद्र एक थे

I

मेरे अपने प्रयोजन के लिए थेरी इसिदासी की गाथा का सब से ज्यादा महत्व है। उस का जन्म वैश्य-कुल में हुआ था। उस की कहानी इस प्रकार क्रमवद्ध की जा सकती है :

1. "इसिदासी के तरुणावस्था को प्राप्त होने पर माता-पिता ने एक योग्य वर के साथ उस का विवाह कर दिया।"[1]
2. "वह....पति को पसन्द नहीं थी, इसलिए घर से निकाल दी गई।"[2]
3. "उस के पिता ने दो वार उस का पुनर्विवाह कर दिया, किन्तु वहाँ भी सुखी नहीं रह सकी।"[3]

पुनर्विवाह कर दिया, यह क्या शब्द है? यहाँ क्या देखा जा रहा है? त्रिपिटक का प्रमाण है। एक बेटी का पुनर्विवाह किया जा रहा है। यह किस बिरादरी की लड़की है? यह वैश्य-कुल की पुत्री है। यदि यह ब्राह्मण कुल की होती या क्षत्रिय कुल की होती तो क्या ऐसा सुना जा सकता था कि उस का पुनर्विवाह हुआ है? ज्ञात इतिहास में मुझे ऐसी कोई घटना घटित होती नहीं मिली।

ऐसा जान कर क्या फायदा होता है? निष्कर्ष क्या निकलता है? मेरे सामने चार घटनाएँ या प्रमाण हैं—एक थेरीगाथा, दूसरा बौधायन का धर्मसूत्र, तीसरा गीता के प्रमाण और चौथी ध्रुवस्वामिनी की कथा। इन चारों को इस प्रकार रखा जा सकता है :

1. बौधायन धर्मसूत्र के सूत्र इस प्रकार हैं :

   ययांन्त्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति।[4] (1-11-14)

   कर्षणशुश्रुपाधिकृत्वात।[5] (1-11-15)

   —"वैश्य एवं शूद्र अपनी स्त्रियों को नियन्त्रण में नहीं रख पाते और स्वयं खेती-बारी एवं सेवा के कार्य में लगे रहते हैं।"[6]

2. गीता के 9वें अध्याय के 32वें और 33वें श्लोक इस प्रकार हैं :

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पाप योनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गितम्।।
किं पुनर्ब्राह्मणां पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।।

—"क्योंकि हे पार्थ जो कोई पाप योनि वाले हैं अर्थात जिन के जन्म का कारण पाप है। ऐसे प्राणी हैं।—वे कौन हैं? सो कहते हैं—वे स्त्री, वैश्य और शूद्र भी मेरी शरण में आ कर—मुझे ही अपना अवलम्ब बना कर परम उत्तम गति ही पाते हैं। फिर जो पुण्य योनि ब्राह्मण और राजर्षि भक्त हैं उन का तो कहना ही क्या है?"[7]

3. थेरीगाथा से प्रमाण मिलते हैं कि इसिदासी वैश्य कुल की वेटी थी। इस की 407वीं गाथा इस प्रकार है :

उज्जेनिया पुरवरे, मय्हं पिता सीलसंवुतो सेट्ठि।
तस्साम्हि एकधीता, पिया मनापा च दयिता च।।

—"मेरे पिता उज्जयिनी महानगरी के एक दानी, सदाचारी सेठ थे। मैं उन की इकलौती, प्यारी, अनुकूल कन्या थी।"[8]

इस के बाद इसिदासी कहती है :

अथ मे साकेततो वरका, आगच्छुमुत्तमकुलीना।
सेट्ठी पहूतरतनो, तस्स ममं सुण्हमदासि तातो।। 408।।

—"साकेत नगर से आया हुआ एक अन्य बड़ा उच्चकुलीन धनवान, बहुरत्नसम्पन्न सेठ था। मेरे पिता ने उस के पुत्र के साथ मेरा विवाह कर दिया। मैं उस सेठ की पुत्रवधू—(बहू) के रूप में दे दी गई।"[9]

इसिदासी का पुनर्विवाह हुआ था, इस का प्रमाण 422वीं गाथा में है जो इस प्रकार है :

अथ मं अदासि तातो, अड्ढस्स घरम्हि दुतियकुलिकस्स।
ततो उपड्ढसुङ्केन, येन मं विन्दथ सेट्ठि।।

—"उस के बाद मेरे पिता ने एक अन्य कुल वाले धनाढ्य पुरुष से मेरा पुनर्विवाह कर दिया और पहले सेठ (मेरे भूतपूर्व ससुर) ने जितने धन से मुझे प्राप्त किया था, उस का आधा परिणाम धन भी मेरे पिता ने वापिस ले लिया।"[10]

दूसरा ही नहीं, इसिदासी का तीसरा विवाह भी हुआ था। उस के प्रमाण 423वीं से लेकर 425वीं गाथाओं में मिलते हैं जो इस प्रकार हैं:

तस्सपि यरम्हि मासं, अवसिं अथ सोपि मं पटिच्छरयि।
दासीव उपट्ठहन्तिं अदूसिकं सीलसम्पन्नं।।

—"इस घर में एक मास तक सुखपूर्वक रहने के वाद मैं वहाँ से भी वहिष्कृत की गई। यद्यपि वहाँ भी सर्वथा निर्दोष और सदाचारिणी हो कर मैंने दासी के समान सव की सेवा की।"[11]

भिक्खाय च विचरन्तं, दमकं दन्तं में पिता भणति।
'होहिसि मे जमाता, निक्खिप पोट्ठिञ्च घटिकञ्च'।।

—"एक दिन एक संयमपरायण, जितेन्द्रिय, शान्तचित्त साधु को भिक्खा के लिए घूमते देख कर मेरे पिता ने उस से कहा, "यदि तू अपनी गुदड़ी और घड़िया (मिट्टी का पात्र) को दूर फेंक दे, तो तू मेरा दामाद हो सकता है।"[12]

सोपि वसित्वा पक्खं, अथ तातं भणति 'देहि मे पोट्ठिं।
घटिकञ्च मल्लकञ्च, पुनपि भिक्खं चरिस्सामि'।।

—"इस पति के साथ...भी (मैं) पन्द्रह दिन तक सहवास कर पाई थी कि उस ने भी मेरे पिता के पास आ कर कहा, "मेरी गुदड़ी, सुराही (पानी पीने की) और वर्तन मुझे वापस करो। मैं फिर भिक्खाचर्या करूँगा।"[13]

4. चौथी कथा ध्रुवस्वामिनी की है। इस के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि ध्रुवस्वामिनी का उस के देवर के साथ पुनर्विवाह हुआ था। इस मानने में परेशानियाँ रही हैं लेकिन अन्त में विद्वानों को स्वीकार करना पड़ा है कि यह पुनर्विवाह हुआ था। जय शंकर प्रसाद ने इस विषय को ले कर हिन्दी में एक नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' नाम से लिखा है। उस की भूमिका के रूप में लिखी गई 'सूचना' में उन्होंने लिखा है :

अ. "शास्त्रीय मनोवृत्ति वालों को, चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न असम्भव, विलक्षण और कुरुचिपूर्ण मालूम हुआ।"[14]

ब. "राखालदास बनर्जी, प्रोफेसर अल्तेकर और श्री जायसवाल इत्यादि ने, अन्य प्रामाणिक आधार मिलने के कारण ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के पुनर्लग्न को ऐतिहासिक तथ्य मान लिया है।"[15]

स. "इसलिए बाणभट्ट की वर्णित घटना अर्थात् स्त्री-वेश धारण करके चन्द्रगुप्त का पर-कलत्र कामुक शकराज को मारना और ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह इत्यादि के ऐतिहासिक सत्य होने में सन्देह नहीं रह गया है।"[16]

जयशंकर प्रसाद की पुस्तक से यहाँ इतना ही लेना पर्याप्त है, तथा जो वे इस पुनर्विवाह को ले कर अगली वहस में पड़े हैं, उस की यहाँ बिलकुल जरूरत नहीं है। अगली बात रांगेय राघव से ली जानी चाहिए जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'महायात्रा : गाथा : रैन और चन्दा : भाग–2' में लिखी है। उन्होंने लिखा है :

क. "गुप्त और पुष्य भूति (वर्धन) वंश वैश्य वंश थे।"[17]

ख. "वैश्यों के इस उत्थान के उपरान्त अनेक राजपूत वंश उठे.... ।"[18]

ग. "गुप्तों के समय में शूद्रों ने उत्थान किया था। वे सेना में लिए जाते थे और उच्चपदों पर पहुँच जाते थे।"[19]

बौधायन धर्मसूत्र, गीता, थेरीगाथा और ध्रुवस्वामिनी की कथा से क्या निष्कर्ष निकलता है? निष्कर्ष यह निकलता है कि शूद्र और वैश्य एक ही वर्ग के लोग हैं तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय दूसरे वर्ग के लोग हैं। वैश्य और शूद्रों में स्त्री के पुनर्विवाह की परम्परा रही है जबकि ब्राह्मणों और क्षत्रियों में स्त्री के पुनर्विवाह की इजाजत नहीं है। अन्य तरह से भी इस तथ्य को हर ब्राह्मण विद्वान जानता है कि वैश्य और शूद्र एक थे। डा. कृष्णदत्त पालीवाल ने अपने लेख 'उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श' में लिखा है–"संस्कृत-ग्रन्थों में श्रम का ठेका केवल शूद्रों ने ही नहीं उठाया है, वैश्यों ने भी उठाया है। वे भी पशुपालन और खेती करते थे।"[20]

II

डा. राम शरण शर्मा ने डा. अम्बेडकर के इस मत को सही नहीं माना है कि शूद्र क्षत्रिय थे। वे अपनी पुस्तक 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' की भूमिका में लिखते हैं–"शूद्रों के सम्बन्ध में एकमात्र प्रवन्ध रचना (1946) सुविख्यात भारतीय राजनीतिज्ञ अम्बेडकर की है। यह शूद्रों के उद्भव के प्रश्न तक ही सीमित है।....लेखक ने पूरी सामग्री अनुवादों. ...से जुटाई है और इस से भी बुरी बात यह है कि उन के लेखन से यह आभास मिलता है कि उन्होंने शूद्रों को उच्च वंश का सिद्ध करने का दृढ़ संकल्प ले कर अपनी यह पुस्तक लिखी है। यह उस मनोवृत्ति का परिचायक है, जो हाल में नीची जाति के पढ़े-लिखे लोगों में उत्पन्न हुई है। 'शान्ति पर्व' के मात्र एक स्थल पर शूद्र पैजवन द्वारा किए गए यज्ञ को शूद्रों के मूलतया क्षत्रिय होने का पर्याप्त प्रमाण मान लिया गया है।. ...लेखक ने विभिन्न परिस्थितियों की उस पेचीदगी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है जिस के कारण शूद्र नामक श्रमजीवी वर्ग बना।"[21]

राम शरण शर्मा द्वारा की गई डा. अम्बेडकर के सिद्धान्त की आलोचना के विरुद्ध नहीं बोला जा सकता। लेकिन यह जाना जाए कि खुद राम शरण शर्मा शूद्र के बारे में क्या विचार रखते हैं। उन्होंने शूद्र को भारत में विदेशी मानने की कोशिश की है। उन का लिखना है –"यह सुझाव दिया जा सकता है कि ग्रीक 'कुद्रोस' शब्द का समानार्थक

है....जिसे होमर ने (ई. पू. दसवीं-नवीं शताब्दी) 'महान' के अर्थ में प्रयुक्त किया है और इस का प्रयोग सामान्यतया मर्त्यलोक के प्राणियों के लिए नहीं, वल्कि देवलोकवासियों की विशेषता वताने के लिए किया गया है।....भारत में, वाद में, शूद्र शब्द अपमानजनक माना जाने लगा, और उन लोगों के लिए व्यवहृत होता था जिन से ब्राह्मण अप्रसन्न थे। इसके विपरीत होमरकालीन ग्रीस में 'शूद्र' शब्द (कुद्रोस) प्रशंसावाचक था। हम यह कह सकते हैं कि 'कुद्र' नामक एक भारोपीय जनजाति थी जिस की शाखाएँ ग्रीस और भारत दोनों देशों में गईं। ग्रीस में इस शाखा को महत्व का स्थान मिला, लेकिन इस जाति के जो लोग भारतवर्ष आए उन्हें उन के सहआक्रमणकारियों ने हरा कर अपने अधीन कर लिया। इस कारण ग्रीस में कुद्रों का ऊँचा स्थान हुआ और भारत में शूद्रों का नीचा। एक ही शब्द के विभिन्न सन्दर्भ में विपरीत अर्थ होते हैं, जैसा कि असुर शब्द के उदाहरण से स्पष्ट है। भारत में असुर अनिष्टकर (शैतान) माना जाता है, किन्तु उस के प्रतिरूप 'अहुर' को ईरान में देवता माना जाता है।"[22] उन्हें कुछ शंकाओं के साथ 'यह संभव प्रतीत होता है कि दासों के समान शूद्र भी भारतीय आर्यवंश के लोगों से सम्वन्धित थे।"[23]

राम शरण शर्मा अगला सवाल उठाते हैं और उस का जवाव भी स्वयं देते हैं—"यदि शूद्र भारतीय आर्यों से सम्वद्ध थे, तो वे भारत में कव आए? कहा गया है कि वे भारत में आनेवाले आर्यों के किसी आरम्भ के दल के थे।"[24] वे लिखते हैं—"अतएव अनुमान किया जाता है कि शूद्र ई. पू. दूसरे सहस्राब्द के अन्त में भारत आए, जवकि उन्हें वैदिककालीन आर्यों ने पराजित किया और वैदिक काल के उत्तरवर्ती समाज ने उन्हें चतुर्थ वर्ण के रूप में अपनाया।"[25]

इस के वाद राम शरण शर्मा पुनः डा. अम्वेडकर के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। वे लिखते हैं—"उत्तर-पूर्व भारत में क्षत्रियों का विद्रोह गौतम वुद्ध और वर्द्धमान महावीर के उपदेशों के रूप में अपनी चरम सीमा पर आया। उन के अनुसार समाज में प्रमुख स्थान क्षत्रियों का था और ब्राह्मण उस के वाद थे। झगड़ा इस प्रश्न को ले कर था कि समाज में प्रथम स्थान ब्राह्मणों को मिले या क्षत्रियों को। न तो उत्तर-वैदिक और न मौर्य-पूर्व ग्रन्थों में ही कहीं ऐसा संकेत है कि ब्राह्मण चाहते थे कि क्षत्रियों को तृतीय या चतुर्थ वर्ण में रखा जाए या क्षत्रियों की यह इच्छा थी कि ब्राह्मणों की वह गति हो।"[26] वे और कई तर्क दे कर निष्कर्ष निकालते हैं—"अतः इस सिद्धान्त में शायद ही कोई वल है कि क्षत्रियों को शूद्र की स्थिति में पहुँचा दिया गया था।"[27]

रामशरण शर्मा अपनी पुस्तक 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' में दूसरी वात लिखते हैं— "धर्मसूत्रों, खासकर वसिष्ठ और गौतम के धर्मसूत्रों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि पवित्रता, भोजन और विवाह की दृष्टि से वैश्यों को शूद्र ही समझना चाहिए। यह ऐसी प्रक्रिया है जो समान रूप में वौद्ध ग्रन्थों में भी पाई जाती है। वुद्धदेव कहते हैं कि सम्बोधन, सत्कार, उपगम और वर्ताव के विषय में वैश्यों और शूद्रों की अपेक्षा क्षत्रियों

और ब्राह्मणों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।...वाद के (संभवतया मौर्यकालीन) एक बौद्ध ग्रन्थ में गोत्र केवल क्षत्रियों और ब्राह्मणों के ही बताए गए हैं।....जातक के एक प्रारम्भिक परिच्छेद में यह दावा किया गया है कि बौद्धों का जन्म वैश्य या शूद्र जाति में कभी नहीं होता है, बल्कि उन का जन्म दो अन्य उच्च जातियों में होता है।"[28] इस के बाद वे यह कमजोर बात भी लिखते हैं—"किन्तु यह परिच्छेद खास जातक का अंश नहीं है और इसे बाद का माना जा सकता है।"[29] वे निष्कर्ष निकालते हैं—"वैश्यों को शूद्रों में मिलाने की प्रवृत्ति प्रायः इस काल के अन्त की मालूम होती है। इस से शूद्रों की संख्या वढ़ी होगी, क्योंकि दरिद्र वैश्यों को इन शूद्रों की कोटि में रख दिया होगा।"[30]

लेकिन जो बौधायन धर्मसूत्र का प्रमाण है वह बहुत पहले के समय का है। स्वयं राम शरण शर्मा ने बौधायन धर्मसूत्र तथा वसिष्ठ और गौतम के धर्मसूत्रों का काल-निर्धारण 600 ई. पू. से लगभग 300 ई. पू. तक किया है।"[31] गीता के कुछ श्लोकों को बहुत प्राचीन माना गया है। थेरीगाथा त्रिपिटक का हिस्सा है, इसलिए उस की प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

वुद्ध देव की जो बात है वह भी मज्झिम निकाय से ली गई है।[32] इसलिए लगता ऐसा है कि हुआ कुछ इस के उलटा है—और गुप्त काल में वैश्यों को द्विज बनाने की प्रक्रिया शुरू हुई हो। स्वयं रामशरण शर्मा ने मनुस्मृति (VIII, 277) का हवाला देते हुए लिखा है कि 'द्विज (द्विजाति) शब्द केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि किसी शूद्र द्वारा किसी वैश्य को दुर्वचन कहे जाने पर यह दण्ड देना स्पष्टतया निषिद्ध है'[33] जो द्विज के प्रति गाली देने के लिए है।

'द्विजाति' और 'द्विजन्म' में फर्क हो सकता है। द्विजाति से 'द्विज' निकला हो तो 'द्विज' का क्या अर्थ है? 'द्विज' बनाया जाता है या द्विज जन्म लेता है? जिसे उपनयन कहा जाता है, उस के अनुसार ऐसा लगता है कि द्विज बनाया जाता है। इस में संस्कार द्वारा व्यक्ति का दूसरा जन्म होता है। 'जन्मना जायते शूद्राः संस्कारात् द्विज उच्यते'[34] से यही अर्थ निकलता है। लेकिन यह अर्थ भ्रामक भी हो सकता है। इस से केवल यह पता चलता है कि द्विजातियों का एक उपनयन संस्कार होता है। अभी भी असली शब्द 'द्विजाति' अपनी जगह अपने मूल अर्थ के लिए अलग से मौजूद है।

'द्विजाति' का मतलब 'दो जाति' है और ये ब्राह्मणी वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा बौद्ध वर्ण-व्यवस्था में क्षत्रिय और ब्राह्मण हैं। 'वैश्य' इन में नहीं है, नहीं तो यह 'त्रिजाति' हो जाती। केवल उपनयन की अनुमति देने से 'वैश्य' को द्विज कहा गया है, अन्यथा ब्राह्मणों और क्षत्रियों की 'द्विजाति' में वह कभी भी शामिल नहीं किया गया है। बात भी सही है, यदि संस्कार से ही किसी व्यक्ति को द्विज बनाया जाता होता तो इस तर्क पर शूद्र को भी संस्कार से द्विज बनाया जा सकता था। लेकिन हिन्दुओं के सामाजिक इतिहास में ऐसा कभी हुआ नहीं है। इस से ले कर मुद्राराक्षस ने अपनी पुस्तक 'धर्मग्रन्थों का पुनर्पाठ' में लिखा है—"मनु के अनुसार शूद्र तो जन्म से ही शूद्र

होता है। दूसरे अध्याय के श्लोक 155 में लिखा गया है—शूद्राणामेव जन्मतः। कुछ लोग जन्मनः जायते शूद्र संस्कारात् द्विजोच्यते के अर्थ को तोड़-मरोड़ कर यह सावित करने की कोशिश करते हैं कि जन्म के समय तो सभी शूद्र होते हैं, ब्राह्मण भी। संस्कारों द्वारा द्विज वनते हैं, यह कोरा अर्थभ्रंश है। शूद्र को मनुस्मृति सहित सारे ही सौ से ऊपर धर्मग्रन्थ संस्कारों से वंचित रखने की हिदायत देते हैं। तव शूद्र का संस्कार कैसे हो सकता है? कौन संस्कार की इजाजत देता है?"[35] मुद्राराक्षस ने आगे खुलासा किया है—"जो जनमना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते' को ले कर यह भ्रम फैलाते हैं कि संस्कार विना ब्राह्मण भी शूद्र होते हैं, उन्हें मालूम होना चाहिए कि शूद्र तो किसी संस्कार के अधिकारी ही नहीं होते।"[36]

मूल शब्द 'ज्ञाति' है जो लिपि के हिज्जों में 'ज्ञाति' है। इस के आगे दो विभाग हुए हैं। एक में 'ञ' का लोप करके 'जाति' रहने दिया गया तथा दूसरे में 'ज्' का लोप करके 'ञाति' बचा लिया गया। पाली भाषा में 'जाति' और 'ञाति' दोनों शब्द मौजूद हैं जिन में 'जाति' का अर्थ 'जन्म' तथा 'ञाति' का अर्थ आज की 'जाति' के रूप में लिया जाता है। 'ञाति' वाला विकास 'नाती' होने की तरफ गया है जो आज हिन्दी वालों के पास 'नाती', 'नातेदारी' और 'नातेदार' के रूप में पूरी तरह सुरक्षित है। धम्मपद में 'जाति' के प्रगोग इस प्रकार हैं :

1. न पुन जातिजरं उपेहिसि। धम्मपद (18.4 : 24.15)
   —"....तू....जन्म और बुढ़ापे के वन्धन में नहीं पड़ेगा।"[37]
2. ते वे जातिजरूपगा नरा। धम्मपद (24.8)
   —"....नर....ञाति तथा जरा के फेर में जा पड़ते हैं।"[38]

धम्मपद में ही 'ञाति' के प्रयोग इस प्रकार मिलते हैं :

1. न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका। धम्मपद (3.11)
   —"न माता-पिता, न दूसरे रिश्तेदार आदमी की उतनी भलाई करते हैं....।"[39]
2. न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि वान्धवा।
   अन्तकेनाधिपन्नस्स नाथि ञातिसु ताणता।। धम्मपद (20.16)
   —"न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता, न रिश्तेदार। जब मृत्यु पकड़ती है, तो रिश्तेदार नहीं बचा सकते।"[40]

III

डा. रांगेय राघव ने अपनी पुस्तक 'महायात्रा : गाथा : अन्धेरा रास्ता' में डा. अम्वेडकर की इस खोज को कि शूद्र पहले क्षत्रिय थे उन की हीनता की भावना में शामिल किया है। त्रेतायुग की गाथा में उन्होंने 'एक पात्र और' के शीर्षक का सृजन करके उस में

शम्बूक की कथा कही है। उसी कथा में वे लिखते हैं—"जिस भारत में मनु याज्ञवल्क्य और आपस्तम्ब के बनाए नियम चलते थे, उस भारत में अब भीमराव अम्बेडकर जैसे अछूत को ही कानून बनाने का अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु अब अपनी हीनता की भावना में वह व्यक्ति भी कहता है कि शूद्र असल में क्षत्रिय थे।"[41] उन्होंने आगे लिखा है—"अम्बेडकर (भीमराव) ने भ्रम में इसीलिए शूद्रों को क्षत्रिय कहा है, जैसे क्षत्रिय होना कोई कमाल की बात है।"[42]

यहाँ डा. अम्बेडकर के इस सिद्धान्त का बचाव नहीं किया जा सकता कि शूद्र क्षत्रिय थे। एकाध उदाहरण से पूरे इतिहास की व्याख्या नहीं की जा सकती। लेकिन डा. रांगेय राघव के इस कथन का जवाब जरूर दिया जा सकता है जिस में उन्होंने व्यंग्य किया है कि जैसे क्षत्रिय होना कोई कमाल की बात हो। मेरी एक बार इस विषय पर बाबू जगजीवन राम से बात हुई थी। मैंने उन से इस विषय पर उन की राय जानर्नी चाही थी कि डाक्टर अम्बेडकर कहते हैं कि शूद्र पहले क्षत्रिय थे। बाबू जगजीवन राम ने मुझ से कहा था कि जब डाक्टर अम्बेडकर सिद्ध करने ही चले थे तो क्षत्रिय ही सिद्ध करके क्यों रह गए, एक दर्जा और ऊपर चढ़ा कर सीधे ब्राह्मण सिद्ध करते, क्रम में एक चरण नीचे क्यों रह गए?

मेरा मतलब यहाँ डा. रांगेय राघव के व्यंग्य से है। वे स्वयं तैलंग ब्राह्मण थे। यदि डा. अम्बेडकर यह सिद्ध करने चलते कि शूद्र ब्राह्मण थे तो तब रांगेय राघव की प्रतिक्रिया क्या होती? मेरे मत में तब उन का मूल ब्राह्मण सामने आ जाता जो उन की दूसरी पुस्तक 'महायात्रा : गाथा : भाग-2: रैन और चन्दा' में उजागर हुआ है। वे ब्राह्मण के बारे में लिखते हैं—"....इस वर्ण में असीम साहस और अहंकार की सीमा तक जीवित रहने वाला स्वाभिमान था, जो कट सकता था, लेकिन झुक नहीं सकता था। ऐसे धार्मिक शहीद तो संसार में व्यक्ति रूप में बहुत से मिल जाएंगे जो किसी एक सिद्धान्त पर अड़े रह कर मर मिटे हों, पर ऐसा वर्ण शायद ही मिले, जो अपना सब कुछ बदल कर, दूसरे के देवता की पूजा करके अपने को ही उस पूजा का हकदार बताता हो। ऐसा शायद ही मिले, जिस ने सब कुछ खोते हुए यही कहा हो कि मैं तो स्वयं दे रहा हूँ, मैं तो भीख पर पल लूँगा, ऐसा शायद ही मिले, जिस ने अपने बन्धन में सारे समाज के आदमियों को पैदा होने के पहले से ले कर मरने के बाद तक अपने विधान में बाँध रखा हो और फिर भी सब से अलग बना रहने का दावा करता हो। ऐसा शायद ही मिले जिस ने सारे अधिकारों को छिनते देख कर आत्मरक्षा के लिए उन अधिकारों को आप ही कलियुग के लिए वर्जित कह दिया हो, समाज को अधःपतन की ओर जाता हुआ घोषित कर दिया हो, लेकिन फिर भी उसी समाज में अपने को सर्वश्रेष्ठ कहलाने में लगा रहा हो और निरन्तर इस वर्ण ने अपनी आदतें बदलीं, अपनी पोशाक बदली और न बदलने के लिए लड़ाई भी की, मगर फिर भी इस में एक गुण रहा कि इस ने अपनी रक्षा के लिए, अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए इस धरती के चप्पे-चप्पे को अपना कहा, उस की स्तुति की, उस

ने इस धरती के एक-एक पत्थर को देवता स्वीकार किया, उस ने इसी को पवित्र कहा, इसी की जनता पर अत्याचार करके भी, उसी की रक्षा के लिए विदेशियों के विरुद्ध लड़ कर लहू बहाया, उसी की रक्षा के लिए और अपने ढहते अधिकारों की रक्षा के लिए मानववादी जनवादी चिन्तन को सदैव स्वीकार किया। उस ने कभी दुरंगी चाल नहीं खेली। उस ने साफ शब्दों में अपने लिए ऊँचा स्थान मांगा। वह अपनी राय में इस धरती का एकमात्र शासक बन कर आया था। उस से क्षत्रियों ने अधिकार छीने, वैश्यों ने छीने, शूद्रों ने छीने। उस ने राज्य क्षत्रियों के हाथ खोया, धन वैश्यों के हाथ खोया, अपने प्रभुत्व का अधिकार दास प्रथा को तोड़ कर उठते हुए शूद्रों के हाथ खोया, वह जिन शूद्रों की छाया को गंदा कहता था, उन का पुरोहित बन कर उन के यहाँ दान लेने लगा। उस ने सब के आगे हाथ फैला कर भीख माँगी लेकिन एक आन उस की बराबर बनी रही कि उस ने सब का सिर अपने सामने झुकवा लिया। उस की सहिष्णुता भले ही परिस्थितिवश थी, किन्तु उस में गजब की धीरता थी।....ब्राह्मण वर्ण समाज का अंग बन कर लोगों का काम करता, उन के बच्चों को पढ़ाता, उन्हें तिथियाँ बताता, उन्हें ग्रहण बताता, उन के शादी ब्याह कराता, उन के मरों को फूँकता, शुरू जन्म की खुशी से उन के साथ हँसता, उन की मौत तक उन के साथ रोता हुआ रहता था। वह....महा(या)नियों की भाँति छिप कर व्यभिचार नहीं करता था। जब लोक में वाममार्ग फैल गया तो उस ने काममार्ग को भी उपासना और सिद्धि का एक अंगमात्र मान लिया।''[43]

इसी सोच के तहत तैलंग ब्राह्मण डा रांगेय राघव कह रहे थे कि क्षत्रिय होना कौन से कमाल की बात है क्योंकि ब्राह्मण अपनी वर्ण-व्यवस्था की स्कीम में क्षत्रिय को अपने सामने कुछ समझता नहीं है। उस का गुमान ही अलग है—और इस युग में इसे 'मानववादी जनवादी चिन्तन' भी कहा है। अगला जैसा समय आएगा, शब्द बदल कर, वैसा कह दिया जाएगा।

लेकिन मैं यहाँ इतिहास की बहुत मोटी बात कह रहा हूँ। कोई भी समाज हो, उस में दो वर्ग होते हैं—एक शासक और दूसरा शासित। शासक यदि विदेशी हों तो उन के फिर दो भाग होते हैं—एक धर्म को आगे ले कर चलता है और दूसरा राज्य को ले कर चलता है। जो देशी शासित लोग होते हैं उन के फिर दो भाग कर दिए जाते हैं—एक वे जो किसानगती का काम करते हैं और दूसरे वे जो शिल्पी और मजदूर होते हैं। भारत में आर्यों के रूप में ब्राह्मण और क्षत्रिय शासक बन कर आए थे। वे यहाँ किसानगती करने या बढ़ईगिरी करने नहीं आए थे। आर्यों के ब्राह्मण और क्षत्रिय के रूप में आपस में सर्वोपरिता के लिए झगड़े चल रहे थे। वे एक ही थे पर उन के दो भाग हो गए थे। जो शासक वर्ग धर्म और राज्य दोनों ले कर चलता है उस के ऐसे दो भाग हो जाना ऐतिहासिक प्रक्रिया का आवश्यक अंग है। इस विभाजन से कोई शासक कौम बच नहीं सकती। ईसाइयत में पोप के साम्राज्य के दो टुकड़े हुए और अंग्रेजों के भारत में आने और यहाँ से जाने तक दोनों अपनी-अपनी सीमाओं में कायम रहे। जब इस्लाम भारत

में आया तो इस में धर्म और राज्य का विभाजन कायम रहा और अकबर की दीन-ए-इलाही चलाने की लाख कोशिशों के वाद इस्लाम की धर्मसत्ता के सामने दीन-ए-इलाही खत्म हो गया। जो यवन, चीनी, शक, हूण, कुषाण जातियाँ इस देश में विना धर्म के आईं उन्होंने ब्राह्मण धर्म के क्षत्रिय होना कबूल कर लिया या वौद्ध धर्म में 'धम्मं शरणं गच्छामि' कर ली।

अब वात वैश्य और शूद्र की रह जाती है। कहना यह है कि चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में वैश्य का कार्य कृषि करना और कराना है। ब्राह्मण ने कसम खा रखी थी कि वह हल की मूठ पर हाथ नहीं रखेगा। जिन दिनों यह विभाजन हुआ था उन दिनों ब्राह्मण इस देश के गाँवों तक पहुँचा भी नहीं होगा। कामसूत्र तक ब्राह्मण नायक नगरों तक सीमित है। उधर, देश का राजा होता तो प्रतीक के रूप में कम से कम बुवाई वाले त्यौहार के पहले दिन खेत में बैलों के पीछे हल की मूठ पकड़ लेता, लेकिन जो विदेशी कभी भी शासक के रूप में किसी भी देश में गए हैं, उन्होंने उस देश में धूप में और वरसात में कमर पर नूढ़ कर न कृषि कर्म किया है और न खड़े हो कर करवाया ही है। विलकुल नहीं माना जा सकता कि सिकन्दर, कनिष्क, चंगेज खाँ, तैमूर या वावर या उन की औलादें भारत के गाँवों में हल जोतने आई थीं। अभी 58 साल पहले वापिस गए अंग्रेजों ने भारत के किस गाँव में वलदों को 'अटिया-अटिया' कहा था? कहने का आशय यह है कि आर्य काल में यूरोप के ठण्डे देशों से आए सूर्यवंशी क्षत्रिय और अरव की गर्म लूओं से तपते आए चन्द्रवंशी क्षत्रिय भारत देश में खेती करने या करवाने नहीं आए थे। वाद के किसी तुर्क सुल्तान ने भी यहाँ खेती नहीं की।

वैश्य का काम बहुत शारीरिक मेहनत का था। वाद में जो बणज उस के हाथ में आया उस काम को भी ब्राह्मण और क्षत्रिय करने वाले नहीं थे। वह भी कम शारीरिक मेहनत का काम नहीं था। फिर, जव ऐसा व्यवहार विश् वने वैश्य के साथ होता था तो शूद्र का काम ब्राह्मणों और क्षत्रियों में से कौन करने वाला था? 'वैश्य' और 'शूद्र' के शब्द विदेशी हैं लेकिन वे लोग देशी थे जवकि 'ब्राह्मण' और 'क्षत्रिय' में विदेशी शब्दों के साथ-साथ लोग भी विदेशी थे। फिर, वेदों में सुरक्षित आर्यों की कथाएं विदेशों में भी घटी हुईं हो सकती हैं। वहाँ उनका क्षत्रिय शूद्र बना हो, सो बना हो,—पर भारत में आर्यों का प्रसार कुछ और तरह का है। दक्षिण भारत तक में यह उत्तर भारत से अलग है।

इस से क्या निष्कर्ष निकलता है? निष्कर्ष यह निकलता है कि डा. अम्वेडकर की वह खोज और उस के आधार पर खड़ा किया गया सिद्धान्त पूरा सही नहीं है कि शूद्र क्षत्रिय थे। धर्मानन्द कोसम्बी अपनी पुस्तक 'भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन' में लिखते हैं—"आर्यों के आगमन से क्षत्रियों को महत्व मिल गया और ब्राह्मणों का महत्व नष्ट हो गया। तथापि पुरोहित का काम उस के पास रहा। यह स्थिति बुद्ध-काल तक चलती रही। पालि-वाङ्मय में सर्वत्र क्षत्रियों को प्रमुख स्थान दिया गया है, और उपनिषदों में भी उसी की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।"[11] उन्होंने अपने पक्ष में वृहदारण्यक

उपनिषद (1.4.11) से एक उद्धरण भी दिया है। यहाँ उस का अनुवाद भर दिया जा रहा है—"पहले केवल ब्रह्म था। परन्तु वह एक होने से उस का विकास नहीं हुआ। अतः उस ने उत्कृष्ट रूप क्षत्रिय जाति उत्पन्न की। ये क्षत्रिय थे देवलोक के इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान। अतः क्षत्रिय जाति से श्रेष्ठ दूसरी जाति नहीं है और इसीलिए ब्राह्मण अपने को हल्का समझ कर क्षत्रिय की उपासना करता है।"[45]

IV

अपवाद हर नियम के निकाले जा सकते हैं। अपवादों का होना स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत अनुमत है। लेकिन इस का मतलब यह नहीं कि अपवादों के भय से सामान्य नियम निकालने की खोज रोक दी जाए। उपनियमों की वजह से मुख्य नियमों को छोड़ा नहीं जा सकता। इसी बात को ध्यान में रख कर यह नियम जाना सकता है कि 'काला ब्राह्मण और गोरा चमार' की कहावत कहाँ तक ठीक है। कई बार इन दोनों का चिन्तन एक-सा हो सकता है। आर्यों और अनार्यों के झगड़े में काले रंग के ब्राह्मण और गोरे रंग के शूद्र खुद को कैसे समझें? घोषणा यह की गई है कि ब्राह्मण शुक्ल वर्ण के होते हैं और शूद्र कृष्ण वर्ण के होते हैं। लेकिन देखा जाता है कि ब्राह्मणों में काले रंग के लोग और शूद्रों में गोरे रंग के लोग मिलते हैं। बाद की वजह से पहला सिद्धान्त गलत सिद्ध होने लगता है।

तर्क सीधा-सा है, काले रंग का ब्राह्मण यह कैसे माने कि ब्राह्मण शुक्ल वर्ण के होते हैं? उस के ब्राह्मण होने का वजूद इस बात पर टिका है कि ब्राह्मण काले भी होते हैं। यही बात गोरे शूद्र के बारे में भी कही जा सकती है। वह कैसे माने कि शूद्र गोरे नहीं होते? उस का खुद का रंग इस बात का प्रमाण है कि शूद्र गोरे भी होते हैं।

यह मानने में कुछ भी गलत नहीं है कि आर्यों और अनार्यों की नस्लों में जबर्दस्त अन्तर्भुक्ति हुई है। शरीरों के रंगों के आधार पर अब वर्णों की पहचान पक्की नहीं है। लेकिन यह तर्क निकालना कि आर्य विदेशी नहीं थे, देशी ही थे—इस की क्या जरूरत है? नस्लों की और रंगों की अन्तर्भुक्ति हो गई है तो उस अन्तर्भुक्ति को एक तथ्य मानो लेकिन उस की वजह से पहले तथ्य को नहीं झुठलाना चाहिए कि अन्तर्भुक्ति से पहले उन में देशी और विदेशी का अन्तर रहा था। मुझे एक ब्राह्मण मिले जो काले रंग के थे। उन का कहना था कि काले रंग का होने की वजह से उन्हें ब्राह्मणों की जमात में पूरा सम्मान नहीं मिलता। वे अपने ब्राह्मण समाज में दुखी हैं। उन का यह भी कहना था कि इस देश का झगड़ा तब मिटेगा जब ब्राह्मण और शूद्र के भेद को भुला कर सारे काले रंग के लोग एक तरफ हो कर सारे गोरे रंग के लोगों से लड़ेंगे। जाहिर है, ऐसा होने नहीं जा रहा है। लेकिन उन महोदय का मानना है कि यदि ऐसा होने नहीं जा रहा है तो इस देश की समस्या का समाधान भी निकलने नहीं जा रहा है। लेकिन रंगों के आधार पर बटवारे की बात अलग, इस देश में सर्वहारा और बुर्जुवा वर्ग का बटवारा भी मार्क्सवादी

ढंग से नहीं हो सका। एक गरीब ब्राह्मण अपनी बेटी गरीब भंगी के घर में देने नहीं जा रहा है।

अध्ययन करने के बहुत से तरीके हैं लेकिन यहाँ इतना जाना जाए कि डा. कृष्ण दत्त पालीवाल ब्राह्मण हैं और रंग के काले हैं। उधर, डा. अम्बेडकर दलित हैं और रंग के गोरे हैं। इस सन्दर्भ में जाना जाए कि डा. कृष्णदत्त पालीवाल अपने लेख 'उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श' में डा. अम्बेडकर की इस बात से बहुत खुश हैं कि उन्होंने आर्यों को विदेशी नहीं माना। वे लिखते हैं—"स्वयं डा. अम्बेडकर 'आर्य आक्रमण सिद्धान्त' को नहीं मानते हैं और कहते रहे हैं कि उन के पास पर्याप्त प्रमाण है कि आर्य बाहर से नहीं आए। इस आर्य आक्रमण सिद्धान्त को डा. अम्बेडकर ने दलित समस्या के रूप में देखा और पाया कि काले मूल निवासियों पर गोरे आर्यों ने आक्रमण किया ही नहीं।"[46] डा. पालीवाल पूरी मेहनत से लिखते हैं—"काले-गोरे का फर्क प्राचीन इतिहास में दृढ़ होता तो राम और कृष्ण काले न होते। सीता गौरवर्ण हैं—राधा गौरवर्णयी हैं—लेकिन द्रोपदी काली हैं श्यामा हैं, और द्रोपदी से ज्यादा सुन्दर कौन हैं? कोई नहीं।"[47] वे अपने इस छोटे-से लेख में अपनी सारी बातें कह जाते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. "....डा. राम विलास शर्मा....आर्य-आक्रमण के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते।....इस सिद्धान्त को डा. राम विलास शर्मा स्वीकार करना तो दूर कपोल-कल्पित और अतार्किक साम्राज्यवादी सिद्धान्त पाते हैं।"[48]
2. "....नई खोजों को विशेषकर पुरातात्विक खोजों को आधार बना कर ही डा. राम विलास शर्मा ने आर्य आक्रमण सिद्धान्त तथा आर्यभाषा सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया है। अतः आर्यों का आदि देश भारत है, कोई अन्य देश नहीं।"[49]
3. "अब 'अवेस्ता' से ऋग्वेद के साम्य को दिखाना-बेकार हो गया है और इस(!) अबौद्धिक जड़ता का प्रतीक माना जाने लगा है।"[50]

लेकिन इस सब का उद्देश्य क्या है? क्यों 'अवेस्ता' से ऋग्वेद का मिलान करने को अबौद्धिक जड़ता कहा जा रहा है? डा. कृष्णदत्त पालीवाल का लक्ष्य यह इस प्रकार है :

1. "इसलिए आज प्राचीन न्याय-अन्याय का रोना अपना संदर्भ खो चुका है। द्विज-संस्कृति तथा शूद्र-संस्कृति की खोजबीन आज मात्र आकादमिक मुद्दा रह गया है।"[51]

यहाँ लेखक भारत के सारे इतिहास को एक डकार में हज्म कर गए हैं। ब्राह्मण इतिहास का जन्मजात वैरी है। वह अपनी हर लिखत से इतिहास को मिटाने में लगा हुआ है। कुछ स्पष्ट नहीं होने देता। हर बात को उलझा कर छोड़ देता है। डा. कृष्णदत्त पालीवाल प्रश्न उठाते हैं—".... क्या प्राचीन भारत के शूद्र आधुनिक भारत के 'दलित' कहे जा सकते हैं क्योंकि वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा में भारी परिवर्तन करती स्थितियाँ

दिखाई देती है।"[52] वे लिख रहे हैं–"दलित-विमर्श की अवधारणा शिव की उलझी वे जटाएं हैं जिन्हें सुलझा पाना चुनौती है।"[53] कबीर की भाषा में, सुलझाने के बजाय उलझाने वाला उन का यह चिन्तन उसी क्रम में आया है जिस में उन्होंने अपने इसी लेख में लिखा है–"ब्राह्मणों में ऐसा लचीलापन है कि वे टूटते नहीं हैं और मजबूत हो जाते हैं और ज्यादा संगठित और ज्यादा दांव-पेंच सीख कर चतुर-चतुर्भुज द्विज का मायालोक रच लेते हैं।"[54] फिर, उस मायालोक की सृष्टि भी इसी लेख में हो जाती है जब डा. कृष्ण दत्त पालीवाल लिखते हैं–"आज सभ्यताओं के नए संघर्ष फुफकार रहे हैं और उस ओर ही ध्यान केन्द्रित हो रहा है। इस ध्यान केन्द्रण से पूरे विश्व का सिर गरम है, भन्नाया हुआ है, बेचैन है और भयंकर यातनाओं को मानव झेल रहा है। हर विश्वास खंडित हो गया है और हर मूल्य कलंकित।"[55] नए कलियुग का कैसा खूबसूरत चेहरा खींचा गया है! सोच कितनी जल्दी अन्तरराष्ट्रीय और सार्वलौकिक हो गई है!! अपने देश के दलित की समस्या को धूल में रला कर ध्यान विश्व स्तर पर सभ्यताओं के संघर्ष की ओर केन्द्रित किया जा रहा है। चाहत यह है कि दलित अपने ऐतिहासिक और वास्तविक भुखमरी और बलात्कार के दुख-दर्दों को भूल कर यूरोप की खुशहाली और मॉरैलिटी से लड़ने में ब्राह्मणों की मदद करें। दलितों के संकट भाड़ में जाएं और डी. एन. ए. के टेस्ट से पैतृकता का निर्धारण करने वाले यूरोप के वैज्ञानिक परीक्षणों से भारत के ब्राह्मणों को निजात दिलाई जाए।

तब समस्या का हल यह है कि आजीवक लोग चार शब्दों का प्रयोग नहीं करते–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस देश के धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक इतिहास को जानने का यह तरीका अपूर्ण और गलत है कि चार वर्णों के नाम लिए जाएँ। आजीवकों का अपना इतिहास इन चार वर्णों का वर्णन और बखान किए बिना मिलता है। चार वर्णों का वर्णन करना ब्राह्मणों और क्षत्रियों के ट्रैप में आ जाना है। आजीवकों का इन चार वर्णों में से किसी वर्ण में जन्म नहीं हुआ। कबीर पूछते ही रह जाते हैं–'कौण बांभण कौन सूदा।'[56]

यहाँ कबीर की भाषा यही बताती है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–ये चारों शब्द विदेशी हैं। ये भारत की जनता से कभी इन के मूल उच्चारणों में बोले नहीं जा सके हैं। ऊपर कबीर ने 'ब्राह्मण' को 'बांभण' और 'शूद्र' को 'सूदा' कहा ही है। ऐसे ही, 'क्षत्रिय' को खत्री, छतरी और खत्तिय तथा 'वैश्य' को 'बैस' कहा जाता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम ले कर ब्राह्मणों और क्षत्रियों का अपने-अपने इतिहास जानने का तरीका है। उन के पास यही सीमित सामाजिक शब्दावली है। भारत की मूल जनता अपना इतिहास इस चार विदेशी शब्दों का इस्तेमाल किए बिना भी लिख सकती है। जब मुसलमान इतिहासकार इस देश का इतिहास लिखते हैं तो वे भी अपने चार शब्दों का इस्तेमाल करते हैं–शेख, सय्यद, मुगल, पठान। जब यूरोपवासी इस देश में अपना इतिहास लिखते हैं तो वे भी चार शब्दों का इस्तेमाल करते हैं–अंग्रेज, फ्रांसीसी,

पुर्तगाली और डच। ऐसे ही, जब आर्य लोग इस देश में अपना इतिहास लिखते हैं तो उन के अपने चार विदेशी शब्द हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। भारत की मूल जनता न शेख, सय्यद, मुगल, पठान में से कोई है, न अंग्रेज़, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच में से कोई है और न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में से कोई है। हमारे निर्गुणी सन्तों ने डंके को चोट कहा है कि उन का चारों वर्णों में से किसी में भी जन्म नहीं हुआ है।

V

डा. अम्बेडकर ब्राह्मणों के ट्रैप में आ गए हैं। इसी ट्रेप में फंस कर उन्होंने अपनी पुस्तक 'हू वर द शूद्राज? हाउ दे केम टु बी द फोर्थ वर्णा इन द इन्डो-आर्यन सोसायटी' लिखी थी। बौद्धों के ट्रेप में आ कर उन्होंने अपनी अगली पुस्तक 'द अनटचेबल्सः हू वर दे एण्ड व्हाई दे बिकेम अनटचेबल्स?' लिखी थी।

ब्राह्मणों का जो ट्रैप है, वह वर्ण-व्यवस्था का है। उन के पास वर्णों की संख्या एक-सी नहीं रही है। एक-सी न रहने का कारण इतिहास का आगे बढ़ना है। शुरू की लड़ाई में वे एक ही लोग थे और योद्धा थे। जब उन का राज्य कायम हो गया तो उन्होंने खुद को ब्राह्मणों और राजन्यों में बाँटा। राजन्य क्षत्रिय कहे गए। लेकिन आर्यों का अपना पूरा समाज था। वे कहीं से भी आए हों, उन के अपने पुरोहित, अपने राजा, अपने कृषक और अपने मजदूर थे। किसी भी पूरे समाज में इन सब की जरूरत पड़ती ही है। जब तक आर्य लोग इस देश में विदेशी बने रहे या बाहर रहे, उनके चारो वर्णों के लोग आपस में बदल जाते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के वर्ण बदल सकते थे। किसी भी गतिशील समाज के लिए ऐसी व्यवस्था जरूरी है कि एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण को अपना ले या एक वर्ण के आदमी को दूसरे वर्ण में ढकेल दिया जाए। आज की कैटेगरी के बीपीएल और एपीएल के आर्थिक वर्गों के साथ भी ऐसा होता है।

यह जो ब्राह्मण लोग बड़ी चतुराई से कहते हैं कि उन की वर्ण-व्यवस्था पुराने समय में कर्मगत थी, उस का यही मतलब है। जब तक वे विदेश में रहे, वे कर्मगत थे, भारत में आ कर भी वे कुछ समय तक कर्मगत बने रहे, लेकिन भारत के लोगों के साथ जुड़ जाने के साथ और यहाँ स्थायी रूप में बस जाने के कारण उन्होंने अपनी वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत घोषित किया। ऐसा करना उन के लिए जरूरी हो गया था। भारतीयों के साथ अन्तर्भुक्ति में उन्हें अपनी अलग पहचान बरकरार रखनी थी और भारतीयों से जुड़ना भी था।

शुरू में भारतीय मूल के लोगों को उन्होंने 'विश' कहा था जबकि उन के अपने भी 'विश' थे। बाद में 'विश' को दोफाड़ करके 'वैश्य' और 'शूद्र' कहा। यह भी ध्यान रहे कि उन के अपने 'वैश्य' और 'शूद्र' भी थे। हुआ तो यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चारों शब्द विदेशी आर्यों के ही हैं। यह कहने में भाषा-विज्ञान बड़ी मदद करता है कि भारत में ये चारों वर्ण विदेशी हैं। उन के काले-गोरे भी अपने हैं। मालूम

नहीं, गोरे आर्यों ने अपने काले आर्य कहाँ से पकड़े थे। इसीलिए, आर्यों के मूल स्थान के बारे में आज तक कुछ सुलझा नहीं है।

खैर, कहना यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार शब्द भारतीय नहीं हैं। इन की उत्पत्ति भारत में नहीं हुई। ये भारतीय भाषाओं में मिला दिए गए हैं पर ये उन भाषाओं में तद्भव हो गए हैं। भारतीयों ने इनका तत्सम रूपों में प्रयोग नहीं किया। यह उन के लिए कभी सम्भव नहीं रहा।

अगली बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भारत में और भारत की धरती से वाहर आपस में खूब लड़े हैं। उन की आपसी लड़ाइयों से भारतीयों का कोई लेना-देना नहीं है। आर्यों के चार वर्णों की आपसी लड़ाइयाँ ऐसी ही रही हैं जैसे मध्यकाल के इतिहास में भारत में और भारत से वाहर इस्लाम की चार जातियाँ—शेख, सैयद, मुगल और पठान आपस में लड़ी हैं। और भी नजदीक का उदाहरण लिया जाए तो चार वर्णों की आपसी लड़ाइयाँ ऐसी रही हैं जैसी ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों, फ्रांसिसियों, डचों और पुर्तगालियों की लड़ाइयाँ भारत में और भारत से वाहर रही हैं।

फिर, भारतीय लोगों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे बनाया गया? शुरू-शुरू में यह कार्य सेलेक्टिव आधार पर किया गया। अंग्रेजों ने भी भारतीय लोगों में से कुछ को छाँट कर उन्हें 'सर' आदि की उपाधियाँ देनी शुरू कर दी थीं। आज भी भारतीय मूल के लोगों को इंग्लैंड में 'लार्ड' की पदवी दी जाती है। ऐसा तभी हुआ जव अंग्रेज वाहर से शासन करते रहे। यदि वे इस देश में वस जाते तो उन का इतने मात्र से काम नहीं चल सकता था। इस्लामी सल्तनत के सैयद भारत में आज तक अपनी अलग पहचान वनाए हुए हैं जवकि वे यहाँ स्थायी रूप से बसे हुए हैं। चूँकि आर्य लोग भारत में वस गए थे, इसीलिए अन्तर्भुक्ति को ज्यादा दिनों तक रोका जाना सम्भव नहीं था। फिर भी, उन्होंने विवाहों के अपने अलग प्रकार कायम रख कर भारतीयों से दूरी वनाए रखी।

अन्तर्भुक्ति न भी होती तो भी अंग्रेजों की तरह एंग्लो-इण्डियनों जैसी समस्या हर देश में वनती है। आर्यों की यह ज्यादा भारी समस्या थी। वे भारत में 'व्यास' जैसी सन्तानों को जन्म दे रहे थे। वलात्कार और जारकर्म उन से रुक नहीं रहा था। उस से सन्तान पैदा हो रही थी। ऐसी सन्तान अपनी माता से अपने वाप का नाम पूछती थी। इस की संभाल के लिए आर्यों ने वर्णक्रम में अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के भेद वनाए और 13 प्रकार के जायज और नाजायज पुत्र घोषित किए।

इस सन्दर्भ में देखा जाए तो पता चलेगा कि डा. अम्वेडकर इस चक्कर में पड़े रहे कि वे क्षत्रिय थे या शूद्र थे। असल में न वे क्षत्रिय थे और न शूद्र थे क्योंकि वर्णों के चारों शब्द संस्कृत के—अर्थात विदेशी हैं। लेकिन वे इस चार वर्ण की माया का पार नहीं पा सके और चक्रव्यूह में उलझ कर रह गए। यह आर्यों की मजबूरी और होशियारी थी कि भारतीय लोगों को भी उन्होंने अपने वर्णों के चश्मों से देखा। उन्होंने 'फूट डालो और

राज करो' की रणनीति का भरपूर लाभ उठाया। भारतीयों में से किसी जाति को क्षत्रिय कह दिया और किसी को शूद्र मान लिया। यह अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के 'सर' की उपाधि देने की बात से भी आगे की बात थी। सुलतानों ने भी मुसलमान बने हिन्दुओं को अपने समय की कई पदवियों से नवाजा था लेकिन वे फिर भी उन्हें अपने से छोटा मानते थे और शक की निगाह से देखते थे। उधर, मूल भारतीय समाज में पेशेवर जातियाँ थीं जिन्हें आर्यों ने अपने चार वर्णों के खांचे में फिट किया। आर्य पांचवां वर्ण वनाने के लिए भी मजबूर थे लेकिन उन्होंने सख्ती से काम ले कर वर्णों को चार तक ही सीमित रख दिया। उन्हें घोषणा करनी पड़ी कि पांचवां वर्ण नहीं होता लेकिन इस के लिए 'वर्ण-वाह्य' शब्द अस्तित्व में आ ही गया। उन्होंने वर्ण-वाह्यों में, कुछ को 'अस्पृश्य' और कुछ को 'म्लेच्छ' नाम दिए। तभी दलित जातियों के निर्गुण सन्तों ने घोषणा की है कि चार वर्णों में से किसी में भी उन का जन्म नहीं हुआ है। उन्होंने आर्यों की वर्ण-व्यवस्था स्वीकार नहीं की क्योंकि यह विदेशी है। न वे शेख, सैयद, मुगल और पठानों में से हैं और न ही उन की औलाद अंग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और डचों में से है। वे केवल भारतीय हैं। यह भी एक संयोग कहिए कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के वाद भारत के इतिहास में आक्रमणकारियों की एक चौकड़ी मिलती है जो यवन, शक, कुषाण और हूणों की है। उन के वाद की चौकड़ियों शेख, सैयद, मुगल, पठान और अंग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और डचों की हैं।

भारत का एक इतिहास ऐसा है जो चार चौकड़ियां के विना लिखा जाना है। ये चार चौकड़ियाँ बड़ी चौकड़ियाँ हैं और धमा चौकड़ियाँ हैं। ये इस प्रकार हैंः

पहली चौकड़ी	:	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र
दूसरी चौकड़ी	:	यवन, शक, कुषाण, हूण
तीसरी चौकड़ी	:	शेख, सैयद, मुगल, पठान
चौथी चौकड़ी	:	अंग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, डच

इन 4 चौकड़ियों के इन 16 शब्दों के बिना जो भारत का इतिहास लिखा जाएगा, वह भारत का असली इतिहास होगा। प्राचीन काल का इतिहास लिखने में डा. अम्वेडकर ने जो रास्ता अपनाया वह आर्यों की शब्दावली का है। उन का प्रयास सराहनीय है। डा. अम्वेडकर इतने ईमानदार भी हैं कि उन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास की अपनी खोजों को अन्तिम नहीं माना था। इतिहासकार के रूप में उन की इस ईमानदारी को प्रणाम ही किया जा सकता है। वे 'नाग' जाति को ढूँढ़ने की वजह से मूल इतिहास को वड़ी सीमा तक पकड़े हुए भी हैं। विद्वानों को उस ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए जिस ओर डा. अम्वेडकर ने इशारा किया है। महाभारत की महान अन्तर्भुक्ति में वर्णों की आपसी लड़ाई नहीं है वल्कि नागों का नाश किया गया था। जनमेजय का नागयज्ञ हो या कृष्ण का यमुना में कालिया दहन—इन पुराण-कथाओं में लड़ाई नाग जाति के खिलाफ ही हुई है।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-257-58
2. वही, पृ.-258
3. वही, पृ.-258
4. बौधायन धर्मसूत्रम्, हिन्दी व्याख्याकार, डा. उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पोस्ट बोक्स नम्बर 1139, जड़ाव भवन, के. 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-221001, तृतीय संस्करण, वि. सं. 2047
5. वही
6. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, मूल लेखक डा. पाण्डुरंग वामन काणे, अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, तृतीय संस्करण 1980, पृ.-299
7. पहला खत, धर्मवीर, समता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, पहला संस्करण 1991, पृ.-40 पर उद्धृत
8. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिम पुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-259
9. वही, पृ.-259-60
10. वही, पृ.-263
11. वही, पृ.-263
12. वही, पृ.-263
13. वही, पृ.-263
14. ध्रुव स्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, सन्मार्ग प्रकाशन, 16-यू बी बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण 1991, सूचना, पृ.-3
15. वही, पृ.-4
16. वही, पृ.-4
17. महायात्रा : गाथा : रैन और चन्दा : भाग - 2, डॉ. रांगेय राघव, किताब महल प्राइवेट लिमिटेड, 56ए, जीरो रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1964, पृ.-461
18. वही, पृ.-461
19. वही, पृ.-461
20. उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, अपेक्षा, 27 घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, जुलाई-सितम्बर 2004, पृ.-140
21. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राम शरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पेपर बैक संस्करण, पुनरावृत्ति 1997, पृ.-12
22. वही, पृ.-33-4
23. वही, पृ.-34
24. वही, पृ.-34
25. वही, पृ.-34
26. वही, पृ.-35
27. वही, पृ.-36
28. वही, पृ.-128
29. वही, पृ.-128
30. वही, पृ.-128
31. वही, पृ.-310
32. वही, पृ.-145
33. वही, पृ.-187
34. उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श, डा. कृष्ण दत्त पालीवाल, अपेक्षा, 27 घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, जुलाई-सितम्बर 2004, पृ.-140
35. धर्मग्रन्थों का पुनर्पाठ, मुद्राराक्षस, इतिहास बोध प्रकाशन, बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद-211004, प्रथम संस्करण, सितम्बर, 2004, पृ.-105
36. वही, पृ.-127
37. धम्मपदं, अनुवादक डा. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, कामठी रोड,

नागपूर-441002, सातवाँ संस्करण, 14 अक्टूबर 1996, पृ.-58, 82
38. वही, पृ.-80
39. वही, पृ.-11
40. वहीं, पृ.-68
41. महायात्रा : गाथा : अँधेरा रास्ता, डा. रांगेय राघव, किताब महल, 15 थार्नहिल रोड, इलाहावाद, द्वितीय संस्करण 1967, पृ.-629
42. वही, पृ.-950
43. महायात्रा : गाथा : रैन और चंदा : भाग-2, डा. रांगेय राघव, किताब महल, प्राइवेट लिमिटेड, 56 ए, जीरो रोड, इलाहावाद, प्रथम संस्करण 1964, पृ.-770-71
44. भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन, धर्मानन्द कोसम्बी, अनुवादक श्रीपाद जोशी, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1982, पृ.-213
45. वही, पृ.-213
46. उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श, डा. कृष्णदत्त पालीवाल, अपेक्षा, 27 चौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, जुलाई-सितम्बर 2004, पृ.-143
47. वही, पृ.-142
48. वही, पृ.-139
49. वही, पृ.-143
50. वही, पृ.-143
51. वही, पृ.-141
52. वही, पृ.-142
53. वही, पृ.-142
54. वही, पृ.-138-39
55. वही, पृ.-141
56. The Millenium Kabir Vāṇi : A Collection of Pad-s, Winand M. Callewaert in Collaboration with Swapna Sharma and Dieter Taillieu, Manohar Publishers & Distributors, 4753/23, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110009, Ist Edition 2000, p.-164.

अध्याय–8

बौद्ध धर्म में ब्राह्मण वेदसमेत है

थेरीगाथा में ब्राह्मण वचा रह गया है। उस में ब्राह्मण का कुछ नहीं विगड़ा। वह बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जा कर भी ब्राह्मण के रूप में वचा रहता है। थेरी गाथा की 251वीं गाथा इस प्रकार है :

ब्रह्मवन्धु पुर आसिं, अज्जम्हि सच्चवामणो।
तेविज्जो वेदसम्पन्नो, सोत्तियो चम्हि न्हातको" ति।।

—"पहले मैं नाममात्र का, पतित ब्राह्मण था, इस समय मैं सच्चा ब्राह्मण हूँ, तीनों विद्याओं का ज्ञाता हूँ और वेद-सम्पन्न ब्राह्मण हूँ, आज मैं सच्चे अर्थों में श्रोत्रिय है, स्नातक है।"[1]

291वीं गाथा भी थोड़े से शब्दों के भेद से इसी अर्थ की है :

ब्रह्म वन्धु पुरे आसिं, सो इदानिम्हि वामणो।
तेविज्जो सोत्तिया चम्हि, वेदगू चम्हि न्हातको।। 291।।

—"पहले में नाम-मात्र का ब्राह्मण था, इस समय मैं सचमुच ब्राह्मण हूँ। आज मैं तीनों विद्याओं का जानकार हूँ, श्रोत्रिय हूँ, वेद जानने वाला हूँ, सच्चे अर्थों में स्नातक हूँ।"[2]

आश्चर्य की वात है, डा. विमलकीर्ति ने इन गाथाओं का अनुवाद करते समय अपनी तरफ से कोई टीका-टिप्पणी नहीं की। एक दलित को इन गाथाओं से अपनी असहमति प्रकट करनी ही चाहिए थी। बौद्ध धर्म को अपना कर भी केवल ब्राह्मण ही नहीं बचा है बल्कि वह अपने वेदों समेत वचा है—वह श्रोत्रिय और स्नातक के रूप में वचा है। लेकिन डा. विमल कीर्ति इस पर क्या टिप्पणी करते क्योंकि धम्मपद का अन्तिम वग्गो वामणवग्गो ही है? हुआ यह है कि बौद्ध ग्रन्थों को ले कर जहाँ डा. अम्वेडकर ने अपनी कोई आपत्ति दर्ज नहीं की, वहाँ डा. विमल कीर्ति भी मौन साध गए हैं। थेरीगाथा की एक अन्य गाथा इस प्रकार है :

तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुय्हं धीताम्हि वामण।। 337।।

—"आप बुद्ध हैं, त्रिलोकी के शास्ता हैं, ज्ञानी, ब्राह्मण हैं।"[3]

और किस की कहें, खुद धम्मपद इस का सबूत है कि ब्राह्मण का सम्मान उस के

वेदसमेत हुआ है। यहाँ धम्मपद का 26वाँ ब्राह्मणवग्गो पूरा का पूरा उद्धृत किया जा सकता है लेकिन 392वाँ पद ही दिया जा रहा है :

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो।।

—"जिस उपदेशक से बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म जाने उसे वैसे ही नमस्कार करे, जैसे ब्राह्मण अग्नि होत्र को।"[4]

यही ब्राह्मण की विशेषता और रणनीति रही है। अभी पिछली वार भारत में मार्क्सवाद के साथ उस ने यही बर्ताव किया है। केरल के एक मार्क्सवादी चिन्तक ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद रहे हैं। वे नम्बूदरी ब्राह्मण थे। उन्होंने मार्क्सवाद को किस रूप में अपनाया था? मलयालम भाषा में एक पुस्तक 'भारतीय दर्शनम् ओरु सम्वादम्' है। इस में ई. एम. एस. नम्बूदरीपाद का एक लेख 'गोडसेयुडे दर्शनवुम् मार्किससवुम्' संग्रहीत है। आगे उस के एक पैरे का अनुवाद कर के रखा जा रहा है—"यह कहा जाता है कि भारत में मार्क्सवाद का बीजारोपण रूसी क्रान्ति के घटित होने से हुआ है। उस अर्थ में यहाँ मार्क्सवाद एक आयातित माल ठहरता है। लेकिन सात दशकों से अधिक समय के अन्तराल के कारण इस ने अपना भारतीय स्रोत वना लिया है। उस की सन्तति होने के नाते और उस के विकास में सार्थक भाग लेने वाले एक व्यक्ति होने के नाते मैं दावा करता हूँ : वेदोपनिषद आदि के भारतीय सांस्कृतिक भंडार को और मार्क्सवाद-लेनिनवाद के क्रान्तिदर्शन को मैंने भारतीय मार्क्सवाद में मिला कर आगे वढ़ाया है।"[5]

यह खुशी की वात नहीं है जो नम्बूदरीपाद ने ऊपर कही है बल्कि मार्क्सवादियों के लिए विलाप करने की जगह है। उन्हें शोक मनाना चाहिए कि एक वेदोपनिषद आदि के सांस्कृतिक भंडार में विश्वास रखने वाला ब्राह्मण अपने उस सब को मार्क्सवाद-लेनिनवाद से जोड़ रहा है। उस ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद को शब्दों के डिब्बे भर मान कर उसे खींचने के लिए अपना वैदिक इन्जन लगाया है। यह इस भारतीय ब्राह्मण की मार्क्सवादी रेल बनी है। ऐसा लिखने से पहले इस ब्राह्मण मार्क्सवादी ने यह ध्यान भी नहीं रखा कि कार्ल मार्क्स यहूदी थे। उन का एक प्राचीन धर्म था। यहूदियों की धर्म पुस्तक तौरेत है। मार्क्स ने साम्यवाद का अपना सिद्धान्त निकालते समय यह नहीं कहा कि वे तौरेत से साम्यवाद निकाल रहे हैं। फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी यह नहीं कहा कि वे साम्यवाद को बाइबल से जोड़ रहे हैं। मार्क्सवाद की खोज में उन्होंने तौरेत और बाइबल के सांस्कृतिक भंडार को स्वीकार नहीं किया। इधर, भारत में एक ब्राह्मण वर्ण है कि हर वाद को लाजिमी रूप में अपने वेदोपनिषदों और पुराणों से जोड़ता है। तभी भारत में मार्क्सवाद फेल हुआ है। यही काम प्राचीन काल में बौद्ध धर्म के साथ यह थेरीगाथा नाम की किताब कर रही है कि बौद्ध धर्म में ब्राह्मण अपने वेदों को साबुत बचा रहा है—अर्थात बौद्ध धर्म को बेअसर और निरर्थक कर रहा है। बताइए, दलित लोग मार्क्सवाद को इसलिए अपनाना चाहते हैं कि इस से उन का ब्राह्मणों की वर्ण-व्यवस्था से पीछा छूटेगा लेकिन इधर ब्राह्मण नम्बूदरीपाद मार्क्सवाद को इसलिए अपना रहे हैं ताकि उन की वेदोपनिषद की वर्ण-व्यवस्था कायम रह सके। एक दूसरे ब्राह्मण धर्मानन्द कौसाम्बी ने

यही रास्ता बौद्ध धर्म की व्याख्या को ले कर अपनाया था। उन्होंने भी अपनी पुस्तक 'भगवान बुद्ध' में यही मत रखा है और सिद्ध भी किया है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मणों और वैदिक धर्म के विरुद्ध नहीं था।

ब्राह्मण अपने वेद समेत सम्मानित बचा ही नहीं रह गया है बल्कि वह बौद्ध धर्म का मालिक भी बना है। भद्दा कापिलानी की गाथा इस का प्रमाण है।

भद्दा कापिलानी का जन्म स्यालकोट में कोसिक-गोत्रीय ब्राह्मण-कुल में हुआ था। मगध के महातित्थ गाँव के निवासी पिप्पली नामक माणवक के साथ उस का विवाह हुआ। यह माणवक ब्राह्मण बाद में महाकाश्यप नाम से जाना गया। भद्दा कापिलानी ने उस के बारे में इस प्रकार गाथा कही है—"पुत्तो बुद्धस्स दायादो, कस्सपो सुसमाहितो—"[6] अर्थात "....महास्थविर महाकाश्यप भगवान बुद्ध का उत्तराधिकारी पुत्र है।"[7] मेरे खयाल से यह सब से बड़ी चूक बौद्ध धर्म के शुरूआती इतिहास में ही हुई कि कोई क्षत्रिय पुत्र बुद्ध का उत्तराधिकारी पुत्र नहीं बन सका। ब्राह्मणों के पास अपना वैदिक धर्म था—उन्हें उसी धर्म में उत्तराधिकारी पुत्र बनने की कोशिश करनी चाहिए थी। यह घटना बौद्ध धर्म के खामियाजे में शामिल की जा सकती है कि बुद्ध के दायाद पुत्र गैर-ब्राह्मणों में नहीं खोजे जा सके।

ब्राह्मणी भद्दा कापिलानी ब्राह्मण भिक्खु महाकाश्यप के बौद्ध भिक्षु होने के बावजूद उसे ब्राह्मण के रूप में ही सम्मान देती है। वह कहती है—"वह तीन विद्याओं को जानने के कारण त्रैविद्य है,....ब्राह्मण है।"[8] डा. विमलकीर्ति को इस गाथा का अनुवाद करते समय सच में परेशानी हुई है। उन के द्वारा अनुवाद किए गए पूरे शब्द इस प्रकार हैं—"उसी प्रकार वह तीन विद्याओं को जानने के कारण त्रैविद्य है, (वास्तविक अर्थों में जन्म से नहीं) ब्राह्मण हैं।"[9] चूँकि, डा. विमल कीर्ति दलित अनुवादक हैं इसलिए ब्रेकेट बना कर अपने हिसाब का कुछ काफिया भरना पड़ गया, यदि दूसरा कोई गैर-दलित अनुवादक बिना ब्रेकेट के सरपट दौड़ जाए तो उस अनुवाद में कोई त्रुटि नहीं निकाली जा सकती। और यह सब तब हुआ जबकि थेरीगाथा में ब्राह्मण चोर के रूप में सजायाफ्ता भी मिलता है।

यह राजगृह की बात है। वहाँ भद्दा कुण्डल केसा एक धनवान सेठ की बेटी थी। डा. विमल कीर्ति लिखते हैं कि 'तरुणावस्था को प्राप्त होने पर एक दिन उस ने देखा कि नगर-कोतवाल पुलिस के सिपाहियों के सहित उसी नगर के राजपुरोहित के पुत्र सत्थुक (या सत्तुक) को चोरी के अपराध में चोरी के माल के सहित वध-स्थान की ओर मारने के लिए ले जा रहे हैं।'[10] भद्दा उस पर मोहित थी या हो गई।

उस के धनवान पिता ने अपनी बेटी का प्रण पूरा करने के लिए 'एक हजार रिश्वत दे कर....किसी प्रकार उपाय के द्वारा उस अपराधी को मुक्त करवा लिया।'[11] भद्दा का उस से विवाह हो गया। डा. विमल कीर्ति आगे लिखते हैं—"भद्रा उस की बहुत सेवा करती थी। कुछ दिन आनन्द से, मौज-मस्ती से बीत जाने पर चोर सत्थुक ने भद्रा के कीमती रत्नालंकारों को लेने की और भाग जाने की इच्छा की।"[12] कहानी के इस प्रकरण का अन्त इस प्रकार है—"आलिंगन करने का बहाना कर भद्रा ने उस को

ऐसा धक्का दिया कि वह पहाड़ से नीचे जा गिरा और खण्ड-खण्ड हो कर मर गया।"[13]

क्या यह कहानी छोटी है? इस कहानी से क्या पता चलता है? जो पता चलता है वह बहुत महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार है :

1. ब्राह्मण का बेटा चोर था।
2. चोरी के अपराध में ब्राह्मण को प्राणदण्ड दिए जाने का कानून था।
3. उस समय रिश्वत चलती थी और रिश्वत दे कर अपराधी को छुड़वाया जा सकता था।
4. वैश्य की बेटी ब्राह्मण के लड़के पर मोहित हो कर उस से शादी कर बैठी। ब्राह्मणी साहित्य में यह अनुलोम विवाह है।
5. चोरी के अपराध से मुक्त कराए जाने के बाद भी चोर अपनी बुरी आदत से बाज नहीं आया –अर्थात ब्राह्मण-पुत्र का हृदय-परिवर्तन या सुधार नहीं हुआ।
6. वैश्य-पत्नी ने अपने बुरे ब्राह्मण-पति को जान से मार दिया। यह बात कम महत्व की नहीं है क्योंकि ब्राह्मणी साहित्य में कोई पत्नी ब्राह्म-विवाह की वजह से अपने पति को कभी जान से नहीं मार सकती।

जाना जाए कि बुद्ध ने इस बात को बड़ा भारी मुद्दा बनाया कि स्त्री को संघ में शामिल किया जाए या न किया जाए। उन्होंने लम्बी साँस भर कर कहा था कि स्त्री को संघ में शामिल करने से उन के धर्म की आधी उम्र रह गई है। लेकिन वे वास्तविक मुद्दे को नहीं उठा पाए और स्त्री से उलझ बैठे। उन का मुख्य मुद्दा यह होना चाहिए था कि ब्राह्मण को संघ में शामिल किया जाए या न किया जाए। ब्राह्मणों के पास अपना अलग वैदिक धर्म था, बुद्ध से यह भारी चूक हुई कि वे इस मुद्दे को समझ नहीं पाए। ब्राह्मण द्वारा उन के संघ में दीक्षा लेने से उन का धर्म पहले ही दिन नष्ट हो गया था।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-205
2. वही, पृ.-220 3. वही, पृ.-238
4. धम्मपदं, डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपुर-441002, सातवाँ संस्करण, 14 अक्तूबर 1996, पृ.-92
5. भारतीय दर्शनम् ओंरु सम्वादम् (मलयालम), लेखकगण, ई. एम. एस. नम्पूतिरिपाद, डा. एन. वी. पी. उणित्तिरि, डा. के. एन. गणेश और पी. परमेश्वरन, प्रकाशक, चित्रा पब्लिकेशन्स, तिरुवन्तन्तपुरम-695001, तीसरा संस्करण, मई 1997, पृ.-71
6. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-95
7. वही, पृ.-97
8. तेविज्जो होति बामणो। वही, पृ.-97
9. वही, पृ.-97
10. वही, पृ.-119
11. वही, पृ.-120
12. वही, पृ.-120
13. वही, पृ.-123

भाग—तीन

अध्याय–9

थेरीगाथा और पुनर्जन्म

क. थेरियां कितनी ऐतिहासिक हैं?
ख. डा. विमल कीर्ति ने पुनर्जन्म को मिथक नहीं कहा
ग. पुनर्जन्म की शब्दावली
घ. पूर्वजन्मों की बयानी
ङ. सब कुछ अज्ञात है
च. एक और थेरी

क. थेरियाँ कितनी ऐतिहासिक हैं?

डा. विमल कीर्ति के इस पुस्तक की भूमिका में लिखे गए ये शब्द किसी भी ऐतिहासिक जिज्ञासा के व्यक्ति को बहुत आकर्षित करते हैं–"थेरीगाथा में भिक्खुणियों का जो व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है, उन के व्यक्त्वि के, चरित्र के जो गुण व्यक्त हुए हैं, वे भारतीय साहित्य में अन्यत्र व्यक्त नारियों के चरित्र से एकदम भिन्न हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में व्यक्त नारियाँ अधिकांश काल्पनिक और पौराणिक हैं। लेकिन थेरीगाथा की थेरियाँ न काल्पनिक हैं और न पौराणिक हैं। थेरीगाथा की सभी थेरियाँ ऐतिहासिक पात्र हैं।"[1] 102वीं गाथा में सोणा थेरी के शब्द पढ़ कर इस बात की पुष्टि भी होती है कि ये थेरियाँ ऐतिहासिक हैं। शब्द इस प्रकार हैं–"दस पुत्ते विजायित्वा...." अर्थात "मैंने. ...दस पुत्रों को पैदा किया है।"[2] फर्क यह है कि यहाँ इस स्त्री ने दस पुत्र पैदा किए हैं, हिन्दू पुराणों की तरह के दस हजार पुत्र नहीं।

यह कसौटी ज्यादातर सही उतरती है लेकिन पुनर्जन्म और दिव्यचक्षु के मामले में पूरी तरह फेल हो जाती है। तब ये ऐतिहासिक थेरियाँ नहीं रह गई हैं बल्कि अपने पूर्व-जन्मों की बयानी करके परले सिरे की पौराणिक थेरियाँ बन गई हैं। मेरी दृष्टि में, पुनर्जन्म और दिव्यचक्षु के सिद्धान्त पौराणिकता और काल्पनिकता से ज्यादा खतरनाक

चीजें हैं। लेकिन सुम्भा नाम की थेरीगाथा में तो लौकिक चमत्कार भी मिलता है जो मनुष्य को पूरी तरह अन्धविश्वास की तरफ ढकेलता है। एक व्यक्ति सुम्भा से कह रहा था कि मुझे तुम्हारी आँखें आकर्षित करती हैं—"तेरी दोनों सुन्दर आँखों के समान प्रिय वस्तु मेरे लिए इस संसार में और कोई नहीं है।"[3] इस पर उस प्रियदर्शिनी ने अत्यन्त निर्विकार चित्त से उसी क्षण अपनी आँख को निकाल कर उस मनुष्य को देते हुए कहा, "यह मेरी आँखें हैं, ले।"[4] इस कहानी की अन्तिम गाथा इस प्रकार है—"इस प्रकार उस से छुटकारा पा कर भिक्खुणी बुद्ध के पास गई, जो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। पुण्यलक्षण महापुरुष (बुद्ध) के दर्शन करते ही उस की आँख पहले की तरह ही (स्वस्थ) हो गई।"[5]

ख. डा. विमल कीर्ति ने पुनर्जन्म को मिथक नहीं कहा

मुझे कुछ भी परेशानी नहीं थी यदि डा. विमलकीर्ति थेरीगाथा में आई हुई पूर्वजन्म और पुनर्जन्म वाली गाथाओं के बारे में यह कह देते कि ये मिथक हैं और इन में उन का विश्वास नहीं है। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को छोड़ कर कई दूसरी बातों के बारे में उन्होंने ऐसा कहा भी है। मसलन, 121वीं गाथा में एक पंक्ति इस प्रकार है :

इन्दं व देवा तिदसा, संगामे अपराजितं।[6]

—"संग्राम में विजय प्राप्त इन्द्र...की जिस प्रकार तीसों देवता पूजा करते हैं...।"[7]

अनुवाद करने के तुरन्त बाद डा. विमल कीर्ति इस के फुट नोट में लिखते हैं—"इन्द्र ब्राह्मणी साहित्य का देवता है, एक मिथक है। पालि साहित्य में कहीं-कहीं ब्राह्मणी मिथकों का भी इस्तेमाल किया गया है।"[8] 367वीं गाथा में 'देवसङ्घेन' शब्द का प्रयोग हुआ है। तत्काल डा. विमल कीर्ति को स्पष्टीकरण देते हुए इस पर टिप्पणी लिखनी पड़ी—"यहाँ इन्द्र की मिथक का इस्तेमाल किया गया। यहाँ मनुष्य की श्रेष्ठता वर्णन की गई है, इन्द्र की नहीं। ब्राह्मण देवता कई बार बुद्‌ध और भिक्खु-भिक्खुणियों के सामने नम्र हुए हैं।"[9] 387वीं गाथा में 'सदेवके' शब्द के आते ही सतर्क हो कर डा. विमल कीर्ति तत्काल टिप्पणी में लिखते हैं—"देवलोक एक मिथक है, वास्तविकता नहीं। पालि-साहित्य में इस प्रकार के मिथकों का उपयोग किया गया है।"[10] 456वीं गाथा में 'देवेसु' शब्द प्रयोग हुआ तो डा. विमल कीर्ति ने बड़ी जागरूकता से लिखा है—"वास्तव में देवलोक नाम का कोई लोक (अस्तित्व में) नहीं है। यह एक मिथक है, जिस का प्रयोग साहित्य में हुआ है।"[11]

जब बात 197वीं गाथा में प्रयुक्त शब्द 'तावतिंसा' की आई तो डा. विमल कीर्ति ने हिन्दी में अनुवाद करते समय नीचे फुटनोट में लिखा है—"तेतीस देवताओं का लोक। एक ब्राह्मणी मिथक, कल्पना। देवयोनियाँ वास्तव में कुछ नहीं है। यह योनियाँ काम-भोगों के प्रतीक हैं।"[12] इसी प्रकार, डा. विमलकीर्ति बहुत सतर्क हैं जब 181वीं गाथा में आए पद 'सक्कं व देवा तिदसा'[13] के बारे में टिप्पणी लिखते हैं—"देवेन्द्र शक्र और त्रिदिश

देवता ब्राह्मणी साहित्य के मिथक हैं, काल्पनिक हैं, मनोविकार हैं। इन्हें सत्य नहीं मानना चाहिए। इन मिथकों का पालि साहित्य में भी उपयोग किया गया है।"[14]

थेरीगाथा की 477वीं गाथा इस प्रकार है :

देवेसु मनुस्सेसु च, तिरच्छानयोनिया असुरकाये।
पेतेसु च निरयेसु च, अप...मेता दिस्सरे घाता।।

—"देवलोक में, मनुष्य-लोक में, पशु-योनि में, असुर-योनि में, प्रेत-योनि में और नरक-योनि...में, असंख्य वार मृत्यु के मुख में पड़-पड़ कर प्राणी असह्य दुक्ख सहते हैं।"[15]

यहाँ भी डा. विमल कीर्ति को फुटनोट में लिखना पड़ा है—"देवलोक और नरक-योनि आदि मिथक हैं।"[16] यहाँ वे देवलोक के साथ-साथ 'नरक' शब्द के प्रयोग के प्रति भी पूरे चौकस और चौकन्ने खड़े दीखते हैं। 503वीं गाथा में एक पद इस प्रकार है :

सराहि निरये बहुविघाते।। 503।।

—"नरक....की अनेक यातनाओं को भी स्मरण करो।"[17]

यहाँ भी डा. विमल कीर्ति को लिखने की जरूरत पड़ी है—"नरक एक मिथक है।"[18] वे 453वीं गाथा में आए 'निरये' (नरक) शब्द के वारे में लिखते हैं—"नरक नाम का कोई लोक (संसार) नहीं है। यह एक मिथक है, जिस का साहित्य में प्रयोग हुआ है। नरक का मतलब है भयंकर, बुरी दुक्खद अवस्था।"[19]

सवाल यह है कि जो डा. विमल कीर्ति 'इन्द्र' और 'नरक' शब्दों के वारे में इतने जागरूक हैं कि हाथ पड़ते ही तत्काल उन्हें मिथक बताते हैं, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के शब्दों का अनेक बार और धड़ल्ले से प्रयोग होने पर वे एक बार भी इन में शंका क्यों नहीं कर सके। सवाल इसलिए उचित है क्योंकि वे डा. अम्बेडकर के बौद्ध अनुयायी हैं। अपने अनुवाद में ये शब्द उन्होंने अनछेड़ कैसे रहने दिए? आगे यही बताया जा रहा है कि उन्होंने पूर्वजन्म और पुनर्जन्म वाली गाथाओं में पूरा-पूरा विश्वास किया है।

डा. विमल कीर्ति ने थेरीगाथा की भूमिका में अपने ये शब्द लिखे हैं—"इस ग्रन्थ में थेरियों ने, जो अर्हत भी हुई थीं, अपने जीवन के सत्य को, अपने जीवनानुभव को, अपने भिक्खुणी होने के पूर्वजीवन को और भिक्खुणी होने के बाद के जीवन को, जो उन्होंने अनुभव किया, जाना, पहचाना उस को बहुत ही सुन्दर ढंग से, गाथाओं के माध्यम से और भावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। इस में थेरियों की विशेषता यह दिखाई देती है कि वे अपने पूर्वजीवन को बताने में कहीं संकोच नहीं करती हैं।"[20]

डा. विमल कीर्ति के इन शब्दों से मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है। मैं इन शब्दों का सीधे स्वभाव यही अर्थ ले रहा था कि थेरियों ने अपने जीवन के अनुभवों के वारे में सच उगला होगा। लेकिन आगे पढ़ने से पता चलता है कि यह सच नहीं है। 338वीं गाथा में बुद्ध ने सुन्दरी थेरी से कहा है—"कल्याणी! आ, तेरा स्वागत है। तू अदूर.... (निकट) से ही आई है।"[21] यहाँ प्रयोग हुए इस 'अदूर' शब्द पर डा. विमलकीर्ति ने

अपने अनुवाद में क्या टिप्पणी की है? जिस की जरूरत नहीं थी वे लिखते हैं—"वाराणसी से सावत्थी का लम्बा रास्ता था। परन्तु यह बताया गया है कि जो भगवान के उपदेश का अनुसरण करते हैं, वे दूर रहते हुए भी उन के समीप हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि 'तू अदूर से ही आई है।' अथवा यह भी भाव हो सकता है कि तू अब अपने अनन्तकाल तक के लम्बे भव के अन्त के समीप आ पहुँची है।"[22] अदूर को अदूर ही रहने दिया जाता तो सारी गनीमत थी लेकिन यहाँ डा. विमलकीर्ति ने इस शब्द का अप्रस्तुत अर्थ भी निकाला है कि 'तू अब अपने अनन्तकाल तक के लम्बे भव के अन्त के समीप आ पहुँची है।' इस का मतलब है कि वे लख चौरासी योनियों की शब्दावली में पूरा अन्धविश्वास रखते हैं। यूँ, बौद्ध धर्म अपना कर दलित लोग मुक्त नहीं हुए हैं बल्कि पुनर्जन्म के अन्धविश्वास के बन्धन में बद्ध हो गए हैं। बौद्ध धर्म अपना कर उन्हें यह फायदे के बजाय नुकसान हुआ है। वे हिन्दू धर्म में ब्राह्मणों की वर्ण-व्यवस्था से छूटने चले थे कि बौद्ध धर्म में जा कर पुनर्जन्म के सिद्धान्त में अन्धविश्वास रखने से वर्ण-व्यवस्था को और भी ज्यादा मजबूती दे गए हैं। यही हुआ है, रोजे बख्शवाने चले थे कि नमाज गले पड़ गई। यहाँ सारी बात पलट गई है।

थेरीगाथा की 26वीं गाथा इस प्रकार है :

मा पुन जातिसंसारं, सन्धावेय्यं पुनप्पुनं।
तिस्सो विज्जा सच्छिकता, कतं बुद्धस्स सासनं" ति।।

—"मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्कर में मुझे अब और घूमना नहीं है। मैंने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया है। मैंने भगवान सम्यकबुद्ध के शासन को पूरा कर लिया है।"[23]

यहाँ तीन विद्याओं का मतलब बताते हुए डा. विमल कीर्ति ने फुटनोट में लिखा है—"पूर्व जीवन की स्मृति का ज्ञान, प्राणियों की विभिन्न अवस्थाओं में सुगति-दुर्गतियों का ज्ञान और अपने चित्त मलों (आस्रवों) के विनाश होने का ज्ञान।"[24] वे ब्राह्मण-कुल में जन्मी एक सुम्भा नाम की थेरी के बारे में लिखते हैं—"उत्कट साधना करते हुए उसे पूर्व जीवनों का ज्ञान उत्पन्न हुआ।"[25] उन्होंने पूर्वजन्म के सिद्धान्त में बिना तनिक सन्देह किए लिखा है—"स्थविरी बोधि ने इसिदासी से उस के पूर्व अनुभवों के बारे में पूछा। इसिदासी उस के प्रति अपने इस जीवन और पूर्व जीवन के अनुभवों का वर्णन करती हुई इन गाथाओं को कहती है।"[26]

यही मेरी परेशानी और बेचैनी है कि थेरीगाथा के इस अनुवाद में डा. विमल कीर्ति के रूप में हमारा दलित दार्शनिक कहाँ गुम हो गया है!

बौद्ध धर्म में पूर्वजन्म का ज्ञान साधारण ज्ञान नहीं है। इसे हर कोई व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इसे जानने से पहले 'दिव्यचक्षु' होने चाहिए। थेरीगाथा में इस शब्द की भरमार मिलती है। 120वीं, 173वीं और 179वीं गाथाओं में एक-एक पंक्ति इस प्रकार आती है :

रत्तिया मज्झिमे यामे, दिब्बचक्खुं विसोधयुं।[27]

—"....रात्रि के मध्यम समय (याम) में हमने दिव्य-चक्षुओं को विशोधित किया।"[28]

इन के अतिरिक्त, 70वीं, 100वीं, 104वीं, 277वीं और 331वीं गाथाओं में निम्न शब्द आते हैं – दिब्बचक्खुं विसोधितं —अर्थात[29] "इस प्रकार मेरी दिव्यदृष्टि विशुद्ध हुई।"[30]

71वीं गाथा के अनुसार, वड्ढेसी ने 'छह अभिज्ञाओं (गूढ़ ज्ञानों)...का.... साक्षात्कार कर लिया है।'[31] डा. विमल कीर्ति ने ये छह अभिज्ञाएँ इस प्रकार गिनाई हैं—"ऋद्धिविध, दिव्य श्रोत, परचित्त-ज्ञान, पूर्वजन्म-ज्ञान, दिव्य चक्षु और आस्रव-क्षयज्ञान।"[32] आखिर, दलित चिन्तक पूर्वजन्म के ज्ञान के चक्कर में फँस ही गए। इस अन्धविश्वास में कोई कमी न रह जाए इसलिए दिव्य चक्षु को साथ में जोड़ लिया है।

459वीं गाथा में बुद्ध को दशवल नाम से सम्वोधित किया गया है—'दसवलस्स पावचने'—अर्थात 'दशवल भगवान् तथागत की अनुगामिनी वन कर....।'[33] इस 'दशवल' उपाधि की खोल-वांध में डा. विमलकीर्ति 8वें वल के वारे में लिखते हैं कि वे 'अपने पूर्वजन्मों को जानते हैं'[34] तथा 9वें वल के वारे में लिखते हैं कि वे 'दिव्य-दृष्टि से नाना प्राणियों की कर्मानुसार सुगति-दुर्गतियों को जानते हैं।'[35]

ग. पुनर्जन्म की शब्दावली

थेरीगाथा में पूर्वजन्म के सिद्धान्त को विना किसी सन्देह के स्वीकारा गया है। ज्ञान जो 'तू' के सम्वोधन से दिया जा रहा है उस की वानगियाँ इस प्रकार हैं :

1. खीणकुलीने कपणे, अनुभूतं ते दुक्खं अपरिमाणं।
   अस्सू च ते पवत्तं, वहूनि च जातिसहस्सानि।। 220।।

   —"दुक्खों से भरपूर नारी! तूने असंख्य जन्मों में इस प्रकार का अपरिमित....दुक्ख अनुभव किया है, तूने सहस्रों जन्मों में अपार आँसुओं को बहाया है।"[36]

2. वसिता सुसानमज्झे, अथोपि खादितानि पुत्तमंसानि।। 221।।

   —"शमशान में तूने अनेक बार पुत्रों के मौसों को...खाए जाते हुए देखा है।"[37]

3. बहूनि पुत्तसतानि, ञातिसङ्घसतानि च।
   खादितानि अतीतंसे, मम तुय्हञ्च वामण।। 315।।[38]

   —"हे ब्राह्मण! तुम्हारे और मेरे दोनों के ही अतीत काल में सैंकड़ों पुत्र हुए और मर गए, सैंकड़ों सगे-सम्वन्धी हुए और मर गए।"[39]

4. सर कटसिं वड्ढेन्ते, पुनप्पुनं तासु तासु जातीसु।। 504।।

—"बार-बार, विभिन्न जन्मों में मर-मर कर, श्मशानों को पाट दिया है, इस बात का स्मरण करो।"[40]

पूर्वजन्मों का यह ज्ञान जो 'मैं' के रूप में स्वीकार किया गया है उस के उदाहरण इस प्रकार हैं :

1. पुब्बेनिवासं जानामि.... ।। 227, 70।।

—"मैंने अपने पूर्व जन्मों का स्मरण किया... ।"[41]

2. पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे।। 104, 331, 104।।[42]

—"आज मैं अपने पूर्व जीवन को जानती हूँ। जहाँ-जहाँ मैंने जन्म ग्रहण किए, उन का स्मरण करती हूँ।"[43]

3. रत्तिया पुरिमे यामि, पुब्बजातिमनुस्सरुं।। 120।।[44]

—"रात्रि के प्रथम समय (याम) में हमने अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण किया..... ।"[45]

4. रत्तिया पुरिमे यामे, पुब्बजातिमनुस्सरिं[46] ।। 172, 179।।

—"रात के प्रथम समय (याम) में मुझे मेरे पूर्वजन्मों का स्मरण हुआ।"[47]

5. भिक्खुनी उपसम्पज्ज, पुब्बजातिमनुस्सरिं।। 100।।[48]

—"फिर भिक्खुणी-पद की उपसम्पदा लेकर मुझे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हुआ.... ।"[49]

'तू' और 'मैं' के वाद थेरीगाथा में एक जगह यह प्रमाण दिया गया है कि 'वह' अपने पूर्वजन्मों को जानता है। भद्दा कापिलानी भिक्खु महाकाश्यप के बारे में गाथा कहती है कि 'पुब्बेनिवासं यो वेदि'[50] (63) —अर्थात् 'अपने पूर्व जन्मों को वह जानता है।'[51]

पूर्वजन्मों की बात हो गई, अब पुनजर्न्मों के होने की बारी आती है। थेरीगाथा में इसे अनेक बार दोहराया गया है कि पुनर्जन्म के रूप में पुनर्भव लाजिमी होता है। प्रमाण इस प्रकार हैं :

1. दीघो तेसं संसारो, पुनप्पुनं हञ्ञमानानं।। 476।।

—"....जो अज्ञानी हैं, उन्हें तो बार-बार मृत्यु की चोटें सह कर दीर्घ काल तक संसार में आना ही पड़ता है।"[52]

2. अनेकजातिससारं, सन्धावन्ति अविद्दसू[53] ।। 164।।

—"अज्ञानी लोग अनेक बार आवागमन के चक्र में घूमते ही रहते हैं।"[54]

3. खेपेत्वा जातिसंसारं, परिञ्ञाय पुनब्भवं।।[55] 168।।

—"तू अपने जीवन की जन्म और मरण की शृंखला को दूर फेंक। तू जानती ही है कि पुनर्भव क्या है?"[56]

4. धातुयो दुक्खतो दिस्वा, मा जातिं पुनरागमि।। 14।।

—"हे सुमना थेरी! क्या तूने जीवन (भव) के सभी तत्वों (धातुओं)... को दुक्खमय देखा नहीं? तो फिर पुनर्जन्म की आसक्ति मत करना।"[57]

5. नयिदं पुनरेहिसि ।। 166।।[58]

—"फिर तुझे इस संसार में आना नहीं होगा।"[59]

6. धि तवत्थु जरे जम्मे, नत्थि दानि पुनब्भवो" ति ।। 106।।[60]

—"किसी भी स्थितिशील....वस्तु के लिए अव मेरे हृदय में इच्छा नहीं रही। मैं पुनर्जन्म-हीन हूँ। अव मेरा दूसरा जन्म नहीं होने वाला है।"[61]

थेरीगाथा एक वहुत छोटी किताव है लेकिन इस में पुनर्जन्म के झूठ की पूरी स्कीम गूंथ दी गई है। यह स्कीम पूरी नहीं होती जव तक इस शब्दावली का एक अन्य शब्द प्रयोग न किया जाता। यह शब्द 'अन्तिम देह' का है। प्रव्रज्या और निर्वाण का मतलव ही यह है कि यह देह 'अन्तिम देह' मान ली जाए। थेरीगाथा में इस का पूरा ध्यान रखा गया है। कहा जाता है कि बुद्ध की माँ महामाया का बुद्ध के जन्म के सात दिन बाद देहान्त हो गया था। इस अवस्था में महापजापती गोतमी ने ही बुद्ध का लालन-पालन किया था। वे महामाया की छोटी वहन लगती थीं और देवदह नगर के राजा अंजन शाक्य की पुत्री थीं। महामाया और महापजापती गोतमी का पाणि-ग्रहण संस्कार कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के साथ हुआ था।

बुद्ध ने अपनी इन दूसरी माँ महापजापती गोतमी को भी अपने धर्म में प्रव्रजित किया था। बुद्ध से प्रव्रजित होने के बाद वे अपनी कथा 159वीं और 160वीं गाथाओं में इन शब्दों में कहती हैं :

1. माता पुत्तो पिता भाता, अय्यका च पुरे अहुं।
यथाभुच्चमजानन्ती, संसरिहं अनिब्बिसं।।[62]

—"मैं पूर्वजन्मों में अनेक वार माता, पुत्र, पिता, भाई, मातामही वनती रही, वस्तुओं को उन के यथार्थ रूप में न जानती हुई मैं संसार में घूमती रही, और मुझे वह वस्तु वहाँ कभी नहीं मिली, जिस की मुझे चाह थी।"[63]

2. दिट्ठो हि मे सो भगवा, अन्तिमोयं समुस्सयो।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो।।[64]

—"(अव इस जन्म में) मैंने उन भगवान बुद्ध के दर्शन किए (मुझे अनुभव हुआ) यह मेरा अन्तिम शरीर है। मेरा आवागमन क्षीण हो गया, अब मुझे पुनः जन्म नहीं लेना है।"[65]

बाद की 160वीं गाथा 22वीं गाथा की पुनरावृत्ति भर है।[66] 47वीं गाथा इस प्रकार है :

सब्बे कामा समुच्छिन्ना, ये दिब्बा ये च मानुसा।
विकखीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो" ति।।

—"मेरी सभी मानवीय और अलौकिक भोगेच्छाएँ नष्ट हो गई हैं। मेरा आवागमन क्षीण हो गया है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होना है।"[67]

बताया जाए कि 7वीं, 10वीं, 56वीं और 65वीं गाथाओं में एक पंक्ति इस प्रकार पुनरावृत्त हुई है :

धारेहि अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहनं" ति।

—"...तू मार और उस की सेना को ....पराजित कर इस अन्तिम देह को धारण करती है।"[68]

यहाँ अन्तिम देह की जो बात चल रही है वह वीरा और उपसमा नाम की थेरियों की है। फिर, यहाँ पुनर्जन्म आत्माओं का है, शरीरों का नहीं। इस सिद्धान्त में शरीर बर्तन भर है जो हर बार नया मिलता है। यदि अन्यों के लिए, जिन्होंने निर्वाण प्राप्त नहीं किया है, यह अन्तिम देह नहीं है तो उन्हें अगली देह मिलेगी। पहले ही कहा जा चुका है कि 'धारोहि अन्तिमं देहं' के वाक्य द्वारा यहाँ बुद्ध उपसमा और वीरा नाम की भिक्षुणियों को सम्बोधित कर रहे हैं। बौद्ध धर्म में आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाता, इसी रूप में जाना जाए कि ये गाथाएँ इन दो नारियों को सम्बोधित की जा रही हैं।

अब जाना जाए कि यह 'अन्तिम देह का धारण करना' क्या है। देह को कौन धारण कर रहा है? यदि यह देह अन्तिम न हुई तो इस का मतलब है कि अगली देह मिलेगी। अगली देह एक बर्तन भर मानी गई है। उन में उपसमा और वीरा को जाना है। इसलिए, पुनर्जन्म उपसमा और वीरा की देहों का हुआ या खुद उपसमा और वीरा का हुआ? उत्तर यही है कि यहाँ देहों के पुनर्जन्मों की बात नहीं चल रही है, जिन का पुनर्जन्म होना है वे उपसमा और वीरा हैं। डा. विमल कीर्ति थेरीगाथा की भूमिका में बड़े जोश के साथ लिखते हैं—"बुद्ध को भाग्य और भगवान (ईश्वर) से कोई लेना-देना नहीं है।"[69] लेकिन दुख इस बात का है कि बुद्ध को संसार के सब से बड़े अन्धविश्वास पुनर्जन्म से सारा लेना-देना पड़ गया है।

घ. पूर्वजन्मों की बयानी

अब तक पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के ओड़-पेड़ों की ही बात हुई है। यही बताया गया है कि पूर्वजन्म और पुनर्जन्म होता है। लेकिन थेरीगाथा में इस विषय को इन्हीं सीमाओं पर नहीं छोड़ा गया। दो थेरीगाथाएँ ऐसी हैं जिन में नाम धर के बताया गया है कि वे पिछले जन्मों में क्या-क्या रही थीं। एक सुमेधा की गाथाएँ हैं तो दूसरी इसिदासी की गाथाएँ हैं। यहाँ पहले सुमेधा की गाथाएँ लें जो इस प्रकार हैं :

1. अच्छरियमब्भुतं तं, निब्बानं आसि राजकञ्ञाय।
पुब्बेनिवासचरितं, यथा ब्याकरि पच्छिमे काले।। 519।।

—"राजकन्या का यह निर्वाण प्राप्त करना बहुत ही आश्चर्यजनक है, अद्‌भुत है। अपने इस अन्तिम जीवन में उस ने अपने पूर्व-जन्मों का विवरण दिया है, जो इस प्रकार है।"[70]

2. भगवति कोणागमने, सङ्घारामम्हि नवनिवेसम्हि।
सखियो तिस्सो जनियो, विहारदानं अदासिम्ह।। 520।।

—"जिस समय भगवान् बुद्ध कोणागमन संघाराम नामक नवीन विहार में निवास कर रहे थे, उस समय मैं और मेरी दो सखियाँ (क्षेमा और धनञ्जानी), हम तीनों जनियों ने, एक विहार निर्माण करवा कर उन्हें दान किया था।"[71]

3. दसक्खत्तुं सतक्खत्तुं, दससतक्खत्तुं सतानि च सतक्खत्तुं।
देवेसु उप्पज्जिम्ह, को पन वादो मनुस्सेसु।। 521।।

—"उस के पुण्य के प्रभाव से हमने दस, सौ, हजार, लाख असंख्य बार देवलोक में जन्म प्राप्त किया, मनुष्य-लोक का तो कहना ही क्या?"[72]

4. देवेसु महिद्‌धिका अहुम्ह, मानुसकम्हि को पन वादो।
सत्तरतनस्स महेसी, इत्थिरतनं अहं आसिं।। 522।।

—"देवलोक में हमारा बहुत प्रभाव प्रतिष्ठित हो गया, मनुष्य लोक की तो बात ही क्या? फिर स्त्री-रत्न हो कर मैंने जन्म लिया और सात रत्नों से सम्पन्न...चक्रवर्ती सम्राट की मैं प्रधान पत्नी (महेसी) हुई।"[73]

ये पूर्वजन्म में विश्वास करने के सारे के सारे धार्मिक झूठ-तूफान ही हैं लेकिन एक बात का जरूर पता चलता है कि राजा के एक से अधिक पत्नियाँ हुआ करती थीं।

इसिदासी की गाथा के उदाहरण लम्बे हो जाएंगे लेकिन वे इसलिए देने जरूरी हैं क्योंकि तब पूर्वजन्म में विश्वास रखने वाला तर्क भी पूरा हो जाता है। फिर, बचने का या शंका करने का रास्ता नहीं रह जाता। इसिदासी कहती है :

1. जानामि अत्तनो सत्त, जातियो यस्सयं फलविपाको।
तं तव अचिक्खिस्सं, तं एकमना निसामेहि।। 436।।

—"एक एक करके मैंने अपने सात पूर्व-जन्मों की घटनाओं और कर्म-विपाकों को स्मरण किया। मैंनें क्या-क्या कर्म किए और उन के क्या-क्या फल पाए, इन सभी का मैंने स्मरण किया। यह कहानी मैं तुम से आज कहूँगी, मनोयोगपूर्वक सुनो।"[74]

2. नागरम्हि एरकच्छे, सुवण्णकारो अहं पहूतधनो।
योब्बनमदेन मत्तो सो, परदारं असेविहं।।437।।

—"एककक्ष....नामक नगर में मैं एक धनवान सुनार थी। यौवन के मद में मस्त हो कर मैं वहाँ परस्त्री-रत हो गई।"[75]

3. सोहं तूतो चवित्वा, निरयम्हि अपच्चिसं चिरं।
पक्को ततो च उट्ठहित्वा, मक्कटिया कुच्छिमोक्कमिं।। 438।।

—"मरने के बाद मैं बहुत काल तक नरक में पड़ी रही। वहाँ वहुत दुक्ख पा-पा कर मैं एक वानरी के गर्भ में उत्पन्न हुई।"[76]

4. सत्ताहजातकं मं, महाकपि यूथपो निल्लच्छेसि।
तस्सेतं कम्मफलं, यथापि गन्त्वान परदारं।। 439।।

—"जन्म के सात दिन बाद ही वानर-समूहों के स्वामी ने मेरे अंडकोषों को चीर दिया। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया।"[77]

5. सोहं ततो चवित्वा, कालं करित्वा सिन्धवारञ्ञे।
काणाया च खञ्जाय च, एळकिया कुच्छिमोक्कमिं।। 440।।

—"मरने के बाद सिन्धु नदी के निकट अरण्य (सैन्धवारण्य) में एक कानी और लंगड़ी वकरी के पेट में मैंने जन्म पाया।"[78]

6. द्वादस वस्सानि अहं, निल्लच्छितो दारके परिवहित्वा।
किमिनावट्टो अकल्लो, यथापि गन्त्वान परदारं।। 441।।

—"वहाँ भी मेरे अंडकोष चीरे गए, कीड़ों ने मुझे काटा। इस प्रकार बारह वर्ष तक मैं कड़ी यातना पाती रही। बालक-बालिकाओं को पीठ पर ले कर ढोना, यही मेरा वहाँ दैनिक काम था। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया।"[79]

7. सोहं ततो चवित्वा, गोवाणिजकस्स गाविया जातो।
वच्छो लाखातम्बो, निल्लच्छितो द्वादसे मासे।। 442।।

—"वहाँ से मर कर मैंने एक पशुओं के व्यापारी की गाय के पेट में लाख (लाल) जैसे वर्ण वाले बछड़े के रूप में जन्म पाया। वहाँ भी बारह मास बाद मैं बधिया कर दी गई।"[80]

8. वोंढून नङ्गलमहं, सकटञ्च धारयामि।
अन्धोवट्टो अकल्लो, तथापि गन्त्वान परदारं।। 443।।

—"वहाँ भी हल को जोतना और गाड़ी को खींचना। यही मेरा वहाँ काम था, बाद में मैं अन्धी और अकर्मण्य हो गई। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया।"[81]

9. सोहं ततो चवित्वा, वीथिया दासिया घरे जातो।
नेव महिला न पुरिसो, यथापि गन्त्वान परदारं।। 444।।

—"वहाँ से भी मरने के वाद मैं गलियों में फिरने वाली (गृहहीन) एक दासी के घर में उत्पन्न हुई। मैं स्त्री भी नहीं थी, पुरुष भी नहीं थी। मैंने परस्त्री-गमन का यही परिणाम पाया।"[82]

10. तिंसतिवस्सम्हि मतो, साकटिककुलम्हि दारिका जाता।
कपणम्हि अप्पभोगे, धनिकपुरिसपातवहुलम्हि।। 445।।

—"तीस वर्ष की आयु में मेरी मृत्यु हो गई। मृत्यु के बाद मैं एक अतिशय दरिद्र, दुक्ख-ग्रस्त, धनिक पुरुषों के विपुल कर्ज के वोझ से पीड़ित, गाड़ीवान के घर में उस की कन्या हो कर पैदा हुई।"[83]

11. तं मं ततो सत्थवाहो, उस्सन्नाय विपुलाय वड्ढिया।
ओकड्ढति विलपन्तिं, अच्छिन्दित्वा कुलधरस्मा।। 446।।

—"एक धनवान व्यापारी (काफिलों के सरदार) का मेरे पिता पर विपुल कर्ज था, जो व्याज के कारण और भी निरन्तर वढ़ता जाता था। उस ने उसे चुकाने के रूप में मुझ पर (वलात्) अधिकार कर लिया। मैं विलाप कर रही थी और अपने पिता के घर से खींच कर वाहर लाई गई।"[84]

12. अथ सोळसमे वस्से, दिस्वा मं पत्तयोब्बनं कञ्ञं।
ओरुन्धतस्स पुत्तो, गिरिदासो नाम नामेन।। 447।।

—"सोलह वर्ष की अवस्था में मैं यौवनावस्था को प्राप्त हो गई, तब उस व्यापारी के पुत्र ने, जिस का नाम गिरिदास था, मुझे स्त्री वना कर रख लिया।"[85]

13. तस्सपि अञ्ञा भरिया, सीलवती गुणवती यसवती च।
अनुरत्ता भत्तारं, तस्साहं विद्देसनमकासिं।। 448।।

—"पहले से ही गिरिदास की एक पत्नी थी। वह गुणवती, शीलवती, यशस्विनी और पतिव्रता थी। मैं उस स्त्री के प्रति ईर्ष्या और द्वेष करने लगी।"[86]

अब इसिदासी की इन गाथाओं के बाद यह सिद्ध करने के लिए कि बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन में पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखा जाता है, यहाँ अलग से जातक कथाओं के सन्दर्भ और उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं है। इसिदासी की इन गाथाओं में प्रमाण पूरे रूप में उपलब्ध हैं। लेकिन मेरे लिए पूर्व-जन्मों की ये सारी कहानियाँ मनगढ़न्त और झूठी हैं। झूठी इसलिए हैं क्योंकि पूर्व-जन्म नहीं होता। तो भी

इन झूठी कहानियों से तत्कालीन कुछ सामाजिक सच्चाइयों का पता चलता है। वे इस प्रकार हैं :

1. परस्त्रीगमन होता था और उसे बुराई माना गया है।
2. तब दास प्रथा कायम थी।
3. हिजड़ों की पैदायश थी।
4. गाड़ीवानों के कुल थे।
5. कर्ज में फँसे लोगों के घरों से उन की बेटियाँ बलात उठा ली जाती थीं। वे दासियाँ कही जाती थीं।
6. समाज में बहुपत्नी प्रथा थी। यह बुरा माना जाता था कि सौत आपस में एक-दूसरी से ईर्ष्या और द्वेष रखें। दासी को घर में रख लिया जाता था।

इसिदासी की गाथाओं से जो जाना जाए वह यह है कि प्रव्रज्या किस के बराबर है? यह मौत के बराबर है। यह कब ग्रहण की जाती है? यह तब ग्रहण की जाती है जब मनुष्य को मृत्यु या प्रव्रज्या में से किसी एक का वरण करना होता है। जिस जगह कुछ लोग आत्महत्या का रास्ता अपनाते हैं, उस जगह बुद्ध उन्हें भिक्षु या भिक्षुणी बनने का रास्ता देते हैं। इसिदासी के साथ यही हुआ था। उस का तीसरी बार विवाह हुआ था लेकिन तीसरे पति ने भी उसे छोड़ दिया था। उस ने चौथे पति के लिए कोशिश नहीं की। तीसरे पति के द्वारा छोड़े जाने पर वह कहती है :

विस्सज्जितो गतो सो, अहम्पि एकाकिनी विचिन्तेमि।
'आपुच्छितून गच्छं, मरितुये वा पब्बजिस्सं वा'।। 428।।

—"उस (मेरे पति) ने विदाई ली। मैं अकेली सोचने लगी कि, "अब मैं अपने माता-पिता के पास जा कर प्रव्रज्या ग्रहण करने की या मरने की अनुमति मागूँगी।"[87]

इसिदासी वैश्य कुल की बेटी थी। उस का तीन बार तक पुनर्विवाह हो सका। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की बेटियों का विवाह केवल एक बार ही होता है। उन्हें पहले विवाह के असफल होने पर ही ऐसा सोचना पड़ जाएगा जो इसिदासी ने तीसरे विवाह के असफल हो जाने पर सोचा है। अलग-अलग समाजों के कानून अलग-अलग स्तरों पर अपनी स्त्रियों की हिम्मत हरवा देते हैं।

सुमेधा मंतावती नगरी के क्रौंच नामक राजा की पुत्री थी। उस का विवाह वारणवती नगर के अनिकरत्त नामक राजा के साथ तय हुआ था। वह विवाह से पहले ही अपने माता-पिता से कह रही है कि 'मुझे गृह-वास से कुछ नहीं करना है। मैं तो प्रव्रजित होऊंगी।'[88] विवाह करने के बजाय उस ने अपने हाथ से अपने केश काट लिए और वह प्रव्रजित हो गई।[89] जरूर कोई बड़ी बात रही होगी। सुमेधा ने भी यही कहा है कि मृत्यु या प्रव्रज्या में से एक का चुनाव किया जाना है। वह कहती है :

पव्वज्जा वा होहिति, मरणं वा मे न चेव वारेव्यं।। 467।।

—"मैं या तो प्रव्रज्या लूँगी या फिर मेरा मरण ही होगा। इस के अतिरिक्त मुझे और कुछ अंगीकार करना नहीं है।"[90]

इसलिए, हर हाल में हिम्मत बंधाने वाले कानून बनाए जाएँ तो स्त्रियों को मौत या प्रव्रज्या के विकल्पों से बचाया जा सकता है। भारत में दलित समाज का कानून अपनी स्त्रियों को मौत और प्रव्रज्या से हमेशा दूर रखता है।

ङ. सब कुछ अज्ञात है

सुमेधा और इसिदासी ने अपने पूर्वजन्मों की कितनी भी बयानी की हो लेकिन अन्त में बौद्ध धर्म में सब कुछ अज्ञात के हवाले कर दिया जाता है। 497वीं और 498वीं गाथाएँ इस प्रकार हैं :

1. दीधो वालानं संसारो, पुनप्पुनञ्च रोदतं।
   अनमतग्गे पितु मरणे, भातु वधे अत्तनो॰च वधे।। 497।।

   —"जो अज्ञानी हैं, उन का संसार में बार-बार जन्म-मरण और रोना-धोना दीर्घकाल तक रहने वाला है। कभी पिता का मरण, कभी भाई का मरण, कभी अपना मरण, यह सब अनादि है। यह कब से चल रहा है, इस का कुछ पता नहीं। यह बिल्कुल अज्ञात है।"[91]

2. अस्सु थञ्ञं रुधिरं, संसारं अनमतग्गतो सरथ।
   सत्तानं संसरतं, सराहि अट्ठीनञ्च सन्निचयं।। 498।।

   —"अश्रु, दुग्ध और रुधिर से सिंचित यह संसार अनादि है। इस के प्रारम्भ का पता नहीं चलता। इस का आरम्भ अज्ञात है। इस तथ्य का तुम स्मरण करो।...आवागमन के चक्कर लगाते हुए प्राणियों की अस्थियों से जो विशाल ढेर बनेंगे, उस के बारे में कुछ सोचिए।"[92]

भला, जब पूर्वजन्म के सिद्धान्त में विश्वास है और दिव्यचक्षुओं से यह भी ज्ञात हो गया है कि पूर्वजन्म कौन-कौन से थे तो आरम्भ को अज्ञात कहने की कोई तुक नहीं रहती। क्या इस मामले में भी कोई डिग्रियों का मामला है कि दिव्यचक्षुओं के द्वारा सौ पूर्वजन्मों का पता चलता है लेकिन उस से आगे का नहीं? जब बौद्धों के दिव्य-चक्षु खुल ही गए तो यह सीमा कैसे बची रही है? संसार के आदि को अज्ञात कहने का मतलब यही है कि इन थेरियों में से एक को भी अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान नहीं था। अपने पिता के पिता के पिता के रूप में आदि पिता का पता न चले लेकिन अपने पूर्वजन्म के पूर्वजन्म के पूर्वजन्म के रूप में अपने आदि जन्म के बारे में तो पता चल जाना चाहिए था। दुःख का कारण जान लिया पर इस क्रम में आदि दुःख के कारण का ज्ञान अजाना कैसे रह गया?

सारी 'थेरीगाथा' कुछ भी कहे, पुनर्जन्म को ले कर एक जगह यह किताब पुनर्जन्म का खण्डन कर गई है। जो हुआ है वह भूल में या सहजता में हुआ है। यह उस समय हुआ है जव पटाचारा अपनी पाँच सौ भिक्खुणी-शिष्याओं को उपदेश दे रही है। जो शिष्याएँ थीं उन 'सभी ने विवाहित हो कर पारिवारिक जीवन व्यतीत किया'[93] था। 'सन्तान-वियोग का दुक्ख इन सभी को सहना पड़ा'[94] था। उपदेश इस प्रकार है :

यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
तं कुतो चागतं सत्तं, 'मम पुत्तो' ति रोदसि।। 127।।[95]

—"इतना तक जिस के विषय में तू नहीं जानती कि वह किस मार्ग से आया, किस मार्ग से चला गया? तव उस के लिए जो तेरे पास कुछ समय के लिए था, तू 'मेरा पुत्र! मेरा पुत्र' कह-कह कर क्यों रोदन करती है?"[96]

पदाचारा के इस उपदेश से पता चलता है कि यह माना जा रहा है कि उन में से किसी को यह पता नहीं है कि जन्म के समय सन्तान किस मार्ग से आती है या मरण के समय किस मार्ग से जाती है। इस से अगली गाथा में पटाचारा ने एक बात और कही है जो इस प्रकार है :

मग्गञ्च खोस्स जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
न नं समनुसोचेसि, एवंधम्मा हि पाणिनो ।। 128।।[97]

—"वह किस मार्ग से आया, किस मार्ग से चला गया। इतना भी यदि तुझे मालूम हो, तो भी तू रोदन क्यों करे? अरे, यह तो जीव-प्राणियों का स्वभाव होता ही है।"[98]

यहाँ कहा गया है कि यदि यह पता भी चल जाए कि तेरा पुत्र किस मार्ग से आया था और किस मार्ग से चला गया तो फर्क क्या पड़ता है। यह झूठमूठ ही है कि कहा गया है कि किसी को इस वात का पता चल सकेगा कि उस का पुत्र कहाँ से आया था और कहाँ चला गया है। यह एक मुहावरा या भाषा-शैली भर है। मुहावरा या भाषा-शैली इसलिए है क्योंकि पुनर्जन्म के सिद्धान्त की काट इसी गाथा में जुड़ी हुई है कि जानने पर भी तुम कुछ कर नहीं सकती। ऐसे पूर्वजन्म या पुनर्जन्म के जानने का फायदा क्या हुआ कि तुम्हारी उस में कोई दखल नहीं है? तुम से विना पूछे सब कुछ घटित हो रहा है तो यह तुम्हारी सव से बड़ी क्षुद्रता और वेइज्जती है। तव वात जन्म और मृत्यु तक ही क्यों न रुक जाए—जन्म से पहले पूर्वजन्म और मरण के वाद पुनर्जन्म का भाषाई मुहावरा क्यों फालतू जोड़ा जाए? अगली गाथा में कहा भी गया है :

अयाचितो ततागच्छि, नानुञ्ञातो इतो गतो।
कुतोचि नून आगन्त्वा, वसित्वा कतपाहकं ।
इतोपि अञ्ञेन गतो, ततोपञ्ञेन गच्छति।।129।।[99]

—"जो बगैर बताए आया था, वह बगैर अनुमति के चला गया। कुछ दिनों के लिए वह कहीं से आया था, कुछ दिन ठहर कर वह फिर कहीं चल दिया।"[100]

यहाँ बात ऐसी हो रही है मानो पुत्र आया था और पुत्र चला गया। सच बात यह है कि आने और जाने में पुत्र की मर्जी नहीं थी। ऐसा नहीं है कि पुत्र जान बूझ कर जन्म लेता है और मरण के नाम पर जानबूझ कर आत्महत्या करता है। इस में बताने या न बताने तथा अनुमति लेने या अनुमति न लेने का प्रश्न ही नहीं है। फिर, कहीं से आया था और कहीं को चल दिया—यह भी तो सत्य नहीं है। जब आप केवल जन्म और मृत्यु के दो छोरों को ही जानते हो तो अगली सारी फालतू कल्पनाएँ ही हैं। अगली गाथा में लिखा गया है :

पेतो मनुस्सरूपेन, संसरन्तो गमिस्सति।
यथागतो तथा गतो, का तत्थ परिदेवना।। 130।।

—"एक मार्ग से आगमन, दूसरे मार्ग से गमन, यहाँ एक मार्ग से आया, यहाँ दूसरे मार्ग से चला गया। मृत्यु होने पर प्राणी यही रूपान्तर किया करता है, जिस रूप में उस का आगमन, उसी रूप में उसका गमन, फिर शोक किसके लिए?"[102]

प्राप्ति भी यही हुई है। यह नहीं कहा गया कि मुझे अपने या अपने पुत्र के पूर्वजन्मों का पता चल गया है। यह भी नहीं कहा गया है कि मुझे अपने या अपने पुत्र के भावी पुनर्जन्मों का पता चल गया है। अगली गाथा में कहा केवल यह गया है :

अब्बही वत में सल्लं, दुद्दसं हदयस्सितं।
या मे सोकपरेताय, पुत्रसोकं व्यपानुदि।। 131।।[103]

—"पुत्र की मृत्यु का जो शोकरूपी सूक्ष्म शल्य मुझ जैसी दुखिया के हृदय में गहराई तक बिंधा हुआ था, जो मुझे प्रताड़ित कर रहा था, वह आज पूरी तरह निकल गया है।"[104]

अब वह स्त्री मजे से 'बुद्धं धम्मञ्च सङ्घञ्च, उपेमि सरणं मुनिं।। 132।।'[105] कहती हुई, 'मुनि बुद्ध, उन के धम्म और संघ की शरण'[106] ले, मुझे इस में क्या आपत्ति हो सकती है? जिन के प्रियजन मर गए हों, उन्हें कोई जन्म और मृत्यु का रेला लगे रहने की बात समझा कर उन का दुख दूर करे तो यह अच्छी बात है—इस में कोई बुद्ध हो या अपना कोई बुजुर्ग रिश्तेदार। जन्म और मृत्यु से ही बात समझ में आ जाती है, पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के झूठे सिद्धान्त घड़ने की क्या जरूरत है?

वासेट्ठी थेरी को भी पुत्र शोक हुआ था। वह अपनी गाथा कहती है :

पुत्रसोकेनहं अट्टा, खित्तचित्ता विसञ्ञिनी।
नग्गा पकिण्णकेसी च, तेन तेन विचारिहं।। 133।।[107]

—"मैं पुत्र-शोक से दुक्खी थी। मेरा चित्त विक्षिप्त हो गया था। मैं संज्ञा-विहीन, नंगी, बालों को बिखरे हुए थी और मैं इधर-उधर घूमती थी।"[108]

सच बात है, किसी स्त्री या पुरुष की पुत्र-वियोग में ऐसी स्थिति हो जाती है। किसी के लिए यह कम बड़ा धहाका नहीं है कि उस का पुत्र या उस की पुत्री मर गई है। लेकिन इस के लिए बुद्ध ने वासेट्ठी को जो उपदेश दिया है, उस की जरूरत नहीं थी। वासेट्ठी अपनी गाथा इन शब्दों में कहती है :

तस्स धम्मं सुणित्वान पब्बजिं अनगारियं।। 137।।[109]

—"उन के धम्मोपदेश को सुन कर मैं घर छोड़ कर वेघर हो गई और फिर प्रव्रजित हो गई।"[110]

यह कौन-सी अक्ल हुई? यह कैसी शान्ति मिली? ऐसी शान्ति में आग लग जाए। पुत्र-शोक को किसने ज्यादा बड़ा मान रखा है—गृहस्थ लोगों ने या इन भिक्षु-भिक्षुणियों ने? हिसाब लगाया जाए तो पुत्र-शोक का उन्हें ज्यादा आघात लगा है जो उस वजह से घर ही छोड़ देते हैं। जो घर नहीं छोड़ते वे अपने काम-धन्धों में लगे रहते हैं। अपने दूसरे बच्चों को पालते हैं। अपने बच्चे नहीं होते तो दूसरों के बच्चे गोद ले लेते हैं। घर छोड़ने के बजाय दुख को मिटाने या भूलने का यह ज्यादा अच्छा रास्ता है। सारा समाज ऐसे ही चल रहा है। उन्हें किसी बुद्ध के उपदेश की जरूरत नहीं कि दुख को इतना गहरा बना कर लिया जाए कि समाधान में घर ही छोड़ दिया जाए। पटाचारा की तस्वीर ऐसी ही बनी या खींची गई है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है। एक ही समय में उस का पति रास्ते में मर गया, एक पुत्र बाज ने मार दिया और दूसरा पुत्र जल में डूब कर मर गया। उस के पिता को, उस की माता को और उस के भाई को उस के सामने शमशान भूमि में एक ही चिता में जलाया जा रहा है क्योंकि रात को तीनों ही वर्षा से घर की छत गिर जाने के कारण मर गए थे।[111] निश्चित रूप से भयावह स्थिति है—पर समाधान क्या है? 26 जनवरी, 2001 के दिन गुजरात में हालन आया था। भारी तबाही मची थी। वह मनुष्य और अन्य जीवों के ऊपर प्राकृतिक आपदा थी। उस में ऐसे ही दृश्य गुजरे थे जो पटाचारा की गाथा में बने हैं। एक-दो की बात नहीं, 20 हजार लोग मरे थे और 10 लाख लोग वेघर हुए थे। तब क्या वहाँ के बाकी बचे हुए लोग बुद्ध के उपेदशों को मान कर भिक्षु और भिक्षुणियाँ हो जाते? लेकिन ऐसा नहीं हुआ। संसार के सारे राष्ट्र उन की मदद के लिए आए। भारत के सरकारी और गैर-सरकारी कर्मचारियों ने भारी चन्दे इकट्ठे करके वहाँ पहुँचाए। राष्ट्रीय स्तर पर वहाँ के लिए घरों को दुबारा बनाने की ऐसी वैज्ञानिक पद्धति तैयार की गई कि वे भूकम्प के तेज झटकों को झेल सकें। यह मनुष्य का रास्ता है न कि यह कि बचे-खुचे घरों को भी छोड़ कर भिक्षु और भिक्षुणी बना जाए। वह राष्ट्र और समाज को शमशान बनाना है। ऐसे ही, 26 दिसम्बर, 2004 के दिन हिन्द महासागर के सुमात्रा में सुबह भूकम्प आया था। इन्डोनेशिया, थाईलैंड, मलयेशिया, सुमात्रा, अण्डमान-निकोबार, श्रीलंका तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और केरल में सूनामी लहरों से मरने वाले लोगों की संख्या की सूचना पौने तीन लाख तक गई है। हुआ यह है कि पूरे विश्व ने आपदाग्रस्त लोगों की मदद और सेवा की है।

च. एक और थेरी

यह बुद्‌ध के समय की स्त्रियों की ही वात नहीं है, आज की पढ़ी-लिखी दलित नारी भी बुद्‌ध के फैलाए पुनर्जन्म के इस भ्रम में पड़ी हुई है। ऐसा धोखा अनिता भारती के साथ हुआ है। वे अपने लेख 'स्त्री-मुक्ति का स्वर है 'थेरीगाथाएँ'' में मित्ता नामक भिक्षुणी के शब्दों को दोहराती हैं—"...पूर्वजन्म और मृत्यु से मुक्त हूँ मैं...।"[112] वे किसा गौतमी थेरी के पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले भ्रामक चिन्तन का समर्थन करती हैं जब उनके इन शब्दों को 'सुन्दर अभिव्यक्ति' की संज्ञा देती हैं—"दुखों से भरपूर नारी! तूने असंख्य जन्मों में इस प्रकार का अपरिमित (असीम) दुख अनुभव किया है। तूने सहस्रों जन्मों में आंसुओं को वहाया है।"[113] वे इस विषय पर भिक्षुणी अड्ढा कासी थेरी के शब्दों को भी उद्‌धृत करती हैं—"...मुझे अव और नहीं घूमना/मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्कर में...।"[114]

यह सरासर अनिता भारती का अन्धविश्वास है कि उन्हें किसी पुनर्जन्म से मुक्त होना है। दलित चिन्तन पुनर्जन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को कभी नहीं मानता। लेकिन जव अनिता भारती ने पूर्वजन्म के सिद्धान्त को मान ही लिया है तो मैं उन्हीं से पूछता हूँ कि वुद्ध काल की थेरियों के समान उन्हें अपने किन-किन पूर्वजन्मों का स्मरण है। धर्म और दर्शन के नाम पर अन्धविश्वासी वन कर खालिस एक झूठ को प्रश्रय दिया जा रहा है। यह अनिता भारती की ज़िम्मेदारी थी कि दलित सोच की रोशनी में बुद्ध के पुनर्जन्म के सिद्धान्त का खण्डन करतीं लेकिन वे तो बुद्‌ध की थेरियों के एक दूसरे वहकावे में भी आ गई हैं। उसे यहाँ रखना उचित रहेगा क्योंकि वह ज्यादा घातक मामला है।

अनिता भारती लिखती हैं—"स्त्री पारिवारिक दुख में डूवी थी परन्तु स्वयं उस के अपने शरीर के दुख—जैसे मां वनने की भयंकर पीड़ा भी झेलनी पड़ती थी जिसे आज तक मां वनने की गर्वपूर्ण शब्द चाशनी में डूबो कर छुपा दिया जाता है।"[115] वे लिखती हैं—"वुद्‌ध-काल की स्त्री यानि थेरी किसा गौतमी मां वनने में होने वाली पीड़ा का मार्मिक शब्दों में वर्णन करती है, "कोई-कोई वच्चे जनने वाली माताएं एक वार ही मृत्यु चाहती हुई, अपना गला काट लेती है, ताकि दोवारा यह असह्य दुख न सहना पड़े। कुछ सुकुमारियाँ विष खा लेती हैं। वच्चा जव पैदा नहीं होता और गर्भ के वीच में रुक जाता है तो भ्रूण मातृघातक वन जाता है और जच्चा वच्चा दोनों के दोनों ही विपदा अनुभव करते हैं।"[116] अनिता भारती इस प्रकरण का अन्त इन शब्दों में करती हैं—"मां वनने की पीड़ा का ऐसा मार्मिक वर्णन संस्कृत साहित्य से ले कर आज तक वर्तमान साहित्य तक में दुर्लभ हैं।"[117] मेरा कहना है कि यह खुशी की वात है कि ऐसी गलत सोच संसार में किसी दूसरे धार्मिक साहित्य में पैदा नहीं हुई। अच्छा हुआ कि ऐसी मनुष्य-विरोधी सोच का कलंक पालि भाषा के ही मत्थे चढ़ कर और दव कर रह गया।

भला, थेरियों से ऐसे मानव-विरोधी गीत गवाने से पहले बुद्ध को पता नहीं चला कि एक-एक औरत एक-एक सृष्टि है। एक औरत एक ग्रह को आवाद कर सकती है लेकिन बुद्ध के शासन में गई इन नई अनिता भारती को देखो कि अपने हिस्से की इस पृथ्वी की सर्जनात्मकता को मिटा रही हैं। यह स्त्री का अपमान है और पुरुष का अपमान है। इन्हें कौन समझाए कि जन्म देने में खुद को मरना होता है तो भी मनुष्य की विजय का इतिहास आगे बढ़ जाता है। अच्छा होता, ऐसा चिन्तन नपैद रह जाता। गाँव में ऐसी सोच को फैड़ कहते हैं। मक्का के पेड़ पर कूकड़ी न लगे तो वह डंगरों को खिला दी जाती है, लेकिन मनुष्य के इस चिन्तन का ऐसा फायदा भी नहीं है।

मुझे अनिता भारती समेत इन बौद्ध थेरियों के बजाय अपने युग की स्त्री लेखिका अनामिका अच्छी लगती हैं जो अपनी पुस्तक 'कविता में औरत' में लिखती हैं—"एक बार नये सिरे से याद दिलाना चाहूँगी कि स्त्री-भाषा की सब से बड़ी ताकत है त्रास और मुक्ति के आनंद का समायोजन, तर्क और अंतः प्रज्ञामूलक उस अर्धविस्मृत भाषिक लय का समायोजन जो गर्भगृह में मां की देह से छन कर शिशु की देह में उतर आता है—प्रसवकालीन क्रमण और संकुचन, स्तन पकड़ाने-छुड़ाने की लय...।"[118] तो, यह नजरिये का अन्तर है। बौद्ध थेरियाँ बच्चे को जन्म देने को दुख कह रही हैं लेकिन अनामिका उसे 'स्तन पकड़ाने-छुड़ाने की लय' कह रही हैं। बच्चे को ले कर अनामिका ने सही लिखा है—"यह अच्छा है कि बुरा—मैं नहीं जानती, पर मानवता की इतनी लम्बी यात्रा के बावजूद, कम-से-कम तीसरी दुनिया के देशों में, सामाजिक व्यवस्था की मूल इकाई अभी तक स्त्री और पुरुष—दोनों के लिए, उन का परिवार ही है जिस में कम-से-कम उन के बच्चे तो शामिल हैं ही।"[119] उन की इस बात में केवल यह और जोड़ा जा सकता है कि यूरोप और अमरीका में भी परिवार और बच्चे ही मुख्य हैं। परिवार यदि कमजोर हैं, बच्चे यदि निकम्मे हैं तो वे तीसरी दुनिया के गरीब देशों के हैं। अमरीका और यूरोप के राष्ट्रों ने परिवारों और बच्चों को तरजीह दी है तभी वे मजबूत राष्ट्र बने खड़े हैं। उन्होंने तलाक को विवाह को तोड़ना कहा है लेकिन उस में नया परिवार बनाना शामिल है। तलाक से अनैतिकता, झूठ और कमजोरी की खरपतवार निकाली जाती है ताकि परिवार की संस्था गाभा ले कर खूब फल-फूल सके। हिन्दू कानून में अटूट विवाह की वजह से परिवारों में खरपतवार ही पाली-पोसी जाती है।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, भूमिका, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, भूमिका, पृ.-22
2. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-117
3. वही, गाथा-385, पृ.-252

4. वही, गाथा-398, पृ.-256
5. मुत्ता च ततो सा भिक्खुनी, अगमी बुद्धवरस्स सन्तिकं।
पस्सिय वरपुञ्ञलक्खणं, चक्खु आसि यथा पुराणकं ति।। 401।। वही, पृ.-256
6. वही, पृ.-140
7. वही, पृ.-140
8. वही, पृ.-140
9. वही, पृ.-246
10. वही, पृ.-253
11. वही, पृ.-271
12. वही, पृ.-180
13. वही, पृ.-171
14. वही, पृ.-171 फुटनोट
15. वही, पृ.-276-77
16. वही, पृ.-277
17. वही, पृ.-283
18. वही, पृ.-283
19. वही, पृ.-270
20. वही, भूमिका, डा. विमलकीर्ति, पृ.-18
21. तस्सा ते स्वागतं भद्दं, ततो ते अदुरागतं।। 338।।
वही, पृ.-238
22. वही, 238
23. वही, पृ.-65
24. वही, पृ.-65
25. वही, पृ.-247
26. वही, पृ.-258
27. वही, पृ.-140, 168, 171
28. वही, पृ.-140
29. वही, पृ.-100, 115, 118, 198, 237
30. वही, पृ.-100
31. वही, पृ.-100
32. वही, पृ.-100, पाददटिप्पणी।
33. वही, पृ.-272
34. वही, पृ.-272
35. वही, पृ.-272
36. वही, पृ.-191
37. वही, पृ.-191
38. वही, पृ.-232
39. वही, पृ.-237
40. वही, पृ.-283
41. वही, पृ.-198-100
42. वही, पृ.-118, 237
43. वही, पृ.-118
44. वही, पृ.-140
45. वही, पृ.-140
46. वही, पृ.-168, 171
47. वही, पृ.-168
48. वही, पृ.-115
49. वही, पृ.-115
50. वही, पृ.-95
51. वही, पृ.-97
52. वही, पृ.-276
53. वही, पृ.-165
54. वही, पृ.-166
55. वही, पृ.-166
56. वही, पृ.-166
57. वही, पृ.-49
58. वही, पृ.-166
59. वही, पृ.-160
60. वही, पृ.-118
61. वही, पृ.-118
62. वही, पृ.-162
63. वही, पृ.-162-63
64. वही, पृ.-163
65. वही, पृ.-163
66. वही, पृ.-61
67. वही, पृ.-83
68. वही, पृ.-38, 41, 90, 97
69. वही, भूमिका, डा. विमल कीर्ति, पृ.-20
70. वही, पृ.-287
71. वही, पृ.-287
72. वही, पृ.-287
73. वही, पृ.-287-88
74. वही, पृ.-266
75. वही, पृ.-266

76. वही, पृ.-266
77. वही, पृ.-266
78. वही, पृ.-266
79. वही, पृ.-267
80. वही, पृ.-267
81. वही, पृ.-267
82. वही, पृ.-267
83. वही, पृ.-267-68
84. वही, पृ.-268
85. वही, पृ.-268
86. वही, पृ.-268
87. वही, पृ.-264
88. वही, पृ.-269
89. वही, पृ.-269
90. वही, पृ.-274
91. वही, पृ.-281
92. वही, पृ.-281
93. वही, पृ.-143
94. वही, पृ.-144
95. वही, पृ.-144
96. वही, पृ.-144
97. वही, पृ.-144
98. वही, पृ.-144
99. वही, पृ.-144
100. वही, पृ.-145
101. वही, पृ.-145
102. वही, पृ.-145
103. वही, पृ.-145
104. वही, पृ.-145
105. वही, पृ.-145
106. वही, पृ.-145
107. वही, पृ.-147
108. वही, पृ.-147
109. वही, पृ.-148
110. वही, पृ.-148
111. वही, पृ.-131-32
112. स्त्री-मुक्ति का स्वर है 'थेरीगाथाएँ', अनिता भारती, अपेक्षा, 27-घोंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, अप्रैल-जून 2005, पृ.-39
113. वही, पृ.-40
114. वही, पृ.-41
115. वही, पृ.-40
116. वही, पृ.-40
117. वही, पृ.-40
118. कविता में औरत, अनामिका, इतिहास बोध प्रकाशन, बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद—211004, प्रथम संस्करण जनवरी, 2004, पृ.-37
119. स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 142-ई, पाकेट-4, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091, पेपरबैक संस्करण 2001, पृ.-10

अध्याय—10

डा. अम्बेडकर और पुनर्जन्म

क. आजीवक उपक की कहानी
ख. डा. अम्वेडकर और मक्खलि गोसाल
ग. डा. अम्वेडकर बुद्ध के पास क्यों गए?

क. आजीवक उपक की कहानी

डा. विमल कीर्ति ने लिखा है—"जिस समय भगवान बुद्ध सम्यक सम्वोधि-प्राप्त करने के वाद धर्म-चक्र-प्रवर्तन करने के लिए सारनाथ जा रहे थे, उस समय उन्हें वोधगया और गया के वीच के रास्ते में उपक नामक आजीवक....तपस्वी मिला था।"[1] इस से क्या सिद्ध होता है? सिद्ध यह होता है कि वौद्ध धर्म की घोषणा वाद में हुई थी—अर्थात आजीवक धर्म वौद्ध धर्म से पहले अस्तित्व में था।

डा. विमल कीर्ति ने नाहक में आजीवक उपक को तपस्वी कहा है। यदि वह तपस्वी होता तो बहेलिये की वेटी चापा से विवाह क्यों करता? जबकि पूरी थेरीगाथा में और अन्य वौद्ध ग्रन्थों में भी बुद्ध स्त्री-पुरुषों के घर छुड़वा और तुड़वा कर उन्हें भिक्षुणियाँ और भिक्षु बना रहे हैं, उपक नाम का यह आजीवक वहेलिये की वेटी से विवाह रचा रहा है। इसलिए, दोनों धर्मों में घर-गृहस्थी को ले कर यह मूल भेद मौजूद है।

डा. विमल कीर्ति ने उपक की कहानी थोड़े में दी है। उपक यात्रा करते-करते वंकहार जनपद पहुँचा। "वहाँ वहेलियों के एक गाँव में ठहरा और उस वहेलिया-सरदार का अतिथि बना, जिस की पुत्री चापा थी।"[2] "चापा वहुत सुन्दर थी। उपक तपस्वी उस के सौन्दर्य पर मोहित हो गया और भोजन छोड़ कर, उस ने यह प्रतिज्ञा ले ली कि ...(यदि) चापा को पाऊँगा तो जिऊँगा, अन्यथा मर जाऊँगा।"[3] वहेलिया-सरदार जव शिकार से कुछ दिनों वाद वापस आया तो उस ने उपक के पैर दवाते हुए पूछा, "तपस्वी क्या कोई वीमारी है? वोलो,....जो मुझ से हो सकेगा, मैं अवश्य करूँगा।" उपक ने

अपना मन्तव्य वता दिया। वहेलिया-सरदार ने पूछा, "क्या कोई शिल्प भी जानते हो?" उपक ने उत्तर दिया, "नहीं।" वहेलिया-सरदार ने कहा, "क्या विना कोई शिल्प जानने वाला भी घर वसा सकता है?" उपक तपस्वी ने उत्तर दिया, "आप के शिकार को ले कर वेचा करूँगा।" बहेलिया-सरदार ने उसे अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया और दोनों का विवाह हो गया।"[4]

तो, यहाँ उपक का चापा से विवाह हुआ है। घर वसाने के लिए खाना-कमाना सीखना जरूरी है। इसी की वहेलिये-सरदार ने उपक से गारन्टी ली थी। विवाह के दौरान उन्हें एक वेटा पैदा हुआ। चापा बेटे के वहाने से उपक पर ताने मारने लगी कि 'उपक के पुत्र! रो मत। आजीवक....के पुत्र रो मत! माँस ढोने वाले के पुत्र! रो मत।" इस से उपक दुखी हो गया। वह भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ भिक्खु के रूप में प्रव्रजित हो गया। डा. विमल कीर्ति लिखते हैं—"स्वामी के गृहत्याग से व्यथित हो कर चापा ने अपने पुत्र को उस के नाना (अपने पिता) को सौंप दिया और स्वयं स्वामी की अनुगामिनी वन कर सावत्थी में जा कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।"[5] यही बात है, बुद्ध के पास किसी की कैसी भी समस्या का घर छुड़वाने और तुड़वाने के सिवा कोई दूसरा हल नहीं है। परिवार की समस्या थी, परिवार में सुलझ जाती। लेकिन घरों को बसवाने और रुकवाने के वजाय वे तो उन्हें उजड़वाने में लगे हुए हैं।

हुआ यह था कि वाद में चापा ने अपनी गलती महसूस की। उपक रंग का काला था। उस ने उपक को रोकने की कोशिश की थी। वह उपक से कहती है—"हे मेरे काले स्वामी! यह मेरा पुत्र-रूपी फल है। देख, इस का पिता तू ही है। इस पुत्र वाली को छोड़ कर तू कैसे जाएगा?"[6] लेकिन उपक बुद्ध के वहकावे में आए हुए थे। वे चापा को उत्तर देते हैं—"ज्ञानी जन पुत्र, धन, जन सव को छोड़ कर प्रव्रज्या ले लेते हैं। महावीर पुरुष इस सांसारिक जीवन को इस प्रकार छोड़ जाते हैं, जैसे हाथी बन्धनों को तोड़ कर मुक्त हो जाता है।"[7] इस पर चापा कहती है—"इसी क्षण मैं तेरे इस पुत्र को यदि डंडे से या छुरी से मार कर धरती पर गिरा दूँ, तव तो पुत्र-शोक के भय से तू जा न सकेगा?"[8] इस पर उपक का जवाव अजीब है—"निष्ठुर नारी! यदि तू इस पुत्र को गीदड़ या शिकारी कुत्तों के मुख में भी डाल दे, तो भी मुझे लौटाने में तू समर्थ नहीं होगी।"[9]

यदि इस संवाद का विश्लेषण किया जाए तो क्या हाथ लगता है? वे तीन बातें हैं :

1. पैदा पुत्र उपक का न हो कर चापा ने जारकर्म से पैदा किया हो।
2. उपक निठल्ला हो जिस के बारे में चापा के पिता ने पहले ही पूछा था।
3. उपक सच में निष्ठुर हो कि अपने बच्चे के पालन-पोषण का जिम्मा नहीं ले रहा है।

खैर, ये दोनों भले ही घर-बार छोड़ कर भिक्षु और भिक्षुणी बन गए हों लेकिन इन

के वेटे को उन का नाना वहेलिया-सरदार पाल रहा है। बौद्ध-धर्म की चपेट से बचा हुआ वह बालक ही मनुष्य की आशा की किरण है।

ख. डा. अम्बेडकर और मक्खलि गोसाल

चापा थेरी की कथा आजीवक धर्म को ले कर है। यह संख्या की दृष्टि से बड़ी है क्योंकि इस में 20 गाथाएँ शामिल हैं। यह आश्चर्य है कि इक्के-दुक्के 'अर्थशास्त्र' और 'वायुपुराण' को छोड़ कर ब्राह्मणों के ग्रन्थों की इतनी बड़ी सूची में आजीवकों का जिक्र नहीं मिलता। लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म के ग्रन्थों में इन की चर्चा भरी पड़ी है। आज के बौद्ध भी आजीवक धर्म और दर्शन को गम्भीरता से नहीं ले रहे हैं। डा. विमल कीर्ति ने कितने कम शब्दों में उन का परिचय दिया है—"उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय।"[10] खुद डा. अम्बेडकर ने आजीवकों को बहुत सस्ते में टाल दिया है। जिक्र किया है तो केवल उन का खण्डन करने के लिए। बस, दार्शनिकों के नाम गिना कर प्रकरण की इति कर दी। कुछ भी खोजवीन नहीं की। बौद्ध ग्रन्थों में जो ज्यादा जानकारी उपलब्ध थी उसे भी उस के पूरेपन में नहीं दिया।

यहाँ मक्खलि गोसाल के वारे में जानना उचित रहेगा क्योंकि वे आजीवक धर्म और दर्शन के आदि पुरुष हैं। लेकिन यहाँ उद्देश्य यह नहीं है कि मक्खलि गोसाल के मूल विचारों को जाना जाए। उतना ही पर्याप्त है जितना डा. अम्बेडकर ने उन के वारे में जाना है। वे अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में लिखते हैं—"एक दूसरी विचारधारा का नाम था नियतिवाद। इस के मुख्य उपदेशक का नाम था मक्खली गोसाल। उस का मत एक प्रकार का 'पूर्व निश्चयवाद' था। उस का मत था कि न कोई कुछ कर सकता है और न होने से रोक ही सकता है। घटनाएँ घटती हैं। कोई स्वेच्छा से उन घटनाओं को घटा नहीं सकता है। न कोई दुःख को दूर कर सकता है और न कोई उसे घटा-वढ़ा सकता है। आदमी पर, संसार में जो कुछ वीतने को है, वह वीत कर रहता है।"[11] इस मत के विरोध में डा. अम्बेडकर आगे लिखते हैं—"यदि मक्खली गोसाल का सिद्धान्त ठीक माना जाय तो आदमी भाग्य के हाथ का खिलौना वन जाता है। आदमी किसी भी तरह अपने बन्धनों को नहीं काट सकता।"[12]

जाना जाए कि डा. अम्बेडकर मक्खलि गोसाल के वारे में और क्या जानते हैं। वे लिखते हैं—"मक्खली गोसाल मानता था कि हर घटना का कारण होना चाहिये। लेकिन वह प्रचार करता था कि कारण आदमी की शक्ति से बाहर किसी 'प्रकृति', किसी 'अनिवार्य आवश्यकता', किसी 'अनुत्पन्न नियम' अथवा किसी 'भाग्य' में ही खोजना चाहिए।"[13] उन्होंने आगे तुलना करते हुए लिखा है—"भगवान बुद्ध ने इस प्रकार के सिद्धान्तों का खण्डन किया।"[14] यहाँ अवसर नहीं है कि वहस में पूरा उतरा जाए। कहना केवल यह है कि डा. अम्बेडकर ने तर्क को उस के सही सन्दर्भ में नहीं लिया और मक्खलि गोसाल के दर्शन की कोई खोजबीन और जाँच-परख नहीं की। जो बौद्ध ग्रन्थों

में मिल गया, वही विश्वास करके लिख दिया। चूँकि, बौद्ध ग्रन्थों ने आजीवकों का विरोध किया है इसलिए डा. अम्बेडकर बौद्धों की उस प्रस्तुति और रणनीति के शिकार हो गए। उन्होंने आजीवक दर्शन पर स्वतन्त्र रूप से चिन्तन नहीं किया। उन्हें यह भी मालूम नहीं हो सका कि कबीर के रूप में यह उन्हीं का दर्शन है ताकि जिम्मेदारी दिखा सकते। सही सन्दर्भ मनुष्य के जन्म और मृत्यु का है—और इसी रूप में मनुष्य का जन्म और मृत्यु घटनाएँ हैं। सवाल यह था कि क्या मनुष्य अपना जन्म अपने आप लेता है या मनुष्य अपनी मौत को रोक सकता है। मक्खलि गोसाल की इस बारे में 'ना' है—और बुद्ध का इस बाबत क्या उत्तर है? प्रश्नोत्तर जानने के लिए डा. अम्बेडकर के पास ही जाया जाए। वे लिखते हैं :

"1. क्या भगवान बुद्ध पुनर्जन्म मानते थे?

2. उत्तर "हाँ" में है।"[15]

अब यदि 'पुनर्जन्म' है तो 'पूर्वजन्म' को भी मानना है। यदि पूर्वजन्म, जन्म और पुनर्जन्म की शृंखला चल रही है तो यह मानना पड़ता है कि यह मनुष्य के हाथ में या परवश भी उस के कर्मों पर निर्भर होना चाहिए कि वह अगला कौन-सा जन्म धारण करेगा। मक्खलि गोसाल इसे नहीं मानते कि मनुष्य यह तय करता है कि वह अमुक माँ की कोख से जन्म ग्रहण करेगा। लेकिन बौद्ध धर्म के चक्कर में आ कर डा. अम्बेडकर इस अन्धविश्वास को मान गए हैं। कैसे?

गर्भधारण की रात को बुद्ध की माँ महामाया को एक स्वप्न दीखता है। डा. अम्बेडकर लिखते हैं—"तब सुमेध नाम का एक बोधिसत्व उस (महामाया) के पास आया और प्रश्न किया, "मैंने अपना अन्तिम जन्म पृथ्वी पर धारण करने का निश्चय किया है, क्या तुम मेरी माता बनना स्वीकार करोगी?" उस (महामाया) का उत्तर था—"बड़ी प्रसन्नता से।" उसी समय महामाया देवी की आँख खुल गई।"[16]

ऐसी स्थिति में किस का दर्शन सही है—बुद्ध का या गोसाल का? मेरी दृष्टि में निश्चित रूप से गोसाल का दर्शन सही है। यह एकदम झूठ और अन्धविश्वास है कि मनुष्य यह तय करता है कि वह अमुक घर जन्म लेगा—और इसलिए न ही यह सही है कि मनुष्य का पूर्वजन्म और पुनर्जन्म होता है। कम से कम डा. अम्बेडकर को ऐसे अन्धविश्वास फैलाने वाले धर्म को अखत्यार नहीं करना चाहिए था। डा. अम्बेडकर से अपेक्षा थी कि वे अपने बच्चों को अन्धविश्वासों से दूर रखेंगे लेकिन वे खुद उन में फँस कर रह गए हैं। अब यह उन के बच्चों का काम है कि वे अपने बुजुर्ग महापुरुष को पुनर्जन्म में अन्धविश्वास करने के गड्ढे से बाहर निकालें। लेकिन डा. अम्बेडकर बुद्ध की वजह से पुनर्जन्म के अन्धविश्वास में इतने मशगूल हो गए हैं कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि वे ही पुनर्जन्म में न विश्वास रखने वाले अपने युग के सब से बड़े आजीवक थे। वे अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में लिखते हैं :

"4. एक बोधिसत्व 'बुद्ध' कैसे बनता है?

5. बोधिसत्व को लगातार दस जन्मों तक 'बोधिसत्व' रहना पड़ता है। 'बुद्ध' बनने के लिए 'बोधिसत्व' को क्या करना होता है?
6. एक जन्म में वह 'मुदिता' प्राप्त करता है।....
7. अपने दूसरे जन्म में वह 'विमला-भूमि' को प्राप्त होता है।....
8. अपने तीसरे जीवन में वह प्रभाकारी-भूमि प्राप्त करता है।....
9. अपने चौथे जीवन में वह अर्चिस्मती भूमि को प्राप्त करता है।....
10. पाँचवें जीवन में वह सुदुर्जया भूमि को प्राप्त करता है।....
11. अपने छठे जीवन में वह अभिमुखी-भूमि प्राप्त करता है।....
12. अपने सातवें जीवन में बोधिसत्व दूरङ्गमा-भूमि प्राप्त करता है।...

. . . .

14. अपने आठवें जीवन में वह 'अचल' हो जाता है।.....
15. अपने नौवें जीवन में वह साधुमती-भूमि प्राप्त हो जाता है।....
16. अपने दसवें जीवन में बोधिसत्व 'धर्म-मेधा' बन जाता है। उसे बुद्ध की दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है।"[17]

पुनर्जन्म के अन्धविश्वास में कोई कमी न रह जाए इसलिए डा. अम्बेडकर इसे और पुख्ता बनाते हुए लिखते हैं :

"18. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होने पर बोधिसत्व को न केवल इन दस भूमियों को प्राप्त करना होता है बल्कि उसे दस पारमिताओं को भी पूर्णता को पहुँचाना होता है।
19. एक जन्म में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है। पारमिताओं की पूर्ति क्रमशः करनी होती है। एक जीवन में एक पारमिता की पूर्ति करनी होती है, ऐसी नहीं कि थोड़ी एक, थोड़ी दूसरी।"[18]

मुझे विश्वास है कि जो मैं बताना चाह रहा हूँ, मेरे पाठक वही समझ रहे होंगे कि डा. अम्बेडकर पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। लेकिन यदि अभी भी सन्देह की गुंजाइश बाकी बची हो तो डा. अम्बेडकर के अगले इन वाक्यों को निरन्तरता में पढ़ा जा सकता है जिन में वे हिन्दुओं के अवतारवाद और बौद्धों के बोधिसत्ववाद में मूल अन्तर यह मानते हैं कि अवतार को नैतिक और निर्मल होने की जरूरत नहीं जबकि बोधिसत्व को नैतिक और पवित्र होना ही पड़ेगा। उन के शब्द इस प्रकार हैं :

"21. जातकों का सिद्धान्त अथवा बोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल है अर्थात् ईश्वर के अवतार धारण करने के सिद्धान्त से।
22. जातक कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ है।
23. अवतार-वाद के अनुसार भगवान को अपने अस्तित्व में निर्मल होने

की आवश्यकता नहीं। ब्राह्मणी अवतारवाद का ब्राह्मणी-सिद्धान्त यही कहता है कि ईश्वरावतार चाहे अपने आचरण में अपवित्र और अनैतिक ही क्यों न हो, किन्तु वह अपने अनुयायियों की अपने भक्तों की—रक्षा करता है।

24. बुद्ध बनने से पूर्व बोधिसत्व के लिए दस जन्मों तक श्रेष्ठतम जीवन की शर्त और किसी धर्म में भी नहीं है। यह अनुपम है। कोई भी दूसरा धर्म अपने संस्थापक के लिए इस प्रकार की परीक्षा में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं ठहराता।"[19]

मुझे लगता है, मैं हिन्दू पुराण की जगह 'बुद्ध पुराण' नाम की कोई पुस्तक पढ़ रहा हूँ जिसे डा. अम्बेडकर ने 'द बुद्ध एण्ड हिज धम्म' के नाम से लिखा है। पता नहीं, उन्हें कैसे ध्यान नहीं रहा कि उन के मुझ जैसे बच्चे पैदा होंगे जो पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखेंगे?

मैंने सौ कोशिशें कीं कि डा. अम्बेडकर मुझे कोई रास्ता दें ताकि मैं कह सकूँ कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त झूठा और गलत है। लेकिन वे मुझे इस अन्धविश्वास से बाहर निकालने के बाजय खुद इस में धँसते चले गए हैं। वे अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' के बिलकुल अन्त में 'भगवान बुद्ध के पुनः स्वदेश लौट आने की प्रार्थना'[20] करते हैं। नीचे मैं इस प्रार्थना के महत्वपूर्ण शब्दों का भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद रख रहा हूँ। किसी को भ्रम न रह जाए इसलिए अनुवाद से पहले खुद डा. अम्बेडकर के अंग्रेजी के शब्द रख रहा हूँ। ये शब्द इस प्रकार हैं :

1. " O Exalted one ! I....
...express my earrest desire to be born in Thy land."[21]

—"हे पुरुषोत्तम ! मैं....
....कामना करता हूँ कि मैं आप के उस सुखावति लोक में जन्म ग्रहण करूँ।"[22]

2. "And pray that I could see Thee, O Buddha, face to face,
And That I could, together with all my fellow beings,
Attain the birth in the land of Bliss."[23]

—"....मेरी प्रार्थना है कि मुझे तथागत का साक्षात् दर्शन हो सके, और मैं समस्त प्राणियों सहित सुखावति-व्यूह में जन्म ग्रहण कर सकूँ।"[24]

इन्हीं शब्दों के साथ डा. अम्बेडकर द्वारा लिखा गया यह बौद्ध धर्मग्रन्थ पूरा हो जाता है। अब मुझे भी यहाँ यह कह कर चुप हो जाना चाहिए कि मेरा ऐसी किसी प्रार्थना में, सुखावति-व्यूह में और जन्म ग्रहण करने में कोई विश्वास नहीं है।

इस देश को बुद्‌ध की जरूरत नहीं है। दलितों को बुद्‌ध की बिलकुल जरूरत नहीं है। बुद्‌ध के लौटने के लिए प्रार्थना करना सही नहीं है। वे अपने घर नहीं लौटे थे, देश में क्या लौटेंगे, दलितों में क्या लौटेंगे? बुद्‌ध को लौटना है तो पहले अपने घर लौटें। घरबारी बनें, पत्नी से प्यार करें, बच्चों को स्कूल भेजें और कबीर की तरह भगवान के गुण गाएँ। भगवान ने ऐसा कोई काम नहीं किया है कि उसे भूला या कोसा जाए। पग-पग पर उस का शुक्र अदा किया जाना है। उस से और रहमतें माँगी जाएँ। उस की रहमतें अपार हैं, उस के वे हाथ बड़े विशाल हैं। विनीत होकर उस से दलित कौमों की तरक्की मांगी जाए। आदमी ईश्वर से अमरता मांग रहा है, अच्छा हो उस से वह खुशहाली मांग ले। आदमी ईश्वर से होड़ न करे क्योंकि अमर ईश्वर खुद है।

दलितों के हिसाब से, बुद्‌ध को कोई बोधि प्राप्त नहीं हुई थी। बस, गलती से एक घर से निकलने वाले की इज्जत हुई थी। यह गलती लगातार चलती रही और डा. अम्बेडकर उस की चपेट में आ गए। दलित के हिसाब से, बुद्‌ध के एक वहम को निर्वाण कहा गया है। गैर-दलित लोग बौद्‌ध बनें, इस से दलितों को कोई परेशानी भी नहीं होनी चाहिए लेकिन कर्ज में डूबे और बंधुआ मजदूरों के लिए बुद्ध के पास किसी मुक्ति का कोई आर्य सत्य या मार्ग नहीं है। बुद्ध ने चार आर्य सत्यों से अगला पाँचवाँ आर्य सत्य और आष्टांगिक मार्ग से आगे का नौवाँ मार्ग खोजा ही नहीं है।

ग. डा. अम्बेडकर बुद्‌ध के पास क्यों गए ?

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को ले कर डा. अम्बेडकर हमें समझाते हैं–"बौद्‌ध त्रिपिटक और उस की अट्टकथायें समुद्र की तरह विशाल हैं। उन्हें कण्ठस्थ कर सकना सचमुच एक बड़ी असाधारण बात थी।"[25] वे लिखते हैं–"एक से अधिक बार ऐसा हुआ है कि भगवान बुद्‌ध ने जो कुछ कहा उसकी 'रिपोर्ट' ठीक ठीक नहीं हुई।"[26] उन का कहना है–"'कर्म' और 'पुनर्जन्म' के बारे में जब जब गलत रिपोर्ट हुई है, उस के अनेक अवसर हैं।"[27] वे बताते हैं–"इन सिद्धान्तों को ब्राह्मणी 'धर्म' में भी स्थान प्राप्त है। इसलिए भाणकों के लिये अपेक्षाकृत सुगम था कि वह बौद्ध-धर्म में ब्राह्मणी-धर्म की भी खिचड़ी पका दें।"[28] वे आगाह करते हैं–"इसलिए त्रिपिटक में भी जो 'बुद्‌ध-वचन' करके माना गया है, उसे भी 'बुद्‌ध-वचन' स्वीकार करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।"[29] लेकिन इस में अन्यों के लिए सावधानी बरतने की कौन-सी बात रह जाती है जब खुद डा. अम्बेडकर बुद्‌ध के पूर्वजन्मों को स्वीकारते हैं? तब बुद्‌ध चीज हैं या व्यक्ति? वे चीज हो ही नहीं सकते, केवल व्यक्ति हैं। थेरीगाथा की थेरियाँ भी जब अपने पूर्वजन्मों की कथाएँ सुनाती हैं तो वे चीजें नहीं हैं बल्कि बुद्‌ध की तरह व्यक्ति हैं। अपने सारे विश्लेषण को डा. अम्बेडकर खुद ही नाकामयाब और खण्डित करते हैं। उन्होंने पुनर्जन्म के प्रश्न को दो हिस्सों में बाँटा है–'पुनर्जन्म किस चीज का' और

'पुनर्जन्म किस व्यक्ति का?'[30] वे लिखते हैं–"....शरीर का मरण होता है लेकिन भौतिक पदार्थ वने रहते हैं।"[31] और "भगवान बुद्ध इसी प्रकार के पुनर्जन्म को मानते थे।"[32] वे अगला प्रश्नोत्तर इस प्रकार रखते हैं :

"1. सब से कठिन प्रश्न है, पुनर्जन्म किस (व्यक्ति) का?
2. क्या वही मरा हुआ आदमी एक नया जन्म ग्रहण करता है?
3. क्या भगवान बुद्ध इस सिद्धान्त को मानते थे? उत्तर है, "इस की कम से कम सम्भावना है।""[33]

इन दोनों ही हिस्सों में डा. अम्वेडकर चूक कर गए हैं। पहली वात, भौतिक पदार्थ के वने रहने को पुनर्जन्म नहीं कहना चाहिए था, दूसरी वात, इस 'कम से कम की सम्भावना' पर भी तर्क के कुल्हाड़े वरसाए जाने चाहिए थे। यह कठिन प्रश्न विलकुल नहीं है जैसा कि डा. अम्वेडकर ने इसे मान लिया है। उन्होंने लिखा है :

"4. यदि मृत आदमी के देह के सभी भौतिक-अंश पुनः नये सिरे से मिल कर एक नये शरीर का निर्माण कर सकें, तभी यह मानना सम्भव है कि उसी आदमी का पुनर्जन्म हुआ।
5. यदि भिन्न भिन्न मृत शरीरों के अंशों के मेल से एक नया शरीर वना तो यह पुनर्जन्म तो हुआ, लेकिन यह उसी आदमी का पुनर्जन्म नहीं हुआ।"[34]

यहाँ ये डा. अम्वेडकर के सारे अनुमान शब्दों की फिजूलखर्ची है। एक अन्य स्थल पर वे दूसरी अटकलें लगाते हैं। वे लिखते हैं–"जहाँ तक 'आत्मा' की वात है, वे (भगवान बुद्ध) उच्छेदवादी थे। किन्तु जहाँ '(नाम–) रूप' की वात है वे उच्छेदवादी नहीं थे।"[35] शब्द वदलने से क्या फर्क पड़ता है? 'आत्मा' के वजाय 'नाम-रूप' कह दिया। आत्मा के पुनर्जन्म का खण्डन करके 'नाम-रूप' का पुनर्जन्म मान लिया। नाम-रूप की संज्ञा वनी, फिर संस्कार वने और फिर पुनर्जन्म हुए। सौ डिग्री के वजाय पचास डिग्री वाले पुनर्जन्म मान लिए–पर पुनर्जन्मों से पीछा नहीं छूट सका।

एक अन्य प्रश्न के उत्तर में जिस के बौद्ध-न्याय में चार भाग हो जाते हैं, इसे 'अव्याकृत' ही कह दिया है। कृपया वतायें, कि क्या तथागत मरणान्तर रहते हैं, क्या नहीं रहते हैं, क्या रहते भी हैं और नहीं भी रहते हैं, या क्या न ही रहते भी हैं और न ही नहीं भी रहते हैं–इन सारे प्रश्नों का एक ही उत्तर है–मैंने इन प्रश्नों को अव्याकृत रखा है।[36]

डा. अम्वेडकर ने लिखा है–"बुद्ध के कर्म के सिद्धान्त का सम्वन्ध मात्र 'कर्म' से था और वह भी वर्तमान जन्म के 'कर्म' से।"[37] यदि ऐसा है तो इस लिखने से पहले वे जो यह लिख चुके हैं कि 'सम्यक् सम्वोधि प्राप्त करके वोधिसत्व गौतम सम्यक् सम्बुद्ध हो गये'[38] उस का क्या अर्थ है? उस में उन्होंने बुद्ध बनने से पहले उन के बोधिसत्व के रूप में दस जीवनों के बखान किए हैं और लिखा है कि 'जातक कथाओं का आधार है कि बुद्ध के व्यक्तित्व में गुणों की पराकाष्ठा का समावेश हुआ है।'[39] हमें

गुणों की ऐसी पराकाष्ठा से क्या मतलव जिस में पूर्वजन्मों के सिद्धान्त का झूठ और अन्धविश्वास भरा पड़ा है? व्यक्ति में गुणों की पराकाष्ठा अवश्य होनी चाहिए लेकिन उस के लिए महान आजीवक कवीर हिन्दुओं के अवतारवाद के सिद्धान्त समेत बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाओं को भी कल्पित और मनगढ़न्त मानते हैं। डा. अम्वेडकर ने नैतिकता को ले कर 'जातकों का सिद्धान्त अथवा वोधिसत्व के अनेक जन्मों का सिद्धान्त ब्राह्मणों के अवतारवाद के सिद्धान्त से सर्वथा प्रतिकूल'[40] ठहरा दिया पर पुनर्जन्म के झूठ और अन्धविश्वास को ले कर वे दोनों एक दूसरे के वहुत अनुकूल हो गए हैं। गड्ढे से निकाल कर उन्होंने अपने चिन्तन को खाई में डाल दिया है।

और हाँ, 'थेरीगाथा' में पुनर्जन्म के वारे में जान लिया लेकिन वौद्धों की एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक 'धम्मपद' में इस के वारे में क्या विचार है जिसे डा. अम्वेडकर ने अपनी पुस्तक 'द वुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में धड़ल्ले से उद्धृत किया है? क्या धम्मपद में भी पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को माना गया है? वड़ी स्पष्टता से उत्तर 'हाँ' में है। यहाँ सम्वन्धित कुछ पद एक-एक करके रखे जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. मिद्धी यदा होति महग्धसो सो च निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
   महावराहो'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो।। 325।।

   —"जो आलसी, वहुत खानेवाला, निद्रालु करवट वदल-वदल कर सोने वाला, दान खा कर पले मोटे सूअर की भाँति होता है, वह मन्दगति वार-वार गर्भ में पड़ता है।"[41]

2. निट्ठङ्गतो असन्तासी विततण्हो अनङ्गणो।
   उच्छिज्ज भवसलानि अन्तिमो' यं समुस्स्यो।। 351।।

   —"जिस का (कार्य) समाप्त हो गया, जो त्रास-रहित है, जो तृष्णा-रहित हैं, जो मल-रहित है, वही संसार रूपी शल्य को काटेगा, यह उस का अन्तिम जन्म है।"[42]

3. वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो
   अकखरानं सन्निपातं जञा पुब्वपरानि च।
   स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञा'ति वुच्चति।। 352।।

   —"जो तृष्णा-रहित है, जो परिगृह-रहित है, जो भाषा और काव्य को जानता है, जो व्याकरण जानता है, वह निश्चय से अन्तिम शरीरवाला तथा महाप्रज्ञ है।"[43]

पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले ऐसे पदों की संख्या धम्मपद में और भी है, लेकिन मैं इस का अन्तिम पद जो 'ब्राह्मणवग्गो' में भी सम्मिलित है, यहाँ उद्धृत करके विराम देना चाह रहा हूँ। इस का 423वाँ पद इस प्रकार है :

"पुब्वेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि।

सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

—"जो पूर्व-जन्म को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देखता है, जिस का (पुनः) जन्म क्षीण हो गया, जो अभिज्ञावान् है, जिस ने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।"[44]

तो, डा. अम्बेडकर कहाँ तक बचेंगे? इन प्रश्नों को ले कर डा. अम्बेडकर का बुद्ध के पास जाना ही गलत था। अपने सदगुरु कबीर के पास जाते तो सीधा और दो टूक जवाब मिलता। वे तो उलटा डा. अम्बेडकर से पूछ बैठते—'बहुरि हम काहैं कूँ आवहिंगे।'[45]

इस पद के कई पाठ मिलते हैं। सब से प्राचीन पाठ इस प्रकार है :

उदद समुंद सलल की साखिआ नदी तरंग समावहिगे।।
सुन कउ सुनु मिलिया समदरसी पवनि रूपि होइ जावहगे।। 2।।
बहुडि हमि काहे आवहगे।।
आवणु जाणा हुकमु तिसै का हुकमै बूझि समावहगे।। रहऊ।।
जब चूकै पंच धातु की रचना ऐसे भरमु चुकावहगे।।
दरसनु छोडि भई समदरसी एको नामु धिआवहगे।। 2।।
जितु हम लाए तित ही लागे अैसे करम कमावहगे।।
किरपा करे जे आपणी ता गुर कै सवदि समावहगे।। 3।।
जीवतु मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरमि जनम न होई।।
कहु कमीर जो नामि समाणे सुंनि रहिआ लिख सोई।। 4।।[46]

और भी, कबीर का कहना है :

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया विसाहना, बहुरि न आंवौ हट्ट।।[47]

कबीर केवल अपने बारे में ही नहीं कहते कि वे नहीं आएंगे बल्कि वे दूसरों के बारे में भी गारन्टी देते हैं कि और भी कोई नहीं आएगा। वे भूतकाल की भी साक्षी देते हैं कि पहलों में से भी कोई नहीं आया है। न बुद्ध होने से पहले बुद्ध के बोधिसत्व के रूप में दस जन्म होते हैं और न अवतारवाद में विष्णु के चौबीस जन्म। वे बिना किसी बौद्धिक लागलपेट के सीधे कहते हैं :

बहुरि नहि आवना यह देश।
जो जो गए बहुरि नहि आए, पठवत नहिं संदेश।।
सुर नर मुनि और पीर औलिया, देवी देव गणेश।
धरि धरि जनम सबे भरमे हैं, ब्रह्मा विष्णु महेश।।
योगी जंगम और संन्यासी, दीगम्बर दरवेश।

चुण्डित मुण्डित पण्डित लोई, स्वर्ग रसातल शेष।।
ज्ञानी गुणी चतुर औ कविना, राजा रंक धनेश।
कोई रहीम कोई राम वखाने, कोई कहै आदेश।।
नाना वेष वनाय सवन मिलि, ढूँढि फिरै चहुँदेश।
कहैं कवीर अन्त न पैहो, विन सतगुरु उपदेश।।[48]

अव यहाँ महान मक्खलि गोसाल के दर्शन को दोहरा लिया जाए। वौद्‌ध दर्शन का सारा केन्द्र विन्दु जन्म और मृत्यु है। एक वौद्‌ध दर्शन का क्या, जैन दर्शन और ब्राह्मण दर्शन का केन्द्र विन्दु भी जन्म और मृत्यु ही है। वौद्‌ध, जैन और ब्राह्मण के तीनों दर्शन पुनर्जन्म का सिद्धान्त दे कर जन्म और मृत्यु की व्याख्या करते हैं। मक्खलि गोसाल क्या करते हैं? वे पुनर्जन्म को नहीं मानते। वे इस झूठ को भी नहीं मानते कि मनुष्य सोच-समझ कर अपनी चाहत से किसी योनि या माँ-वाप के यहाँ जन्म लेता है। वे इस वकवास को भी सिरे से खारिज करते हैं कि मनुष्य में इतना वल है कि वह अपनी मृत्यु को रोक सकता है। ऐसा कोई मानववाद नहीं है, चाहे वुद्‌ध कहें या डा. अम्वेडकर उस में विश्वास करें, जिस में मनुष्य अपने जन्म का निर्धारण करता हो और अपनी मृत्यु से वच सके। जन्म और मृत्यु को छोड़ कर मनुष्य जीवन के दूसरे पक्षों पर गहन चर्चा की जाए तो उस में मक्खलि गोसाल उन सव से ज्यादा मानववादी हैं जो खुद को वौद्ध, जैन और ब्राह्मण कहते हैं।

कई जगह थेरीगाथा अन्धविश्वास को मिटाने वाली पुस्तक है। ऐसा एक प्रकरण ब्राह्मणों के इस विश्वास के विरुद्ध आया है कि गंगा जल से शुद्धि होती है। ब्राह्मणों ने उस काल में यह मानना शुरू कर रखा था कि गंगा स्नान करने से पूर्व जन्मों के पापकर्मों से मुक्ति मिल जाती है। लेकिन ब्राह्मणों की इस अज्ञानता की खिल्ली भी वुद्ध काल से चली आती उड़ रही है। थेरीगाथा में ही पुण्णिके भिक्षुणी ऐसे एक ब्राह्मण से कहती है :

1. "यदि गंगा जल से ही शुद्धि होती, तव तो मेंढ़क, कछुए जल के सर्प, मगर और अन्य जलचरों का स्वर्ग में जाना सुनिश्चित है।"[49]
2. "यदि गंगा-स्नान से पाप-मुक्ति होती है, तो फिर भेड़-वकरी, सूअर और मृगों को मारने वाले या उन का माँस वेचने वाले, मछुए, चोर, जल्लाद या अन्य पापी लोग, सभी पाप-कर्म करने के वाद गंगा-जल में स्नान कर, क्या पाप-मुक्त नहीं हो जाएंगे?"[50]
3. "फिर यदि इस नदी में नहाने से पूर्व के पाप-कर्म धुल जाते हैं, तो क्या फिर उन के साथ ही तेरे पुण्य-कर्म भी न धुल जाएँगे? अरे मूर्ख ब्राह्मण! फिर तेरे पास क्या शेष रहेगा?"[51]

अन्धविश्वास के विरोध की यह लम्वी परम्परा है जो मध्य काल में कवीर तक आई है। इस तर्क को हर ब्राह्मण-विरोधी कहता है चाहे वह प्राचीन काल में आजीवक

हो, बौद्ध हो या जैन हो। इस मामले में ये तीनों ब्राह्मण-विरोधी एक हैं। इस में यदि श्रेय दिया जाना है तो वह आजीवक को दिया जाना चाहिए क्योंकि यह उस की सोच के ज्यादा नजदीक बैठता है। लगता है, थेरीगाथा के पास भी यह रटा हुआ तर्क है, गुणा हुआ नहीं। यदि गुणा हुआ होता तो थेरीगाथा की बौद्ध भिक्षुणियाँ पूर्वजन्म के सिद्धान्त में अन्धविश्वास रखती हुई न होतीं। आधा अन्धविश्वास खत्म कर दिया और आधा अन्धविश्वास बचा लिया–इस से कुछ फायदा नहीं है। कबीर के यहाँ न गंगा-स्नान का अन्धविश्वास है और न पूर्वजन्म और उस के कर्मों का फल। अन्धविश्वास कटे तो जड़ से कटे, इस में यह फिफ्टी-फिफ्टी क्या होता है?

मुझे बाबा साहेब डा. अम्बेडकर के बुद्‌ध कब अच्छे लगते? मुझे उन के बुद्‌ध तब अच्छे लगते जब डा. अम्बेडकर अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में रखे गए प्रश्नोत्तर को इस रूप में रखते :

1. क्या भगवान पुनर्जन्म मानते थे ?
2. उत्तर 'ना' में है।

तब मैं वाह-वाह कर बैठता। अब उन के यह कहने से कि 'उत्तर "हाँ" में हैं',[52] मैंने अपना मुँह फेर लिया है। हाँ, डा. अम्बेडकर को यह 'पुनर्जन्म' शब्द इतना प्रिय हो गया है कि उन की जबान पर चढ़ा हुआ है। जब उन्होंने बौद्ध धर्म ग्रहण करने वाले अपने अनुयायियों से 22 प्रतिज्ञाएँ कराई थीं तो उन में 21वीं प्रतिज्ञा इस प्रकार थीं–"मैं यह मानता हूँ कि मेरा पुनर्जन्म हो रहा है।"[53] बताइए, यहाँ पुनर्जन्म से क्या लेना-देना? यदि इस्लाम या ईसाइयत को अपनाते तो तब मात्र धर्मान्तरण होता लेकिन बौद्ध धर्म में जाने पर उन का पुनर्जन्म हो रहा है।

संदर्भ

1. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-221
2. वही, पृ.-222
3. वही, पृ.-222
4. वही, पृ.-222-23
5. वही, पृ.-224
6. इमञ्च मं पुत्तफलं, काळ उप्पादितं तया।
   तं मं पुत्वतिं सन्तिं, कस्स ओहाय गच्छसि।। 301।। वही, पृ.-226-27
7. जहन्ति पुत्ते सप्पञ्ञा, ततो ञाती ततो धनं।
   पब्बजन्ति महावीरा, नागो छेत्वा व बन्धनं।। 302।। वही, पृ.-227
8. इदानि ते इमं पुत्तं, दण्डेन छुरिकाय वा।
   भूमियं वा निसुम्भिस्सं, पुत्तसोका न गच्छसि।। 303।। वही, पृ.-227
9. सचे पुत्तं सिङ्गालानं, कुक्कुरानं पदाहिसि।
   न मं पुत्तकत्ते जम्मि, पुनरावत्तयिस्ससि।। 304।। वही, पृ.-227
10. वही, पृ.-221

11. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-80
12. वही, पृ.-82
13. वही, पृ.-193
14. वही, पृ.-193
15. वही, पृ.-261
16. वही, पृ.-5
17. वही, पृ.-65-7
18. वही, पृ.-67
19. वही, पृ.-67
20. वही, पृ.-467
21. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings And Speeches : Vol. 11: The Buddha and His Dhamma, Education Department, Govt. of Maharashtra, Bombay-400 032, 4th Edition 1991, p.-599
22. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-467
23. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches : Vol 11 : The Buddha and His Dhamma, Education Department, Govt. of Maharashta, Bombay-400 032, 4th Edition 1991, p.-599
24. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-467
25. वही, पृ.-278
26. वही, पृ.-278
27. वही, पृ.-278
28. वही, पृ.-278
29. वही, पृ.-278
30. वही, पृ.-261
31. वही, पृ.-261
32. वही, पृ.-261
33. वही, पृ.-264
34. वही, पृ.-264
35. वही, पृ.-263
36. वही, पृ.-266
37. वही, पृ.-269
38. वही, पृ.-65
39. वही, पृ.-67
40. वही, पृ.-67
41. धम्मपदं, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्ध भूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपूर-441002, सातवां संस्करण, 14 अक्तूबर 1996, पृ.-76
42. वही, पृ.-83
43. वही, पृ.-83
44. वही, पृ.-97
45. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, सम्पादक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221 010, द्वितीय संस्करण, 1995, पृ.-580
46. The Millennium Kabir Vāṇi : A Collection of Pad-s by Winand M. Callewaert in Collaboration with Swapna Sharma and Dieter Taillieu, Manohar Publishers & Distributors, 4753/23 Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002, Ist Edition-2000, p.-483
47. कबीर वाङ्मय : खण्ड 3 : साखी, भावार्थ बोधिनी व्याख्याकार डा. जयदेव सिंह और डा. वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001, तृतीय संस्करण 2000 ईस्वी, पृ.-6

48. कबीर समग्र : द्वितीय खण्ड, डा. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा. लि., सी-21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221 010, प्रथम संस्करण 1997, पृ.-1336

49. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक, डा. विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-203

50. वही, पृ.-204

51. वही, पृ.-204

52. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-261

53. हिन्दू कोड बिल और डा. अम्बेडकर, सोहन लाल शास्त्री, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, चतुर्थ संस्करण 2003, पृ.-142

अध्याय–11

बाबासाहेब बनाम बोधिसत्व

यह 'बाबासाहेब बनाम बोधिसत्व' का मामला है। जब दलितों के बाबासाहेब बौद्धों के बोधिसत्व बन कर यह विश्वास करते हैं कि इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पूर्ण पुनर्जन्म भी हो सकता है तो वे वेदान्त के ब्रह्म की तुलना में खुद अपने शून्यवाद का खण्डन कर बैठते हैं। यह भूल अचानक हुई है लेकिन परम के दर्शन में शून्यवाद के बजाय ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा कर जाती है।

बताया जाए कि जब कबीर कह रहे हैं कि 'बहुरि हम काहैं कूँ आवहिंगे'[1] तो वे किसी उच्छेदवाद से नहीं डर रहे हैं और न वे किसी शाश्वतवाद की वकालत कर रहे हैं। वे केवल सच्चाई बता रहे हैं जो लोगों को सहनी मुश्किल हो जाती है। डा. अम्बेडकर ने भी इस प्रश्न को अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' में उठाया है। वे लिखते हैं–"यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि मरने के बाद क्या होता है?"[2] उन का बुद्ध को ले कर उत्तर इस प्रकार है–"भगवान् बुद्ध 'शाश्वतवादी' नहीं थे, क्योंकि इस का मतलब था कि एक बार पृथक नित्य 'आत्मा' में विश्वास करना, जिस के वे विरोधी थे।"[3] वे आगे पूछते हैं–"तो क्या तथागत उच्छेदवादी थे? जब वे 'आत्मा' का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे, तो स्वाभाविक तौर पर उन्हें 'उच्छेदवादी' मानने की प्रवृत्ति हो सकती है।"[4] इस बारे में उन्होंने बुद्ध को अलगद्दूपम सुतन्त से यह कहते हुए उद्धृत किया है–"यद्यपि मैं इस मत को स्थापित करता हूँ, और इसी की देशना करता हूँ, तो भी कुछ श्रमण-ब्राह्मण भूल से, गलती से मुझ पर झूठा इलज़ाम लगाते हैं जो कि वास्तविकता के विरुद्ध है कि मैं उच्छेदवादी की देशना करता हूँ कि मैं आदमियों के टुकड़े-टुकड़े हो जाने की, नाश की, संपूर्ण विनाश की देशना करता हूँ।"[5] स्पष्टता के लिए डा. अम्बेडकर के कुछ और शब्दों को उद्धृत किया जा सकता है :

"39. इसलिए मृत्यु के दो अर्थ हैं। एक ओर तो इस का अर्थ है कि नई शक्ति की उत्पत्ति रुक जाना, दूसरी ओर इस का अर्थ है कि विश्व में जो शक्ति-पुंज संचरण कर रहा है उस में कुछ वृद्धि हो जाना।

40. सम्भवतः मृत्यु के इन दोनों पहलुओं के ही कारण भगवान बुद्ध ने कहा कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं थे। जहाँ तक 'आत्मा' की वात है, वे उच्छेदवादी थे। किन्तु जहाँ '(नाम-) रूप' की वात है वे उच्छेदवादी नहीं थे।

41. इस व्याख्या को स्वीकार कर लेने पर यह समझना कठिन नहीं है कि भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा कि वे 'उच्छेदवादी' नहीं हैं। वे (नाम-) रूप की पुनरुत्पत्ति में विश्वास रखते थे, 'आत्मा' के पुनर्जन्म में नहीं।"[6]

नाम-रूप के वारे में आगे विचार किया जाएगा लेकिन यहाँ यह भी जान लिया जाए कि डा. अम्बेडकर तथागत के वारे में क्या विचार रखते हैं। उन्होंने उत्तर उद्धृत किया है—"तथागत गम्भीर है, तथागत असीम है और तथागत की तह तक नहीं पहुँचा जा सकता, ठीक वैसे ही जैसे समुद्र की।"[7] आगे उत्तर इस प्रकार है—"इसीलिए यह भी नहीं कहा जा सकता है कि 'तथागत मरणान्तर रहते हैं।' यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत मरणान्तर नहीं रहते।' यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत रहते भी हैं और नहीं भी रहते' और यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'तथागत नहीं रहते हैं और नहीं नहीं भी रहते हैं।"[8] पता नहीं चलता, यहाँ तथागत वाकी सव से अलग कैसे हो गए? क्या वुद्ध नाम-रूप से वने हुए नहीं थे? जब नाम-रूप का पुनर्जन्म होता है तो तथागत उस स्कीम से बाहर कैसे वच जाएंगे? डा. अम्बेडकर के तथागत अव्याकृत हो गए हैं जवकि कवीर सीधे-सीधे कह रहे हैं—"वहुरि नहि आवना यह देश।"[9]

अव डा. अम्बेडकर उसे तथागत कहें या नामरूप में पुनर्जन्म लेने वाला व्यक्ति, कवीर के हिसाव से कोई दुवारा आने वाला नहीं है। ऐसे समय डा. अम्बेडकर के पुनः पुनः यह कहने का कोई फायदा नहीं है—""भगवान बुद्ध ने कहा—'आत्मा' नहीं है। भगवान् बुद्ध ने कहा—'पुनर्जन्म' है।"[10] यहाँ वताया जा सकता है कि बौद्ध-दर्शन में यह नाम-रूप क्या है जिस का पुनर्जन्म होता है या जो पुनर्जन्म लेता है। परिभाषा इस प्रकार है—"मन और शरीर, अर्थात भौतिक और मानसिक क्रियाओं की एक सम्पूर्णता जो व्यक्ति को वनाती है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद की शृंखला में चौथे स्तर पर आती है जहाँ इस से पहले विज्ञान आता है तथा इसके वाद षड-आयतन पड़ते हैं। इस सन्दर्भ में नाम-रूप की संज्ञा उस क्षण वनती है जिस क्षण नए व्यक्ति के मन और शरीर अस्तित्व में आते हैं।"[11]

पुनर्जन्म के पक्ष में डा. अम्बेडकर बोलते ही चले गए हैं। उन्होंने 5 फरवरी, 1956 को महाबोधि सोसायटी आफ इन्डिया, नई दिल्ली के तत्वाधान में आयोजित बुद्ध विहार की एक वैठक में अपना भाषण दिया था। इस में उन्होंने कहा था—"मैं पुनर्जन्म में पूर्ण रूप से विश्वास करता हूँ। मैं वैज्ञानिकों के समक्ष यह सिद्ध कर सकता हूँ कि पुनर्जन्म तर्कपूर्ण है। मेरे विचार में, ये तत्व हैं जो परिवर्तित होते हैं, न कि मनुष्य।"[12] वताइए,

डा. अम्बेडकर कैसे सिद्ध कर देंगे कि बुद्ध बनने से पहले उन के बोधिसत्वों के रूप में दस पारमिताओं की प्राप्तियाँ करने के लिए दस पूर्वजन्म हुए थे? संसार का कौन-सा वैज्ञानिक उन की इस बात को तर्कपूर्ण मान लेगा? उन के बजाय डा. विमल कीर्ति से बात की जाए। उन से पूछा जा सकता है कि जब उन के हजारों-लाखों पूर्वजन्म हुए हैं तो वे हिन्दुओं की आत्मा की तरह की परमानेन्ट चीज हैं या बौद्धों की अनात्मा जैसी चीज। अपने उत्तर में वे आत्मा हों या अनात्मा, लाखों-करोड़ों सालों तक बार-बार जन्म लेने वाली चीज की एक एन्टेटी और पहचान जरूर बनती है जो पुनर्जन्म ले रही है या जिस का पुनर्जन्म हो रहा है। तब बौद्धों के यहाँ पुनर्जन्म किस चीज या व्यक्ति का हो रहा है? बौद्ध धर्म का उपदेश किस के लिए है—चीज के लिए या व्यक्ति के लिए? सच्चाई यह है कि चीज को कोई उपदेश दिया ही नहीं जा सकता। डा. अम्बेडकर लिखते हैं :

1. "'कर्म' का हिन्दु-सिद्धान्त शरीर से पृथक एक 'आत्मा' पर आधारित है। शरीर मरता है, तो 'आत्मा' उस के साथ नहीं मरता। 'आत्मा' फुर्र से उड़ जाता है।"[13]
2. "जो चीज वास्तव में है वह मन या चित्त है, 'आत्मा' नहीं।"[14]

मेरा पूछना केवल यह है कि डा. विमल कीर्ति कौन हैं जिन के लाखों पूर्वजन्म हो चुके हैं, और यदि निर्वाण न मिला तो, लाखों पुनर्जन्म और होने वाले हैं। मित्र भाव में ही पूछ रहा हूँ कि उसे मन या चित्त कहने से भी वह परमानेन्सी के मामले में हिन्दुओं की आत्मा की माँ बन जाती है। वह एक एन्टेटी हो कर अपनी पहचान में करोड़ो सालों से पुनर्जन्म धारण करती आ रही है और आगे करोड़ों सालों तक पुनर्जन्म धारण करती रहेगी। तब दलित चिन्तन को फायदा क्या रहा? जब एक ही चीज का हिसाब-किताब, उस की यात्रा में या उम्र में, अरबों वर्षों का हो तो उसे कुछ भी नाम दो—मन, चित्त या आत्मा—फर्क क्या पड़ता है?

जब डा. अम्बेडकर पुनर्जन्म का पक्ष लेते हैं तो इसी वजह से लेते हैं कि अन्यथा नैतिकता का क्या होगा? लेकिन जब वे अनात्मवाद तक पहुँच गए हैं, तब भी नैतिकता का क्या होता है? जब आत्मा ही नहीं है तो फिर मरण के बाद व्यक्ति को नैतिकता का भय कैसे व्याप सकता है? यदि पुनर्जन्म 'व्यक्ति' का नहीं होता है तो फिर आप के हिसाब से व्यक्ति अनैतिक कार्यों को करने से कैसे डर सकता है? जब पुनर्जन्म 'वस्तु' का होता है तो उस में अनैतिकता का सवाल कैसे उठाया जा सकता है क्योंकि नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न वस्तु से न जुड़ कर व्यक्ति से जुड़ता है?

अन्धविश्वास दो तरह के हो सकते हैं—एक मनुष्य को ले कर और दूसरा ईश्वर को ले कर। ईश्वर को ले कर अन्धविश्वास समझ में आता है क्योंकि वहाँ तक मनुष्य की पहुँच नहीं है, लेकिन मनुष्य को ले कर अन्धविश्वास की क्या जरूरत है? यहाँ ईश्वर के नाम के बिना थेरीगाथा की भिक्षुणियाँ कह रही हैं कि उन्हें अपने पूर्वजन्मों की याद

है। इसे अन्धविश्वास से बढ़ कर झूठ कहा जाए। मेरी समझ में उन में से किसी को भी ऐसा कहने का अधिकार नहीं था। जव हमें ईश्वर के नाम पर अन्धविश्वास पसन्द नहीं हैं तो हम मनुष्य के स्तर पर वोले गए झूठ को क्या कह कर लें?

दलितों के कई महत्वपूर्ण सवाल हैं। बौद्ध धर्म दलितों के उन सवालों का उत्तर नहीं है वल्कि उलटे वह दलित की जानलेवा समस्या वन गया है। वावा साहेव समझ रहे थे लेकिन इस मुश्किल का पूरा अन्दाज नहीं था कि वौद्ध धर्म का दिया हुआ उन का समाधान पुनर्जन्म आदि को ले कर प्रायोगिक दर्शन के स्तर पर उन के वच्चों की इतनी वड़ी मुसीवत वन जाएगा। इस वजह से दलितों की एकता पर भी अच्छा असर नहीं पड़ रहा है। दलित समाज एक ही है, दार्शनिक स्तर पर इस के दो भाग नहीं किए जा सकते। ऐसा नहीं हो सकता कि अव दलितों में से कुछ लोग पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने लगेंगे। दलितों को इस मामले में एकजुट रहना है कि वे पुनर्जन्म के सिद्धान्त को कभी नहीं मानेंगे, चाहे वह व्राह्मणों का पुनर्जन्म हो, या बौद्धों का पुनर्जन्म हो, या जैनियों का पुनर्जन्म हो। यदि वावा साहेव जीवित होते तो वौद्ध धर्म से कभी का वैकट्रैक कर जाते। उन का हिन्दू समेत कई धर्मों से मोहभंग हो चुका था लेकिन असमय निधन के कारण वौद्ध धर्म से मोहभंग होना वाकी रह गया।

वावा साहेव एक वहुत अच्छे इन्सान थे। सवसे अधिक वे वहुत अच्छे दलित थे। उन्होंने अपने जीवन में दलितों की सही चिन्ता और उन का सही प्रतिनिधित्व किया। कहीं भी जाते समय उन्होंने अपने दलित मिशन को नहीं छोड़ा। धर्मान्तरण को ले कर भी उन की यही स्थिति थी। इसीलिए उन्होंने 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' नाम की किताव लिखी। इस में उन्होंने बौद्ध धर्म को दलितोन्मुखी वनाया है। लेकिन ऐसा करते समय वे कई कारणों से भ्रमित भी हुए हैं। जरूरत इस वात की है कि उन्हें वोधिसत्व के वजाय पुनः वावासाहेव वनाया जाए। पुनर्जन्म को ले कर वे निर्वाण के घुप्प अंधेरे में फँस गए हैं, वहाँ से निकाल कर उन्हें ना-पुनर्जन्म की रोशनी में दोवारा लाया जाए।

कार्ल मार्क्स का हेगेल से क्या सम्वन्ध है? मैं वावासाहेव के दर्शन को उल्टा नहीं कर रहा हूँ वल्कि कवीर की ओर ला रहा हूँ। यदि कवीर वावासाहेव के गुरु के रूप में न होते तो वे कहीं भी जा सकते थे। जव कवीर हैं तो वुद्ध के पास जाने की कोई जरूरत नहीं थी। फिर तो कवीर की राह पर सीधे मक्खलि गोसाल के पास जाते। वास्तव में, वुद्ध के पास हमारे वावासाहेव को सिखाने के लिए कुछ भी नहीं था। वे वुद्ध के धार्मिक टोने में आ गए हैं। वुद्ध का वुत उन की आंखों के सामने अच्छा नहीं लग रहा है। इस वुत पूजा के चक्कर में वे अपने असली काम को भूल भी गए हैं जव विवाह के विरोध की हामी भरने लगते हैं। इस मामले में उन्हें उन के सदगुरु कवीर के पास लाया जाए। हमारे इतने वड़े वावासाहेव वुद्ध की मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़े हमें अच्छी नहीं लग रहे हैं।

यह ठीक नहीं हुआ कि अछूतों और शूद्रों के इतिहास को ले कर डा. अम्बेडकर के सन्दर्भ-विन्दु ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म की चातुर्वर्ण-व्यवस्था के रहे हैं। वे अछूतों और शूद्रों का स्वतन्त्र अध्ययन नहीं कर सके। यह उन के अध्ययन की सीमा रही कि वे आजीवक धर्म के बारे में सीधे और विस्तारपूर्वक कुछ नहीं जान सके। आखिर, हिन्दुस्तान के मुसलमान अपने इतिहास को इस रूप में जानना कभी पसन्द नहीं करेंगे कि ब्राह्मण उन्हें म्लेच्छ कहते हैं। उन की अपनी कुरआन है और उन के अपने ख्वाजा, चिश्ती और औलिया हैं। ऐसे ही, आजीवकों का अपना धर्मग्रन्थ रहा है और उन के अपने रैदास, कबीर और मक्खलि गोसाल रहे हैं। तब वे खुद की पहचान किसी धर्म के अछूत या शूद्र के रूप में क्यों होने देंगे? अपनी स्वतन्त्रता के लिए दलितों को ब्राह्मणों द्वारा दी गई इस पहचान से हटना है।

सन्दर्भ

1. कबीर समग्र, प्रथम खण्ड, सम्पादक और लेखक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाच मोचन, वाराणसी-221010, द्वितीय संस्करण 1995, पृ.-580
2. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ. 260
3. वही, पृ.-260
4. वही, पृ.-260
5. वही, पृ.-260
6. वही, पृ.-263
7. वही, पृ.-265
8. वही, पृ.-265
9. कबीर समग्र, द्वितीय खण्ड, लेखक डॉ. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा. लि., सी-21/30, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010, प्रथम संस्करण 1997, पृ.-1336
10. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-401
11. "nāma-rūpa..... Mind and body, or the totality of physical and mental processes that constitute an individual. It occurs as the fourth link in the chain of Dependent Origination (* pratītyasamutpada), where it is preceded by consciousness (* vijñana) and followed by the six sense fields (* sad-āyatana). In this context nāma-rūpa stands for conception, the moment at which the mind and body of the new individual come into being." A Dictionary of Buddhism by Damien Keown, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX 2 6 DP, Ist Edition 2003, p.-186
12. "I have full faith in the rebirth. I can prove it to scientists that rebirth was logical. In my view, it is the elements that changed and not the man." Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, Volume 17, Part Three, Edited by Hari Narake, Dr. M.L. Kasare, N.G. Kamble and Ashok Godghate, Publisher, Dr. Babasaheb Ambedkar Source Material Publication Committee, Higher Education Department, Government of Maharashtra, Barrack No. 18, Opp. Mantralaya, Mumbai-400021, Ist Edition, October 2003, p.-514

13. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970, पृ.-268
14. वही, पृ.-202

अध्याय—12

'भूले को घर लावै'[1]

भारत में अनेक तरह के धार्मिक और दार्शनिक अन्धविश्वास जन्मे और फैले हैं लेकिन यहाँ का पुनर्जन्म में विश्वास अन्धविश्वासों का राजा है। निश्चित रूप से पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अन्धविश्वास-शिरोमणि का दर्जा दिया जा सकता है।

पुनर्जन्म होता है तो भी इस का पता किस को चलता है? बुद्ध हर किसी को वताते फिरते हैं कि तूने पूर्वजन्मों में इस-इस प्रकार जन्म लिया था। पर इस वताने से क्या लाभ या नुकसान होता है जव तक आदमी खुद न जाने कि उस का पूर्वजन्म हुआ था? जव तक मैं नहीं जानता कि मेरा पुनर्जन्म हुआ था, इस से मेरा लेना-देना क्या है? यदि अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान मुझे नहीं है, तो पूर्वजन्म हों तो हों, न हों तो न हों, दोनों वरावर हैं।

थेरीगाथा के अनुसार, हर व्यक्ति को अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान नहीं रहता। पूर्वजन्मों का ज्ञान होने के लिए दिव्यचक्षु होने चाहिए। संसार की करोड़ों स्त्रियों के पास दिव्यचक्षु नहीं हैं, इन थोड़ी ही 73 थेरियों के पास ही वे हैं। ऐसा क्यूँ है? पूर्वजन्मों और पुनर्जन्मों का भय लगे तो इन थेरियों को लगे, दूसरी स्त्रियों या दूसरे पुरुषों को क्यों लगे? जिन्हें ज्ञान ही नहीं है वे पुनर्जन्म के भय से डरें क्यों? डर तव लगे जव आदमी को अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान तो है लेकिन भावी पुनर्जन्म को मिटाने का रास्ता उस के पास नहीं है। जव विना दिव्य-चक्षुओं के पूर्वजन्मों का ज्ञान ही नहीं है तो पुनर्जन्म को मिटाने के रास्ते की कोई जरूरत अपने आप खत्म हो जाती है। इस प्रकार, पुनर्जन्म के अन्धविश्वास को वौद्ध दर्शन लोगों को फालतू और विना जरूरत वताता फिरता है। खुद ही समस्या खड़ी करता है, और खुद ही उस का समाधान देता है—जिन दोनों में से एक की भी जरूरत नहीं है। यह पूर्णतया खयाली और मनगढ़न्त सिद्धान्त है। इस की वताई समस्या और उस समस्या के वताए इस के उपाय—दोनों भभूत हैं, जादू-टोना हैं, मन वहलाव हैं। यह दर्शन शास्त्र न हो कर दर्शन शास्त्र का नाश है और ऐसे दर्शन शास्त्र पर आधारित धर्म धर्म न हो कर धर्म का खात्मा है। पुनर्जन्म के अन्धविश्वास में हर

दार्शनिक विकास पर रोक लग जाती है तथा धार्मिक और सामाजिक जद्दोजहद के लिए कोई जगह नहीं रह जाती।

वौद्ध धर्म और दर्शन लोगों को मृत्यु से नहीं वचा सकते। यह इतना सत्य है कि वे ऐसा सामने दीखने वाली मृत्यु के वारे में ऐसा दावा नहीं कर सकते। धम्मपद का 128वाँ पद मृत्यु से न वचाने की खुली और असहाय घोषणा करता है जो इस प्रकार है :

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जति सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितं न प्पसहेय्य मच्चू।।

—"न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के गह्वर में
— संसार में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ रहने वाला मृत्यु
से वच सके।"[2]

'धम्मपद' के 148वें पद में इसे पत्थर की लकीर मान लिया गया है कि 'मरणन्तं हि जीवितं'—अर्थात 'सभी जीवितों को मरना होता है।'[3] शायद. धम्मपदकार की कोशिश यह थी कि उसे न मरना पड़े। लेकिन प्रकृति के नियम के सामने मजबूर खड़े हैं। तव मृत्यु से न बच सके तो एक नया जुमला निकाल लिया कि पुनर्जन्म से बच जाएंगे। खयाली समस्या कि पुनर्जन्म होता है और उस का खयाली समाधान कि ऐसा-ऐसा करें तो उस से वचा जा सकता है। यह विलकुल एक समय की ईसाइयत में धर्मगुरुओं द्वारा स्वर्ग पहुँचाने के सर्टिफिकेट वेचने जैसा है। स्वर्ग भी झूठा और स्वर्ग के सर्टिफिकेट भी झूठे। ऐसे ही, भारत में वौद्ध, जैन और ब्राह्मणों के पुनर्जन्म भी झूठे और उन से छूटने के निर्वाण, कैवल्य और मोक्ष के उपाय भी झूठे। निर्वाण, कैवल्य और मोक्ष पुनर्जन्म की खयाली वला से छुड़ाने के सर्टिफिकेट ही हैं। यह सब टोना-टोटका है, झाड़-फूँक है और ओझागिरी का तन्त्र-मन्त्र है। खुद वीमार करते हैं, खुद इलाज करते हैं—सब कुछ खयाली और काल्पनिक है।

थेरीगाथा में पूर्वजन्म का ज्ञान और दिव्यचक्षु का होना साथ-साथ चलते हैं। पाली भाषा में प्रयुक्त ये शब्द क्रमशः 'पुब्बेनिवासं' और 'दिब्बचक्खुं' के हैं। जहाँ कहीं ये साथ-साथ नहीं आ सके, अनुमान कर लेना चाहिए कि ये साथ-साथ हैं। इस का मतलव है, विना दिव्यचक्षुओं को प्राप्त किए पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इस का मतलब यह हुआ कि हर किसी को अपने या दूसरों के पूर्वजन्मों का ज्ञान नहीं हो सकता। कुछ ही निर्वाण प्राप्त किए लोग इस ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

अव थेरीगाथा की सारी स्त्रियाँ मर चुकी हैं। उन में से कोई जीवित नहीं है। वे जो गाथा गा गईं सो गा गईं। उन्होंने कह दिया कि उन्हें अपने-अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान हो गया था। पर, अव अपने समय की वात ली जा सकती है। भारत में और विदेशों में वहुत सारे भिक्षु और भिक्षुणियाँ मौजूद हैं। क्या उन में से किसी एक को भी थेरीगाथा की थेरियों के समान अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त है? मैं अपने बाबा साहेब डा. अम्बेडकर के बजाय खुद बोधिसत्व डा. अम्बेडकर से पूछना चाहूँगा कि क्या उन्हें अपने

पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। लेकिन वे भी अब परिनिर्वाण प्राप्त हैं और उन की किसी लिखत में इस बात के प्रमाण मौजूद नहीं हैं कि उन्हें अपने किन्हीं पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। सब से अन्त में मैं अपने मित्र डा. विमल कीर्ति से ही पूछना चाहूँगा कि उन्होंने हिन्दी में थेरीगाथा का अनुवाद और सम्पादन किया है–क्या उन्हें अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त हो गया है? यदि नहीं, जो मेरे मत में एकदम सच है, तो वे थेरीगाथा की इन गाथाओं से बिना अपनी असहमति प्रकट करते हुए इस का अनुवाद क्यों कर गए हैं? झूठ को बढ़ावा क्यों दिया जा रहा है? दलित चिन्तक इस झूठ पर रोक क्यों नहीं लगाते? फिर, बात इतनी ही नहीं है कि उन के पास दिव्यचक्षु नहीं हैं और इसीलिए उन्हें अपने या दूसरों के पूर्वजन्मों का ज्ञान नहीं है बल्कि दलित चिन्तक के नाते कहना यह चाहिए कि पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का सिद्धान्त झूठा है। चुप ही नहीं रह जाना चाहिए बल्कि दर्शनशास्त्र के इस क्षेत्र में दलित चिन्तक को इस मिथ्या अन्धविश्वास से जम कर लड़ना चाहिए।

थेरीगाथा अपने निम्न शब्दों के साथ संसार के लोगों को डराती है :

न च सन्तसन्ति बाला, पुनप्पुनं जायितब्बस्स।। 457।।

—"फिर भी मूर्ख लोग पुनर्जन्म में भय को नहीं देखते।"[4]

अब चाहे बुद्ध का यह दर्शन और थेरीगाथा की यह सुमेधा नाम की थेरी मुझे मूर्ख कहे या कुछ कहे, लेकिन मेरा पुनर्जन्म में और इसीलिए उस के भय से कोई नाता नहीं है।

केरल के कवि वल्लतोल की एक कविता-पुस्तक का नाम 'कोच्चु सीता' है। डा. के. एस. मणि ने अपने शोध-प्रबंध में लिखा है—"चेम्पक वल्ली देवदासी कुल में जन्मी है।....चेम्पक वल्ली की नानी जो अपनी कुलवृत्ति अटल रखने की अभिलाषिणी थी, एक दिन एक बूढ़े धनी को उस के शयनागार में भेजती है। बूढ़ा चेम्पक वल्ली के बदले साड़ी में ढका एक तकिया पाता है, साथ ही नानी के नाम एक पत्र भी। पत्र में चेम्पक वल्ली ने अपनी करनी के लिए क्षमा प्रार्थना करते हुए अगले जन्म में स्वतंत्र भारतांगनाओं के बीच में जन्म होने की इच्छा भी प्रकट की थी।"[5] यह एक आधुनिक कवि की सृजना है और उस में देवदासी प्रथा को बुरी माना गया है। लेकिन समाधान में उस के पास ऐसा कुछ नहीं है जिस से देवदासी प्रथा को मिटाया जा सके। देवदासी ने केवल यह प्रार्थना की है कि अगले जन्म में देवदासी के घर में जन्म न हो। लेकिन यह प्रार्थना केवल एक व्यक्ति की है, समाज के बनाए गए खाँचे ज्यों के त्यों बचे रह गए हैं। देवदासी प्रथा जारी रहेगी लेकिन उस कुल में यह स्त्री पैदा नहीं होना चाहती। यह कृष्ण के–'चातुर्वण्यं मया सृष्टम् गुणकर्म विभागशः'– के ढाँचे को तोड़ नहीं सकी है। यह व्यवस्था में बदलाव लाने की सोच नहीं है कि पहले देवदासी प्रथा को ही ढहाया जाएगा। जब समाज बदल कर देवदासी प्रथा समाप्त कर दी जाएगी तब एक चेम्पक वल्ली की क्या बात, कोई भी देवदासी कुल में नहीं जन्मेगी। लेकिन थेरीगाथाओं की वेश्याओं ने

किस प्रकार मुक्ति प्राप्त की है? उन की मुक्ति यह है कि भिक्षुणी बनने की वजह से उस खास स्त्री का अब पुनर्जन्म नहीं होगा। इसलिए, समाधान चाहे बुद्ध के उपदेशों में थेरियों का हो या मलयालम के कवि ने 'कोच्चु सीता' में दिया हो, दोनों ही अपूर्ण और अपर्याप्त तथा झूठे और अन्धविश्वास भरे हैं। बुद्ध की थेरियाँ भी वेश्यावृत्ति को समाप्त नहीं कर रही हैं बल्कि उन का पुनर्जन्म नहीं होगा, बस यही बचाव है। परिणाम यह निकलता है कि न बुद्ध वेश्यावृत्ति को समाप्त करने का बीड़ा उठाते हैं और न इस आधुनिक कवि ने देवदासी प्रथा को समाप्त करने का कोई उद्यम किया है। बस, समस्या ज्यों की त्यों रह जाती है। तब पुनर्जन्म से मुक्ति या अगले जन्म में देवदासी के घर में जन्म न लेने की कामना—केवल बात की बात बन कर रह जाती है। इस जन्म में थेरियों की संन्यासिनियों के रूप में 'सामाजिक मृत्यु' और चेम्पक वल्ली की भौतिक मृत्यु—दोनों का अर्थ यही है कि स्त्री के अपमान की वर्तमान व्यवस्था अनछेड़ बनी खड़ी रहेगी।

पुनर्जन्म में अन्धविश्वास का सब से बड़ा नुकसान यह होता है कि राज्य और कानून के लौकिक दण्ड को बेदखल और निष्प्रभावी कर दिया जाता है। जब अगली योनि के रूप में दण्ड मिलना है तो राज्य द्वारा दिए जाने वाले दण्ड की आवश्यकता को नकार दिया जाता है। परस्त्रीगमन को अपराध स्वीकार करके भी उसे रोकने के लिए लौकिक दण्ड की व्यवस्था नहीं की जाती। इसिदासी की गाथाओं में चार बार 'परदारं' को अपराध माना गया है लेकिन जो दण्ड वह भुगतती है वह योनियों के रूप में है, सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्थाओं के रूप में नहीं। यूँ, अपराधी एकदम बच जाता है। राज्य, कानून और दण्ड की उत्पत्ति एक व्यवस्था के तहत होती है जो गरीब और निर्बल के पक्ष में जाती है। बलवान के खिलाफ निर्बल व्यक्ति अपराध करता है तो उसे वह स्वयं दण्ड देने की क्षमता में होता है। यही अमीर और गरीब तथा मालिक और नौकर के बीच में सम्बन्ध ठहरता है। लेकिन जब निर्बल के खिलाफ बलवान, गरीब के खिलाफ अमीर और दास के खिलाफ स्वामी अपराध करता है तो उन अपराधों में दण्ड कैसे मिले? तब राज्य और कानून न्याय की समानता की तराजू ले कर सामने आते हैं। तभी अपाहिजों के घर खुशहाल रह सकते हैं, तभी गरीबों को दो रोटी की गुजर हो सकती है और तभी नौकरों की बहू-बेटियों की इज्जत सुरक्षित बच सकती है। लेकिन पुनर्जन्म में एक तरफ संसार में दबंगों का दबदबा बना रहता है और दूसरी तरफ कमजोरों को न्याय मिलने की उम्मीद समाप्त हो जाती है। सब कुछ पुनर्जन्म में दण्ड के रूप में मिलने वाली योनियों के सुपुर्द हो जाता है। इसलिए, यह पुनर्जन्म एक बहुत ही खतरनाक सिद्धान्त है।

असल में, पुनर्जन्म के जिस सिद्धान्त के मामले में दार्शनिक क्षेत्र में लड़ने और कामयाब होने के लिए स्पष्टता चाहिए उस में डा. अम्बेडकर अपने बच्चों को उलझा कर गए हैं। देवलोक अपनी भावी सन्तानों को शक्ति देने के बजाय इस मामले में उन्हें कमजोर कर रहे हैं। या यूँ कहें, कि काजल की कोठरी में कितना भी बच लो, कालिख

लग ही जाती है। बौद्धों के धर्मग्रन्थों को ले कर डा. अम्बेडकर के साथ यही हुआ है। वे कहाँ तक इन्द्र और देवलोक से बचेंगे, पुनर्जन्म के अन्धविश्वास में बुरी तरह फँस कर रह गए हैं? उन के अनुयायी डा. विमल कीर्ति किसे-किसे मिथक कहेंगे, सब से बड़े मिथक 'पुनर्जन्म' ने उन की पीछे से कोली भर रखी है?

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर ने सन् 1928 में 'दलित जातियों के हितों की रक्षा' के शीर्षक के अन्तर्गत पुनर्जन्म के बारे में एक बात बहुत ही सच्ची और महत्वपूर्ण कही है। 18वें पैरे से उन्हें उद्धृत करना उचित रहेगा जो इस प्रकार है—"सच्ची नागरिकता के लिए धर्म पर आधारित यह राजनीति कितनी विनाशकारी हो सकती है, इस का उल्लेख माननीय सर एलेक्जेण्डर काड्र्यू के. सी. एस., आई. आई., सी. एस. ने 31 दिसम्बर 1918 के पत्र संख्या 1146 (सुधार के नोट) में किया है। इस नोट का उद्धरण नीचे दिया जाता है।

2. "सब से पहले यह पूछा जाना चाहिए कि लोकतान्त्रिक विचार भारत के लोगों के वर्तमान चिन्तन धारा के अनुसार हैं। आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्य का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि हमें प्रत्येक व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करना होगा और यह विश्वास रखना होगा कि चूंकि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन एक बार मिलता है, इसलिए उसे उसी जीवन में अपना सर्वोत्तम विकास करने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। ये सिद्धान्त भारत की वर्तमान चिन्तनधारा में स्वीकार नहीं किए जा रहे हैं। आज की सोच यह है कि वर्तमान जीवन पिछले अनेक जीवनों की कड़ी है। इस जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति उस के पिछले जन्मों के अच्छे और बुरे कर्मों का ही फल है। इसलिए सामाजिक जीवन में उस का स्थान निश्चित है, जिसे बदला नहीं जा सकता। अतः यह बात स्वीकार करनी होगी कि लोकतन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त उन विचारों के प्रतिकूल हैं, जिन पर भारत में लगे हजारों वर्षों से विश्वास करते आए हैं।

3. "इस सिद्धान्त से कि वर्तमान जन्म में प्रत्येक व्यक्ति का स्थान उस के पिछले जन्मों के कर्मों का फल है, मिलती जुलती बात वर्ण व्यवस्था है, जिस में प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक स्थिति अपरिवर्तनीय है। इस प्रकार ब्राह्मण के घर पर जन्मा व्यक्ति ब्राह्मण के अलावा दूसरा नहीं हो सकता और पेरियार (दक्षिण का अछूत) के घर जन्मा व्यक्ति कभी भी पेरियार के अलावा दूसरा नहीं हो सकता। इन परिस्थितियों में अवसर की समानता असम्भव है और भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह अवांछनीय नहीं है।"[6]

बस, हमें कुछ नहीं चाहिए, हमें सन् 1928 वाले अपने ये ही बाबा साहेब डा.

अम्बेडकर वापिस चाहिए। हमें 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' वाले वोधिसत्व अम्बेडकर नहीं चाहिए जो बुद्ध के पिछले दस जन्मों की कहानी बताने बैठ गए हैं। हमें सन् 1928 वाले बाबा साहेब डा. अम्बेडकर चाहिए जब पुनर्जन्म के विरोध में उन के विचार स्पष्ट, पक्के और असंदिग्ध थे। मैं उन्हीं बाबा साहेब अम्बेडकर के सामने नमन करता हूँ, किसी वोधिसत्व अम्बेडकर के सामने नहीं।

यही कबीर के दर्शन को स्वीकार कर कबीर के पास वापिस लौटना है। डा. अम्बेडकर ने अपने पिता के बारे में लिखा है—"वे कबीरपंथी थे। वे मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते थे। वे अपने 'पंथ' की पुस्तकें पढ़ते थे।"[7] ऐसे में यह अच्छा नहीं लगता कि अब डा. अम्बेडकर बुद्ध की मूर्तियों की दुनिया में खोज करते फिरें और उन्हें पूजें। हाँ, अब इस बात पर खोज और बहस हो रही है कि वे दो बुद्ध मूर्तियाँ कहाँ-कहाँ रखी गई हैं जो डा. अम्बेडकर रंगून से लाए थे। उन की पत्नी सविता अम्बेडकर ने कहा है—"उन दो मूर्तियों में से जो हम रंगून से लाए थे, एक हमारे बंगले में काँच के फ्रेम में रखी गई थी। हम (डा. अम्बेडकर और सविता अम्बेडकर) बुद्ध की इस मूर्ति के सामने अपनी नियमित प्रार्थना किया करते थे।"[8]

और हाँ, कमा कर खाने की बात छूटी ही जा रही है। आजीवक धर्म की दृष्टि से वह सब से महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि इस धर्म का नाम ही 'आजीवक' है। रोहिनी की गाथा से इस पर प्रकाश पड़ता है।

रोहिनी का जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ था। वह श्रमणों की बहुत प्रशंसा किया करती थी। एक दिन उस से उस के पिता पूछते हैं :

अकम्मकामा अलसा, परदत्तूपजीविनो।
आसंसुका सादुकामा, केन ते समणा पिया।। 273।।

—"देख, ये भिक्खु कर्म (श्रम) नहीं करते, आलसी हैं। दूसरों के दिये अन्न पर जीने वाले हैं। दूसरों की आस करने वाले हैं। स्वादिष्ट भोजन के लालची हैं। फिर भी ये श्रमण तुझे क्यों प्रिय हैं?"[9]

रोहिनी ने अपने पिता को इस प्रश्न का उत्तर दिया जरूर है लेकिन वह उत्तर कोई उत्तर नहीं है। वह कहती है—"वे बहुत कर्म करने वाले हैं, अप्रमादी हैं, श्रेष्ठ कर्म को करने वाले हैं, अपने राग-द्वेष को दूर हटाते हैं। इसलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं।"[10] यहाँ झूठ ही बहकाया जा रहा है कि वे कर्म करने वाले (कम्मकामा)[11] हैं, बिना आलस्य (अनलसा)[12] के हैं और श्रेष्ठ कर्म (कम्म सेट्ठस्स)[13] करने वाले हैं। जदाब आजीवक ध र्म के रैदास और कबीर हैं, कोई बौद्ध श्रमण नहीं। रोहिनी ने श्रमणों को 'धम्म जीवी' कहा है जो इस प्रकार है :

बहुस्सुता धम्मधरा, अरिया धम्मजीविनो।
अत्थं धम्मञ्च देसेन्ति, तेन मे समणा पिया।। 279।।

—"वे बहुश्रुत हैं, धर्म को जानने वाले हैं, आर्य हैं। धर्माभ्यास ही उन की उपजीविका है। वे धर्म और परमार्थ का उपदेश करते हैं। इसलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं।"[14]

भला, जब बात श्रमजीवी होने की चल रही हो, उस समय यह धम्मजीवी होना क्या है—और क्या उस की अलग से बिसात है?

'धम्मजीवी' शब्द का इस्तेमाल धम्मपद में भी हुआ है। उस के उद्धरण इस प्रकार हैं :

1. उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकमस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति।। 24।।

—"उद्योगी, जागरूक, पवित्र-कर्म करने वाले, सोच समझ कर काम करने वाले, संयमी, धर्मानुसार जीविका चलाने वाले, अप्रमादी मनुष्य के यश की वृद्धि होती है।"[15]

2. यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
परिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्ञाय फुल्लति।। 164।।

—"भ्रान्त-सिद्धान्त का अनुयायी होने के कारण जो दुर्बुद्धि धर्मजीवी आर्य अर्हतों के शासन की निन्दा करता है, वह बाँस के फल की भाँति आत्म-हत्या के ही लिए फलता है।"[16]

यदि 'धम्मपद' में 'धम्मजीवी' से हटा गया है तो शब्द 'सुद्धाजीवी' पर उतर गए हैं। प्रयोग इस प्रकार हैं :

1. हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना।
अलीलेन'प्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता।। 245।।

—"लेकिन (पाप के प्रति) लज्जाशील, नित्य ही पवित्रता का विचार करते हुये, आलस्य-रहित, उच्छृङ्खलता-रहित, शुद्ध-आजीविका के साथ विचारवान् बन कर जीवन व्यतीत करना कठिन है।"[17]

2. अप्पलाभोपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं।। 366।।

—"चाहे लाभ थोड़ा ही हो, यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता, तो उस शुद्ध-आजीविका वाले आलस्य रहित भिक्षु की देवता प्रशंसा करते हैं।"[18]

3. तत्रायमादि भवति इधपञ्ञास्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि पातिमोक्खे च संवरो।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते।। 375।।

—"बुद्धिमान भिक्षु को पहले यह करना होता है—इन्द्रिय-संयम, सन्तोष और भिक्षु नियमों का पालन। (उसे चाहिये कि) वह शुद्ध आजीविका वाले, आलस्य-रहित कल्याण-मित्रों की संगति करे।"[19]

डा. धर्मकीर्ति ने बड़े अभिमान से लिखा है —"...उन्हों (तथागत बुद्ध) ने शूद्रों-चाण्डाल आदि के लिए समानता की कोरी बात ही नहीं की, बल्कि उन्होंने शूद्रों और चाण्डालों को भिक्खु संघ में प्रव्रज्या दे कर समानता का महानतम उदाहरण प्रस्तुत किया।"[20] लेकिन यदि यह उन का महानतम उदाहरण था तो एक छोटा उदाहरण भी पेश कर देते कि भिक्खु संघ से बाहर के मूल समाज में इस बराबरी को ला कर दिखा देते। हमारे मक्खलि गोसाल से ले कर रैदास और कबीर तक तो सारे आजीवक इसी समानता के लिए लड़ रहे हैं। भिक्षु संघ की मूल समाज से बाहर की फर्जी समानता से आजीवकों का कुछ नहीं सधता। जो होना है, इस समाज में घटित होना है। यह उत्तर कतई सन्तोषजनक नहीं है कि और क्या चाहिए, भिक्षु संघ में समानता दे दी गई है। यह असली मुद्दे को एक तरफ हटाना है। इस के लिए ब्राह्मण कथनी और करनी का अन्तर करते हैं तो बौद्धों ने मूल मुद्दे को रलाने का यह सुभीता निकाल लिया कि भिक्षु संघ में समानता दे दी गई है—और इस से ज्यादा की मांग न की जाए। भिक्षु बनो और समान हो जाओ—पर भिक्षु बनने से पहले की समानता के लिए केवल आजीवक लड़ रहे हैं।

भारत के तथाकथित धर्मों ने जीवन के सच्चे मुद्दों से हट कर बहसें की हैं। उन्होंने उन बातों के लिए तर्क घड़े हैं जिन का मनुष्य से सीधा सम्बन्ध नहीं है। बुद्ध ने एक वाक्य 'अप्पो दीपो भव' का कह दिया तो उसी के गुणगान किए जाने लगे। किसी ने यह ध्यान नहीं दिया कि 'अपने दीपक आप बनो' में आजीवकों का मूल नारा भुला दिया गया है। आजीवकों का मूल नारा है—'अपने आप कमा कर खाओ।' 'आजीवक' शब्द का अर्थ ही यह है कि 'अपने आप कमा कर खाओ।' आजीवकों के इस मूल नारे को भुलाने के लिए ब्राह्मणों, बौद्धों और जैनियों ने अपने नए-नए नारे ईजाद कर रखे हैं। ब्राह्मणों ने 'आत्मानाम् विद्धि' अर्थात 'अपने आपको जानो'—का नारा खड़ा कर लिया। सही बात यह है कि इन में से कोई भी कमाने-खाने के नारे पर नहीं आया है।

इन तथाकथित भारतीय धर्मों ने ऐसी ही एक और बहस शाकाहारी और मांसाहारी की चला रखी है। बड़े तर्क दिए जाते हैं, सिद्धान्तों के किले जीते जाते हैं, लेकिन इन में से इस बात पर कोई नहीं आया कि मांसाहारी हो या शाकाहारी हो—इन में से कोई से भी आहारी होने का हक तब बनता है जब मनुष्य अपने आहार को कमाता हो। न बाड़े में पशुओं को पालते हैं और न खेतों में शाक उगाते हैं—और मुफ्त में शाकाहारी या मांसाहारी बनते हैं। इन का शाकाहार भी मुफ्त का है और इन का मांसाहार भी मुफ्त का है। आजीवक शाकाहार करे या मांसाहार करे—वह उस के लिए

मेहनत-मशक्कत से कमाता है। जब आदमी कमाए तभी उस की इस मर्जी का कोई अर्थ होना चाहिए कि वह क्या खाना चाहता है। तथाकथित धर्मी वने लोग विना कुछ कमाए-धमाए विकल्प रखना चाहते हैं कि वे शाकाहार करें या मांसाहार करें। निठल्लों और भिखमंगों के सामने से दोनों प्रकार के भोजन हटा लिए जाएँ और तव वे शाकाहार और मांसाहार पर बहस करें तो अच्छा लगेगा।

शराव पर फर्जी वहस हो रही है मानो बड़ी मेहनत से अंगूरों या गुड़ से खींची हो। बुराई यह है कि इसे मांग कर मुफ्त में या किसी से छीन कर पिया जाए। न कमा कर पीने वाली शराव में सारे दुर्गुण हैं। ऐसी बुराई की वजह से मनुष्य को मरने से कौन वचा लेगा? ऐसे परिवार और समाज रसातल में पहुँचेंगे ही। न कमाने वाले के लिए मात्र शराब की ही मनाही नहीं होनी चाहिए, वल्कि उस टैम की उस की रोटी भी मक्कूप कर देनी चाहिए। यदि समाज में स्वस्थ दृष्टिकोण व्याप्त है और सभी स्त्री-पुरुष कमा कर खाने वाले हैं तो शराव इतनी वड़ी चीज कैसे हो जाएगी कि पीने पर उन का नुकसान कर दे? शराब के सारे नुकसान न कमाने के ऐव वाले लोगों के हैं या न कमाने वाले लोगों से सताए हुओं के। न कमाने वाले लोगों की वजह से यह दोनों तरफ नुकसान करती है। तव यह हाजमा ठीक करने के लिए दो घूँट के रूप में नहीं पी जाती।

थेरीगाथा को पढ़ कर वावा साहेव डा. अम्वेडकर के द्वारा बुद्‌ध के वारे में किया गया यह अन्दाज भी सही नहीं है कि बुद्ध के समय में कानूनी व्यवस्था सही रही होगी जिस वजह से उन्होंने उस में दखल करनी उचित नहीं समझी होगी। बुद्‌ध स्त्रियों से उन के घर इसलिए भी छुड़वा रहे हैं क्योंकि वहाँ उन की जान पर उन की सौतें वैठी हुई हैं। आखिर, अव हिन्दू कोड विल के द्वारा डा. अम्वेडकर ने हिन्दू स्त्री की छाती पर चढ़ी सौत की व्यवस्था खत्म करवाई है, तो बुद्‌ध सौत को बुराई मान कर भी उस से क्यों नहीं लड़े?

वौद्ध, जैन और ब्राह्मण धर्मों और दर्शनों में शहादत के लिए कोई स्थान नहीं है। निर्वाण, कैवल्य और मोक्ष शहादत से डरे-डरे फिरते हैं। ये तीनों मृत्यु से डरते हैं। किसी सामाजिक या देश हित के लिए प्राण देना इन के चिन्तन में नहीं है। पर ये दर्शन भिक्षु या संन्यास जीवन पर क्यों आते हैं? बौद्धों ने जन्म को मृत्यु का कारण माना है पर क्या जन्म और मृत्यु को छोड़ कर उन्हें दूसरे पारिवारिक या सामाजिक दुख नहीं व्यापे हैं? थेरीगाथा की कई थेरियों की कहानियों से पता चलता है कि वे लौकिक दुखों से दुखी हो कर आत्महत्या के चिन्तन पर जा रही थीं। उन्हें आत्महत्या से वचा कर भिक्षुणी बनाया गया है। पर क्या वे आत्महत्या से सचमुच बच सकीं? उन की क्या, उन के गुरु और शास्ता के वारे में पूछा जाए कि क्या वे आत्महत्या से बच सके। एक बुद्ध से क्या, यह प्रश्न उन सारे लोगों से पूछा जाए जिन्होंने बौद्ध, जैन या ब्राह्मण धर्मों के अन्तर्गत भिक्षु, श्रमण या संन्यासी वेश का वरण किया है। आजीवक की दृष्टि से घर और समाज छोड़ने वाले इन सारे लोगों ने आत्महत्या की है क्योंकि संन्यास को परिभाषातः

'सामाजिक मृत्यु' कहा गया है। आत्महत्या में देह की भी हत्या होती है जबकि संन्यास में देह बची रहती बाकी मनुष्य के सब कुछ की हत्या होती है। कम से कम, संन्यास को आधी आत्महत्या तो कहा ही जा सकता है। इसलिए, संन्यास के रूप में बौद्ध धर्म, जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म शहादत के विरोध में आधी आत्महत्या जरूर करते हैं।

जो समाज संन्यास की इजाजत देता है वह तलाक की इजाजत क्यों नहीं देता? यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह संन्यास और तलाक में से किस एक का वरण कर सके। बुद्ध ने ब्राह्मणी विधवा को भिक्षुणी बना दिया पर क्या वे उस का पुनर्विवाह करवाने की ताकत रखते थे?

यहाँ बताया जा सकता है कि वीरेन गोहिल की एक किताब का नाम 'नाम चाहिए एक बाप का' है। यह वेश्याओं के बच्चों पर आधारित है। इस की एक पात्रा अजीजा समस्या के समाधान के लिए कहती है—"असल में बात क्या है कि हमारे बीच अभी तक कोई डॉ. भीमराव अम्बेडकर पैदा नहीं हुआ जो अछूतों-दलितों का उद्धार कर सके और उन की रहनुमाई कर सके।"[21] लेकिन इन बच्चों के बुद्ध के बारे में क्या विचार हैं? उन में से एक कहता है—"भगवान बुद्ध का यह उपेदश मुझे पसन्द नहीं है—जो जा चुका, उस का शोक कैसा?" मृत्यु तो मुक्ति है, फिर उस का शोक कैसा? क्रान्ति के लिए उस क्रान्तिदूत के ये वाक्य अवरोध हैं।"[22]

यह अच्छा है कि देश को कानून में आत्महत्या पर पाबन्दी लगी हुई है। आत्महत्या के प्रयास पर कानूनन सजा है। आत्महत्या के लिए प्रेरित करने पर या उकसाने की भी मनाही है। इसी हिसाब से संन्यास धारण करने पर भी पाबन्दी लगनी चाहिए। इस 'सामाजिक मृत्यु' को, जो मनुष्य की आधी मृत्यु है, कानून के तहत अपराध मान कर दण्डनीय घोषित किया जाना चाहिए। यह आजीवक धर्म और समाज में अनुमत नहीं है। व्यक्तियों को संन्यास धारण करने से बचाना चाहिए। सब को कमा कर खाना चाहिए और कोई भी स्त्री या पुरुष भीख मांगने पर न उतरे। वह समाज में रहे और परिवार में रहे तथा राष्ट्र और मनुष्य की सेवा करे। सुबह-शाम भगवान का नाम ले और उसे धन्यवाद दे। समाज और परिवार के विकास में जो गड़बड़ियाँ सामने आती रहें, उन्हें दूर करता रहे। राष्ट्र और राज्य जिस तरह से शक्तिशाली और मानवीय बन सकें, वैसी कोशिशें करता रहे। धरती अपने खेतों, पहाड़ों और वनों में फूलों और सुगन्धों से दुल्हन की तरह सजी खड़ी है। आकाश चांद और तारों से चमक-दमक कर मनुष्य के लिए अनन्त के अन्तरिक्ष में जाने की यात्रा खोलता और आकर्षित करता है। बुराई के खिलाफ लड़ते हुए शमशान और मृत्यु को भी शहादत के रूप में प्राण-न्यौछावर करने के उत्सव में लिया जाए। संघर्ष को दुख न कहा जाए बल्कि उस में रसिकों और प्रेमियों के आनन्द को ढूंढा जाए। धरती और आकाश का राज निठल्लों और जारों की कमजोरियों के लिए न छोड़ा जाए। दिल और दिमाग को कामुकता के अन्धेरों से निकाल कर प्रेम और विवाह के प्रकाश में लाया जाए। बच्चों के बिना मनुष्य कुछ नहीं है, जन्म को दुख

कह कर उन की पैदायश को न रोका जाए। युग की आर्थिक विपन्नता के दौर से निकला जाए और जीने के नए विकल्प और साधन खोजे जाएँ।

राष्ट्र का निर्माण और राज्य की स्थापना प्रवचनों और उपदेशों के विषय नहीं हैं। समाज में समानता और परिवार में स्वतन्त्रता कानून बना कर बनती और मिलती हैं। इन के लिए मनुष्य को भिक्षु और संन्यासी बन कर विहारों और मठों में बैठने की जरूरत नहीं है। भीख मांगना छोड़ कर मनुष्य वापिस घर में लौटे और आजीवक धर्म का पालन करे—यही मक्खलि गोसाल और रैदास तथा कबीर की पुकार है। सारे मैल भीतर मन में रख कर ब्राह्मण गंगा स्नान से पवित्र होना चाह रहा है, तो बौद्ध भिक्षु घर-बार छोड़ कर विहार में निर्वाण प्राप्त करना चाहता है। इन दोनों में से कोई-सा रास्ता भी मनुष्य के लिए सही नहीं है। जन्म नियति है और मरण नियम है—फिर यही मान कर जीवन को सुखी बनाया जाए। संसार में आजीवकों का यह मानववाद लागू किया जाए कि वे खराब व्यवस्थाओं और बुरे कानूनों को बदलें। जन्म को दुख न कहें और मरण को परमात्मा का नियम माने।

बताया जाए कि डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' की भूमिका के अन्तिम पैरे में एक बात बहुत महत्वपूर्ण कही है। इस में उन्होंने अपने पाठकों से चाहा है कि वे मूक और सुस्त न रहें और अपनी प्रतिक्रियाएँ जरूर दें और केवल तभी चिन्तन का विकास होता है। उन्होंने अपने विचारों के बारे में लिखा है कि वे उन के 'पाठकों को आगे आने और अपने समाधान देने के लिए उद्वेलित करेंगे।'[23] पाठक देखेंगे कि उन के उठाए हुए प्रश्नों ने इस पुस्तक में पूरा स्थान पाया है। जो समाधान निकले हैं, वे इस प्रकार संक्षिप्त और समेकित किए जा सकते हैं :

1. बुद्ध के प्रवचनों से हम से हमारा परमात्मा छिन जाता है और पुनर्जन्म का अन्धविश्वास हमारे मत्थे मढ़ दिया जाता है।
2. बुद्ध के प्रवचन विवाह और गृहस्थ के विरोध में जाते हैं। वे घर छोड़ने की सलाह देते हैं। इस से हमारे कबीर की 'दुलहनि गावहु मंगलचार'[24] के विवाह के गीत गाने की सारी खुशियाँ नष्ट हो जाती हैं।
3. हमें 'भूले को घर लावै'[25] का गीत गाते हुए बौद्ध धर्म के बजाय अपने आजीवक धर्म पर लौटना चाहिए।
4. विद्वानों को आजीवक धर्म की ज्यादा से ज्यादा खोज में लग जाना चाहिए।

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' बड़े लम्बे समय तक और बड़ी मेहनत से लिखी थी। पुस्तक लिखने से पहले उन के पास एक कसौटी थी। यह कसौटी आजीवक धर्म की थी। वे भारत के धर्मों की अपनी ऐतिहासिक खोज में आजीवक धर्म की खोज नहीं कर सके लेकिन इस का मतलब यह नहीं है कि

वे आजीवक नहीं रहे। वे कबीर को अपने गुरु के रूप में छोड़ और भूल नहीं सके थे लेकिन उन्होंने कबीर का विशेष अध्ययन भी नहीं किया था। आजीवक की एक परिभाषा यह दी जा सकती है कि आजीवक वह व्यक्ति भी हो सकता है जिसे यह नहीं मालूम कि वह आजीवक है। इस परिभाषा की ओर ले जाने वाली अँग्रेजी में लिखी ए. एल. बाशम की पुस्तक 'हिस्ट्री एण्ड डोक्ट्रिन्स ऑफ द आजीविकास : ए वैनिश्ड इन्डियन रिलिजन'[26] है। डा. बाशम को आजीवक धर्म के बारे में पक्की जानकारी नहीं है लेकिन उन्होंने इसे ले कर शुरूआती काम जरूर किया है। वेबसाइट पर 'आजीवक पेज' शीर्षक से एक ब्रीफ निकला है। इस पेज के लेखक भी आजीवक धर्म के बारे में ज्यादा और सही बातें नहीं जानते लेकिन उन्होंने इस पेज की पहली पंक्ति इस नारे के रूप में लिखी है—"यदि आप हमारे विश्वासों को मानते हैं तो आप पहले से ही आजीवक हुए हो सकते हैं!"[27]

यहाँ केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि बाबा साहेब डा. अम्बेडकर कबीरपंथी पिता के घर में जन्म लेने के कारण मूलतः आजीवक थे। अपने इसी आजीवक होने की कसौटी पर, इतिहास में आजीवक धर्म की खोज न कर पाने पर, वे बौद्‌ध धर्म के पास चले गए। लेकिन बौद्ध धर्म में जाने पर भी उन्होंने अपनी आजीवक कसौटी नहीं छोड़ी। परिणाम यह निकला कि वे बौद्‌धों की दृष्टि में बौद्ध नहीं बन सके। बौद्‌धों द्वारा उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे बौद्ध नहीं थे। लेकिन शंकर की तरह उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने बौद्ध धर्म के साथ कोई छल नहीं किया है। जब उन्हें किसी जगह त्रिपिटक अच्छा नहीं लगा तो उन्होंने वह बात साफ-साफ बताई है।

एडले फिस्के और क्रिस्टोफ एमरिच ने अंग्रेजी में लिखे अपने संयुक्त लेख 'द यूज आफ बुद्धिस्ट स्क्रिपचर्स इन बी. आर. अम्बेडकर'स *द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा*' में यह बताया है कि डा. अम्बेडकर ने बौद्ध ग्रन्थों के पाठों के साथ कैसा बर्ताव किया है। उन्होंने इसे तीन वर्गीकरणों में रक्खा है :

"1. पाठों का लोप
    (i) संक्षिप्तता के लिए
    (ii) सरलता के लिए
    (iii) चमत्कारों को निकालने के लिए
    (iv) सिद्धान्तों के परिष्कार के लिए
2. जोर देने पर बदलाव
3. अर्थ में बदलाव।"[28]

यह ठीक है कि डा. अम्बेडकर ने ऐसा किया है। लेकिन उन की मन्शा अपने दलित समाज के भले की थी। किसी भी धर्म को अपनाने में वे अपने इस लक्ष्य को छोड़ नहीं सकते थे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही उन्होंने बौद्‌ध धर्म और बौद्‌ध दर्शन पर

प्रश्न उठा कर उन में परिवर्तन किए। इस में वे जितने और जहाँ त्रिपिटक से चिपटे रहे उतने और वहाँ नुकसान उठाते रहे और जहाँ त्रिपिटक से मुक्त हो गए, अपने आजीवक दृष्टि की प्रतिष्ठा कर गए हैं।

खैर, जाना यह जाए कि वौद्धों ने डा. अम्वेडकर की इस पुस्तक 'द वुद्धा एण्ड हिज धम्मा' को किस रूप में लिया है। क्रिस्टोफर एस. क्वीन के अंग्रेजी में लिखे लेख 'अम्वेडकर'स धम्मा : सोर्स एण्ड मेथड इन द कन्स्ट्रक्शन आफ एन्गेज्ड वुद्धिज्म' से इस वारे में सूचना मिलती है। सन् 1959 में 'द महावोधि' पत्रिका में इस की एक समीक्षा प्रकाशित हुई थी। उसे जीवक नाम के एक अंग्रेज भिक्षु ने लिखा था। उस का कुछ अंश इस प्रकार है—''यह पुस्तक 'नव वौद्धों' की वाइवल वनती जा रही है और कम पढ़े-लिखे लोगों में पहुँच के लिए इस का हिन्दी में अनुवाद किया जा रहा है। चूँकि, डा. अम्वेडकर ने उलटे कौमों का प्रयोग केवल उन्हीं जगहों पर किया है जहाँ संवाद आते हैं, इसलिए उन लोगों के लिए, जो धर्मग्रन्थों से अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं और जिन की देशी जवान अंग्रेजी नहीं है, यह जानने का कोई अर्थ नहीं है कि किस जगह डा. अम्वेडकर खुद वोल रहे हैं और किस जगह वे (पालि भाषा के) धर्मग्रन्थों को उद्धृत कर रहे हैं। इसलिए नवधर्मियों के लिए यह एक खतरनाक किताव है।....चूँकि, डा. अम्वेडकर राजनैतिक महत्वाकांक्षा और समाज सुधार के प्रयोजन के लिए धर्म के नाम पर अ-धर्म का उपदेश दे रहे हैं, इसलिए गुमराह करने वाले इस पुस्तक के शीर्षक 'द वुद्धा एण्ड हिज धम्मा' को वदल कर 'अम्वेडकर एण्ड हिज धम्मा' कर देना चाहिए।''[29]

वौद्ध भिक्षु जीवक के इस कथन में दिए गए इस सुझाव से मैं एकदम सहमत हूँ। इस आरोप में मेरे लिए हैरानी और आश्चर्य की कोई वात नहीं है। उल्टे, मैं अपने वावा साहेव डा. अम्वेडकर का इसी रूप में स्वागत करूँगा कि वौद्धों की दृष्टि में वे वौद्ध नहीं वन सके हैं। वे वुद्ध की वजह से धर्म और दर्शन की दुनिया में दुविधा और जंजाल में फँस कर रह गए हैं। दर्शन के स्तर पर वे नहीं मानना चाहते कि पुनर्जन्म होता है लेकिन धर्म के स्तर पर वे यह मानने को वाध्य खड़े हैं कि वुद्ध के पूर्वजन्म हुए थे। इसी शंका और असमंजस की स्थिति से मैं अपने महान वावा साहेव डाक्टर अम्वेडकर को वाहर निकाल रहा हूँ—और सन् 1928 वाले डाक्टर अम्वेडकर को आजीवक धर्म में वह सर्वोत्तम स्थान दे रहा हूँ जिस के वे सर्वथा योग्य हैं। सुवह के विसरे शाम को घर आ जाएँ तो वे विसरे हुए नहीं कहे जाते।

यहाँ वावा साहेब के जीवन की अन्तिम शाम को याद करना अच्छा रहेगा। उस शाम के वारे में नरेन्द्र जाधव अपनी पुस्तक 'आउटकास्ट : ए मेमोयर' में लिखते हैं—''उस शाम कुछ पत्र लिखने के वाद वावा साहेव ने लेटना चाहा। माई साहव का खाना खाने के वाद, उन्होंने रत्तू से कहा कि उन की कमर मल दो, और सन्त कवीर की कुछ साखियाँ गा दो।''[30] इस वावत, धनंजय कीर ने अपनी पुस्तक 'डा. अम्वेडकर : लाइफ एण्ड मिशन' में और ज्यादा जानकारी दी है। वे लिखते हैं—''उन्होंने बहुत कम

खाना खाया और रत्तू से अपने सिर की मालिश करने को कहा। फिर वे कवीर का 'चल कवीरा तेरा भवसागर डेरा' का गीत गाते हुए लाठी के सहारे से उठे। इस गीत को गाते हुए वे रसोई से उठ कर सटे हुए अपने बेडरूम में गए।"[31] इस प्रकार वावा साहेव के गाए गए अन्तिम शव्द कवीर के थे। तव उन का जन्म और वचपन कैसा था? धनंजय कीर लिखते हैं—"उन का परिवार विचारों में कवीर पंथी था।"[32] इस में उन के पिता रामजी सकपाल और दादा मालोजी सकपाल का जिक्र हो रहा है। लेकिन अपनी माँ की तरफ से डा. अम्वेडकर कौन थे? उन की माँ का नाम भीमा बाई था। धनंजय कीर वावा साहेब की माँ भीमा बाई के परिवार के बारे में सूचना देते हैं—"उन के पिता और उन के छह चाचा सब के सब सेना में सूवेदार मेजर थे। वे भी कवीरपंथी थे और गोष्ठियों में कवीर के दर्शन और अध्यात्म पर आवेशपूर्ण और गहरी चर्चा किया करते थे।"[33]

ऊपर देख लिया गया है कि वावा साहेब के जन्म के साँस—माता और पिता—दोनों की तरफ कवीर से शुरू हुए थे। उन का आखिरी गान भी, जिसे मक्खलि गोसाल की भाषा में 'चरिमेगाने'—अर्थात 'महागान' कहा जा सकता है, कवीर का गान था। सवाल उठता है, फिर वीच में वुद्ध कैसे आ गए? इस के लिए फ्रेंच लेखक क्रिस्टोफ जैफरलोत से सूचना ली जा सकती है। वे अपनी पुस्तक 'डा. अम्वेडकर एण्ड अनटचेबिलिटी : एनालाइजिंग एण्ड फाइटिंग कास्ट' में डा. अम्वेडकर के वारे में लिखते हैं—"उन की वौद्ध धर्म से जानकारी उन के युवा काल में ही हो गई थी। सन् 1908 में उन के एक अध्यापक के. ए. (उर्फ दादा) केलुस्कर ने उन की योग्यताओं से प्रभावित हो कर उन्हें भगवान बुद्ध की जीवनी की एक प्रति दी थी जो उन्होंने दस साल पहले लिखी थी। यद्यपि उन्होंने वहुत सालों तक इस का उल्लेख नहीं किया था लेकिन इस पुस्तक ने उन के मन पर गहरा असर डाला था।"[34] क्रिस्टोफ जैफरलोत आगे लिखते हैं—"24 मई, 1956 को डा. अम्वेडकर ने बुद्ध जयन्ती के अवसर पर आयोजित एक बैठक में घोषित किया था : 'जव मेरी उम्र कुल चौदह साल की थी, श्री दादासाहेब केलुस्कर ने एक मीटिंग में मुझे भगवान वुद्ध की जीवनी भेंट की थी। उस समय से मेरा मन हमेशा बौद्ध धर्म के प्रभाव में रहा है।"[35]

इस के बाद क्या जानना शेष रह जाता है? जानना केवल यह रह जाता है कि ये केलुस्कर कौन थे। इन का भारतीय सन्दर्भ का असली परिचय देते हुए वी. चन्द्र मौली ने अपनी पुस्तक 'वी. आर. अम्वेडकर : मैन एण्ड हिज मिशन' में लिखा है—"वे जाति से ब्राह्मण थे और अपने लेखन और भाषणों से एक सुधारवादी आन्दोलन को नेतृत्व देने वाले सामाजिक क्रान्तिकारी थे।"[36] उन का पूरा नाम श्री कृष्णाजी अर्जुन केलुस्कर था। कवीर की आजीवक दृष्टि से इस के वाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। यहाँ कवीर को ही उद्धृत कर दिया जाए तो ज्यादा अच्छा रहेगा। उन के वोल हैं—"ब्राहमन कीन्ह कौन को काजा।"[37] सही वात है, दलित का असली चिन्तन वही है जो वह विना किसी रूप में ब्राह्मण की सलाह और सोच को बीच में लाए जीवन, समाज और सृष्टि के वारे में सीधे सोचता है।

संदर्भ

1. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, सम्पादक और लेखक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010, द्वितीय संस्करण 1995, पृ.-769
2. धम्मपदं, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्ध भूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपूर-441 002, सातवां संस्करण, 14 अक्तूवर 1996, पृ.-32
3. वही, पृ.-37
4. वही, पृ.-271
5. मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन, के. एस. मणि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चन्द्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण अगस्त 1966, पृ.-89
6. वावा साहेब डा. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-4, सम्पादक के. सी. सेठ, प्रकाशक, अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण 1998, पृ.-165
7. "He was a 'Kabirpanthi'....As such he did not believe in "Moortipuja" (idol worship). He read the books of his 'panth'...."
Rare Prefaces written by Dr. Baba Saheb B.R. Ambedkar, Selected and Edited by Bhagwan Das, Preface of 'The Buddha And His Dhamma' written by Dr. Baba Saheb B.R. Ambedkar on 15th March, 1956 but not included in the book which was posthumously published by the Peoples Education Society in 1957, Bheem Patrika Publications, Nakodar Road, Juliundar-144 003, Punjab, Ist Edition September 1980, p.-28
8. "Of the two statues that we brought from Rangoon one was kept in our bungalow in a glass frame. We used to do our regular prayer in front of this statue of Buddha."
Reconstructing the World : B.R. Ambedkar and Buddhism in India, Edited by Surendra Jondhale and Johannes Beltz. Article 'The Navayana Creation of the Buddha Image Contributed by Garg Michael Tartakov, Oxford University Press, YMCA Library Building, Jai Singh Road, New Delhi-110001, Ist Edition 2004, p.-174
9. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-217
10. वही, पृ.-217
11. वही, पृ.-217
12. वही, पृ.-217
13. वही, पृ.-217
14. वही, पृ.-218
15. धम्मपदं, अनुवादक डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपूर-441002, सातवां संस्करण, 14 अक्तूवर 1996, पृ.-6
16. वही, पृ.-41
17. वही, पृ.-60
18. वही, पृ.-86
19. वही, पृ.-88
20. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमलकीर्ति, 'एक मत,' डा. धर्मकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लव रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-13
21. नाम चाहिए एक बाप का, वीरेन गोहिल, ज्ञान भारती 4/14, रूप नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण 2003, पृ.-67
22. वही, पृ.-96
23. "I hope my questions will incite the readers to come and make their contributions to their solution."
Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, Vol. 11, The Buddha

and His Dhamma, Education Department, Govt. of Maharashtra, Bombay-400 032, Ist Edition 1992, Introduction, p.-3

24. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, सम्पादक और लेखक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाच मोचन, वाराणसी-221010, द्वितीय संस्करण 1995, पृ.-523

25. वही, पृ.-769

26. History and Doctrines of The Ājīvikas : A Vanished Indian Religion, By A.L. Basham with a Foreword by L.D. Barnett, Motilal Banarsidass, 41 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110007, Reprint 2002

27. Ajvika page, http://www.rev. net/~aloe/ajivika

28. "1. Ommission
 (i) For Brevity
 (ii) For Simplification
 (iii) For the Expurgation of Miracles
 (iv) For the Expurgation of Doctrine
 2. Change in Emphasis.
 3. Change in the Sense."

 The Use of Buddhist Scriptures in B.R. Ambedkar's *The Buddha and His Dhamma*, by Adele Fiske and Christoph Emmrich, Article contributed in the book entitled 'Reconstructing The World : B.R. Ambedkar and Buddhism in India', edited by Surendra Jondhale and Johannes Beltz, Oxford University Press, YMCA Library Building, Jai Singh Road, New Delhi-110001, Ist Edition, 2004, pp.-101-111

29. This book is in the process of becoming the bible of the 'New Buddhists', and it is being translated into Hindi to reach the less educated. To anyone not versed in the Scriptures and whose native language is not English, there is no means of telling where Ambedkar is speaking for himself and where he is quoting from the (Pali) canon, for he uses inverted commas only for conversations. Hence it is a dangerous book for beginners.....The title should be changed from the misleading one of 'The Buddha and His Dhamma' to that of 'Ambedkar and His Dhamma', for he preaches non-Dharma as Dharma for motives of political ambition and social reform."

 Quoted in the article 'Ambedkar's Dhamma : Source and Method in the Construction of Engaged Buddhism' of Christopher S. Queen, which is contributed in the book entitled 'Reconstructing the World : B.R. Ambedkar and Buddhsim in India', edited by Surendra Jondhale and Johannes Beltz, published by Oxford University Press, YMCA Library Building, Jai Singh Road, New Delhi-110001, Ist Edition 2004, p.-136.

30. "After writing some letters that eveing, Babasaheb wanted to lie down. After Maisaheb fed him a dinner of gruel, he requested Rattu to rub his aching back, and sing him a few couplets written by Saint Kabir."

 Outcaste : A Memoir, Narendra Jadhav, Viking by Penguin Books India (P) Ltd., 11 Community Centre, Panchsheel Park, New Delhi-110017, Edition 2003, p.-195

31. "He ate little food and asked Rattu to massage his head. Then he got up with the help of a staff in his hand, singing a song from Kabir, "Chal Kabir Tera Bhav Sagar dera." Singing in this way, he entered bedroom adjacent to the Kitchen."

 Dr. Ambedkar : Life and Mission, Dhananjay Keer, Popular Prakashan Private Limited, 35-C, Pandit Madan Mohan Malaviya Marg, Popular Press Bldg. Tardeo, Bombay-400 034, Reprint 1992, p.-513

32. The family belonged to the devotional Kabir School of thought."
ibid., p.-8

33. "Her father and her six uncles were all Subhedar Majors in Army. They also belonged to the Kabir cult and discussed hotly and keenly the philosophy of Kabir and theology at troupes."
ibid., pp.-9-10

34. "His familialrity with Buddhism went back to his youth. In 1908 one of his teachers, K.A. (*alias* Dada) Keluskar, impressed by his aptitude, gave him a biography of Lord Buddha he had published ten years before. It had a profound influence on his young mind,...even though for years he never referred to it."
Dr. Ambedkar and Untouchability : Analysing and Fighting Caste, Christophe Jaffrelot, Permanent Black, D-28 Oxford Apartment, 11, I.P. Extension, Delhi-110092, Ist Edition, 2005, p.-131

35. "On may 24, 1956, during a meeting organised in honour of the anniversary of Buddha, he declared : 'At the very young age of fourteen, Mr. Dadasaheb Keluskar had in a meeting presented me with a biography of Bhagwan Buddha since then always been under the influence of Buddhism.' (Dr. Baba Saheb Ambedkar, 'Buddhism and Hinduism are not the same thing," a talk given on May 24, 1956 (Marathi), Private Papers of Ambedkar, NMML (Nehru Memorial and Museum Library) section of microfilms), Real No. 2)."
ibid. p.-193

36. "Brahmin by caste, he was a social revolutionary leading a reformist movement through his writings and speeches."
B.R. Ambedkar : Man and His Vision, V. Chandra Mowli, Sterling Publishers Private Limited, L-10, Green Park Extension, New Delhi-110016, Reprint 1994, p.-11

37. कवीर-वीजक, प्रस्तुतकर्ता डा. शुकदेव सिंह, नीलाभ प्रकाशन, 5-खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1972, पृ.-85

सन्दर्भ साहित्य

I. हिन्दी पुस्तकें

1. उर्दू-हिन्दी शब्दकोश, संकलन कर्ता, मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, सप्तम संस्करण 1992
2. कबीर-बीजक, प्रस्तुतकर्ता डा. शुकदेव सिंह, नीलाभ प्रकाशन, 5-खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1972
3. कबीर वाङ्मय : खण्ड 3, साखी भावार्थ बोधिनी व्याख्याकार डा. जयदेव सिंह और डा. वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001, तृतीय संस्करण 2000
4. कबीर समग्र : द्वितीय खण्ड, डा. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स प्रा. लि., C-21/30, पिशान मोचन, वाराणसी-221010, प्रथम संस्करण 1997
5. कबीर समग्र : प्रथम खण्ड, सम्पादक प्रो. युगेश्वर, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221010, द्वितीय संस्करण 1995
6. कविता में औरत, अनामिका, इतिहास बोध प्रकाशन, बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद-211004, प्रथम संस्करण, जनवरी, 2004
7. कामसूत्रम्, वात्स्यायन, हिन्दी व्याख्याकार, देवदत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पो. बो. नम्बर 1139, के. 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-221001, सप्तम संस्करण वि. सं. 2060
8. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स : संकलित रचनाएँ, खण्ड-3, भाग-2, अनुवाद और प्रकाशन, प्रगति प्रकाशन, 21, जूबोव्स्की बुलवार, मास्को, सोवियत संघ, संस्करण 1978
9. थेरीगाथा, अनुवादक और सम्पादक डा. विमल कीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, प्रथम संस्करण 2003
10. दीघ निकाय, अनुवादक भिक्षु राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ-226001, द्वितीय संस्करण 1979

11. धम्मपदं, अनुवादक डा. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, बुद्ध भूमि प्रकाशन, कामठी रोड, नागपूर-441002, सातवाँ संस्करण, 14 अक्तूबर, 1996
12. धर्मग्रन्थों का पुनर्पाठ, मुद्राराक्षस, इतिहास-बोध प्रकाशन, बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद-211004, प्रथम संस्करण, सितम्बर 2004
13. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, मूल लेखक डा. पाण्डुरंग वामन काणे, अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, तृतीय संस्करण 1980
14. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, सन्मार्ग प्रकाशन, 16-यू. बी., बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण 1991
15. नाग संस्कृति कोश, डा. अवन्तिका प्रसाद मर्मट, नाग स्मृति प्रकाशन, 79, अशोक नगर, उज्जैन, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण 1997
16. नाम चाहिए एक बाप का, वीरेन गोहिल, ज्ञान भारती, 4/14, रूप नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण 2003
17. पहला खत, धर्मवीर, समता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, पहला संस्करण 1991
18. बाबा साहेब डा. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड-4, सम्पादक के. सी. सेठ, प्रकाशक, अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण 1998
19. बौधायन धर्मसूत्रम्, हिन्दी व्याख्याकार डा. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, पोस्ट बोक्स नम्बर 1139, जड़ाव भवन, के. 37/116, गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-221001, तृतीय संस्करण वि. सं. 2047
20. भगवान बुद्ध और उन का धर्म, लेखक डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर, अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, जेतवन महाविहार, श्रावस्ती, बलरामपुर, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण 1970
21. भगवान बुद्ध : जीवन और दर्शन, धर्मानन्द कोसम्बी, अनुवादक श्रीपाद जोशी, लोक भारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण 1982
22. भारत का इतिहास : संक्षिप्त रूपरेखा, लेखक को. अ. अतोनोवा, ग्रि. म. बोंगर्द-लेविन और ग्रि. ग्रि. कोतोव्स्की, सम्पादक नरेश वेदी, प्रगति प्रकाशन, मास्को पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, 5 ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-110055, संस्करण 1973
23. भारत में जाति प्रथा : स्वरूप, कर्म और उत्पत्ति, लेखक जे. एच. हटन, अनुवादक मंगल नाथ सिंह, मोती लाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम हिन्दी संस्करण 1983

24. मज्झिम निकाय, अनुवादक राहुल सांकृत्यायन, भारतीय वौद्ध शिक्षा परिषद, श्रावस्ती, बहराइच, तृतीय संस्करण 1991
25. मलयालम-इंग्लिश-हिन्दी निघन्टु, वी. राम कुमार, सिसो पव्लिशर्स, मेडिकल कॉलेज पो. ओ., तिरुवनन्तपुरम-695001, फर्स्ट एडिशन 1995
26. महायात्रा : गाथा : अंधेरा रास्ता, डा. रांगेय राघव, किताव महल, 15 थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1967
27. महायात्रा : गाथा-भाग 2 : रैन और चन्दा, डा. रांगेय राघव, किताव महल प्राइवेट लिमिटेड, 56 ए, जीरो रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1964
28. मूलवंशी और बौद्ध धर्म, मेहर सिंह पूषण, रमा पूषण प्रकाशन, जैन धर्मशाला, नई बस्ती, बिजनौर, जिला विजनौर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1-3-1993
29. मैथिलीशरण गुप्त और वल्लत्तोल का तुलनात्मक अध्ययन, के. एस. मणि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, चन्द्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, प्रथम संस्करण, अगस्त 1966
30. लोकायत, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, अनुवादक बृज शर्मा, मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, 4 कम्युनिटी सेन्टर, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-1, नई दिल्ली-110008, प्रथम हिन्दी संस्करण 1982
31. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राम शरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-वी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पेपर बैक संस्करण, पुनरावृत्ति 1997
32. स्त्रीत्व का मानचित्र, अनामिका, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 142-ई, पोकट-4, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091, पेपरबैक संस्करण 2001
33. हिन्दू कोड विल और डा. अम्बेडकर, सोहन लाल शास्त्री, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नई दिल्ली-110063, चतुर्थ संस्करण, 2003

II.English Books

1. A Dictionary of Buddhism by Damien Keown, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford OX2 6DP, Ist Edition 2003
2. Dr. Ambedkar : Life and Mission, Dhananjay Keer, Popular Prakashan Private Limited, 35-C, Pandit Madan Mohan Malaviya Marg, Popular Press Bldg., Tardeo, Bombay-400 034, Reprint 1992
3. Dr. Ambedkar and Untouchability : Analysing and Fighting Caste, Christophe Jaffrelot, Permanent Black, D-28, Oxford Apartment, 11, I.P. Extension, Delhi-110092, Ist Edition 2005
4. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches : Vol. 11 : The Buddha and His Dhamma, Education Department, Govt. of Maharashtra, Bombay-400032, Ist Edition, October 1992

5. Dr. Babasaheb Ambedkar : Wrtings and Speeches, Vol., 14, Part Two, Edited by Vasant Moon, Education Department, Govt of Maharashtra, Mumbai-400032, Ist Edition, 6 December 1995
6. Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches, Volume 17, Part Three, Edited by Hari Narake, Dr. M.L. Kasare, N.G. Kamble and Ashok Godghate, Publisher, Babasaheb Ambedkar Source Material Publication Committee, Higher Education Department, Government of Maharashtra, Barrack No. 18, Opp. Mantralaya, Mubai-400021, Ist Edition October 2003
7. B.R. Ambedkar : Man and His Vision, V. Chandra Mowli, Sterling Publishers Private Limited, L-10, Green Park Extension, New Delhi-110016, Reprint 1994
8. Dalitolgy : The Book of the Dalit People, M.C. Raj, Ambedkar Resource Centre, Rural Education for Development Society, REDS Road, Shanthi Nagar, Tumkur - 572 102, Karnataka, India, Edition 2001
9. Dravidian Etymological Dictionary by T. Burrow and M.B. Emeneau, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., Post Box 5715, 54 Rani Jhansi Road, New Delhi-110055, Ist Indian Edition 1998
10. History and Doctrines of the Ājīvikas : A Vanished Indian Religion, By A.L. Basham, Motilal Banarsidass, 41 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110007, Reprint 2002
11. Kamasutra : A New Translation by Wendy Doniger and Sudhir Kakar, Oxford University Press, Great Clarendon Street, Oxford 0 X 2 6 DP, Ist Edition 2002.
12. The Millennium Kabir Vāṇi : A Collection of Pad-s, Winand M. Callewaert in Collaboration with Swapna Sharma and Dieter Taillien, Manohar Publishers & Distributors, 4753/ 23, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-110002, Ist Edition 2000
13. Rare Prefaces Written by Dr. Baba Saheb B.R. Ambedkar, Selected and Edited by Bhagwan Das, Bheem Patrika Publications, Nakoder Road, Jullundur - 144003, Punjab, Ist Edition September 1980
14. Reconstructing the World: B. R. Ambedkar and Buddhism in India, Edited by Surendra Jondhale and Johannes Beltz, Oxford University Press, Y M C A Library Building, Jai Singh Road, New Delhi-110001, Ist Edition 2004
15. The Rise and Fall of Hindu Woman, B.R. Ambedkar, Bheema Patrika Publications, Nakodar Road, Jalandhar-144 003, Edition 10 September 1988
16. Sannyasa Darshan : A Treatise on Traditional and Contemporary Sannyasa, by Paramahamsa Niranjanananda, Published by Sri Panchdashnam Paramahansa Alakh Bara, Paria Pagar, Rikkia, Deoghar, Bihar, India, Ist Edition 1993

17. A Sanskrit- English Dictionary, M. Monier-Williams, Motilal Banarsidass, 41, U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar, Delhi-110007, Reprint 1997
18. Outcaste : A memoir, Narendra Jadhav, Viking by Penguin Books India (P) Ltd. 11 Community Centre, Panchseel Park, New Delhi-110017, Edition 2003

III. हिन्दी पत्रिकाएं

1. उत्तर-आधुनिक परिदृश्य में दलित-साहित्य-विमर्श, डा. कृष्णदत्त पालीवाल, अपेक्षा, 27 घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, जुलाई-सितम्बर 2004
2. स्त्री-मुक्ति का स्वर है 'थेरीगाथाएँ', अनिता भारती, अपेक्षा, 27—घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, अप्रैल-जून 2005

IV. मलयालम पुस्तकें

1. भारतीय दर्शनम ओरुं सम्वादम, लेखकगण, ई. एम. एस. नम्बूतिरिपाद, डा. एन. वी. पी. उणित्तिरि, डा. के. एन. गणेश और पी. परमेश्वरन, प्रकाशक, चित्रा पब्लिकेशन्स, तिरुवनन्तपुरम-695001, तीसरा संस्करण, मई 1997

V. Website

1. Ajivika Page, http : //www.rev. net/~aloe/ajivika

डा. धर्मवीर के स्त्री सम्बन्धी साहित्य पर बहस

1. अठारवहीं (शब्द 'उन्नीसवीं' होना चाहिए) सदी में उभरा मुक्ति का स्वर, मुकुल प्रियदर्शिनी, जनसत्ता, 16 अप्रैल 1989, नई दिल्ली
2. 'अनुगूँज' की गम्भीरता, डॉ. सुकीर्ति गुप्ता, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, जनवरी 2004, दिल्ली–110095, पृ.-9
3. अपनी भैंस कुल्हाड़ी से नाथूँ, तुम्हें क्या?, बालेश्वर राम, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-5
4. अपने गिरेबान में तो झांकिए, अनिता भारती, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, नवम्बर 2003, पृ.-10-11
5. अर्धनारीश्वर, विष्णु प्रभाकर (साहित्य अकादमी से पुरस्कृत इस उपन्यास में 'सीमन्तनी उपदेश' का शीर्षक ज्यों का त्यों रखा गया है लेकिन सम्पादक के रूप में मेरा नाम बदल दिया है। मैंने उन से अनुरोध किया है कि इतिहास का विषय होने की वजह से मेरा नाम भी ज्यों का त्यों रखा जाए। उन्होंने मेरा तर्क स्वीकार किया है।)
6. आए थे हरि भजन को..., कमाल अहमद, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, नवम्बर 2003, पृ.-7-8
7. आकर्षक मुखपृष्ठ, डा. प्रमोद कुमार सिंह, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ. 6
8. आजादी के मायने, मंजू देवी, हंस, नवम्बर 2004, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृ.-63
9. आन्दोलन के रूप में शिवमूर्ति, उमाकान्त 'राही', कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ.-4
10. इस में गलत क्या है, विद्या लाल, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ.-83
11. उन्नीसवीं सदी के स्त्री-स्वर, संजीव, लोकमत समाचार, नागपुर, 26 सितम्बर 2004, पृ.-2
12. एक दौड़ती कड़वी सच्चाई, वेद प्रकाश दुबे, चौथी दुनिया, 16 से 22 जुलाई, 1989, पृ.-14

13. औरतों का नजरिया : सीमन्तनी उपदेश, वीर भारत तलवार, उन की पुस्तक 'रस्साकशी : 19वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रान्त' में, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 142-ई, पाकेट-4, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091, प्रथम संस्करण 2002, पृ.-221-236, 240, 244
14. औलाद चाहने वाली एक औरत का हाल, दैनिक नवभारत टाइम्स, रविवारीय, 27 नवम्बर 1988, पृ.-3, कालम 3-6
15. 'कफन' और 'दलित स्त्री विमर्श', अनिता भारती, कृति संस्कृति संधान, बी-2/51, रोहिणी सेक्टर-16, दिल्ली-110085, अप्रैल-दिसम्बर 2003, पृ.-209-13
16. 'काश पूछो कि मुद्दा क्या है....!' परिभाषाओं का संघर्ष, पुरुषोत्तम अग्रवाल, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, नवम्बर, 2003, पृ.-38-43
17. काश! फलक विस्तृत होता, अनिता भारती, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-63
18. को बड़ छोट कहत अपराधू, कविता, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ.-81-2
19. क्या स्त्री विरोधी हैं दलित लेखक?, सुमन प्रभा, दलित प्रक्रिया, अक्तू-नवम्बर 1994, पृ.-5-7
20. क्या हम आपकी खेती हैं?, रजनी तिलक, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ. -79-81
21. खूबसूरत दुश्मनों के बीच, देवदत्त, जनसत्ता, दिल्ली, 3 अगस्त 2003
22. गर दलित पत्नी सताए तो डॉ. धर्मवीर को बताएँ, अनीता भारती, युद्धरत आम आदमी, रमणिका फाउन्डेशन, A-2-21, डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली-110024, जनवरी-मार्च 2005, पृ.-74-7
23. चूक गए, जोखिम देवलिया, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002, नवम्बर 2003, पृ.-11
24. जीवन की अनुगूँज, यशवन्त पाल, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ.-4
25. जेवर-गहने से पीछा क्यों नहीं छूटता!, सम्पादक, चौथी दुनिया, 16 से 22 जुलाई, 1989, पृ.-14
26. टापू नहीं है कोई भी, ललित कार्तिकेय, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर-2003, पृ. -60-61
27. तिहरा अभिशाप अर्थात् दलित अस्मिता विमर्श में स्त्री, बजरंग बिहारी तिवारी, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, जुलाई 2000, पृ.-91
28. दलित-अस्मिता के लिए गठबन्धन जरूरी, ईश कुमार गंगानिया, 27-घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110051, अप्रैल-जून 2004, पृ.-53-56, 71

29. दलित आन्दोलन : भविष्यदृष्टि का प्रश्न, सुभाष गाताडे, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ.-84-6
30. दलित दर्शन या दलित मनुवाद!, सुमन प्रभा, समकालीन जनमत, 16-31 जुलाई 1995, पृ.-29-31
31. दलित दर्शन : सीमित दायरे की बहस, अखिलेश, समकालीन जनमत, 1-15 सितम्बर, 1995, पृ.-26
32. दलितों में दलित है स्त्री, पुष्पा विवेक, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ. -61-2
33. दलित साहित्य वयस्क हो रहा है, मोहन दास नैमिशराय से ईश कुमार गंगानिया की बातचीत, अपेक्षा, 27-घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110 051, अप्रैल-जून 2004, पृ.-37
34. दलित साहित्य-विमर्श में स्त्री, बजरंग बिहारी तिवारी, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जनवरी 2003, पृ. -39-49
35. दलित स्त्री का कब्जाकरण, रमणिका गुप्ता, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जुलाई 2003, पृ. -61-5
36. दृष्टि का दंश, विद्या रानी, हंस, 2/36, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002, अगस्त 1999, पृ.-96
37. देवदत्त क्यों हँसे?, धर्मवीर, जनसत्ता, नई दिल्ली, 6 जुलाई 2003
38. धर्मवीर की नैतिकता, अनिता भारती, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, नवम्बर 2003, पृ. -6-7
39. नयी जान आ गयी है, पवन कुमार सिंह, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003
40. नारी की अन्तर्वेदना की सफल अभिव्यक्ति : सीमन्तनी उपदेश, नगर संवाददाता, दैनिक वीर अर्जुन, नई दिल्ली संस्करण, 24 नवम्बर 1988, पृ.-3, कालम-7-8
41. नारी जागरण का उद्घोष, डा. हरिमोहन, आजकल, जून 1989, पृ.-41-2
42. नारी मुक्तिकाव्य, मंजू देवी, हंस, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, अगस्त 1999, पृ.-96
43. नारीवाद बनाम देहवाद, सुभाष धायल, जनसत्ता, नई दिल्ली, 21 अक्टूबर 2004
44. नारी वादिनों को शुभकामनाएँ, सत्यपाल सिंह, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जुलाई 2003, पृ.-65
45. नारी समस्या का जीवन्त दस्तावेज, सुरेश कुमार, समीक्षायन, पृ.-68-9
46. निशाने से आगे, देवदत्त, जनसत्ता, दिल्ली, 8 जून, 2003, पृ-7
47. परछाईं से संघर्ष करती नारी, राज भारती, समकालीन जनमत, 1-15 सितम्बर 1995, पृ.-25-6
48. पाठक प्रतिक्रिया, रमेश निर्मल, अपेक्षा, 27-घौंडली, कृष्णा नगर, दिल्ली-110 051, अक्टूबर-दिसम्बर 2003, पृ .-2-3

49. पाठकों को इतना मूर्ख क्यों समझते हैं?, डा. प्रमोद कुमार सिंह, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-6
50. प्रस्तावना, कुसुम चतुर्वेदी, नया मानदण्ड, आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, अप्रैल-जून 2003, पृ.-9
51. बंटवारा सम्भव नहीं, हरीश कुमार, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, अक्टूबर 2004, पृ.-9
52. बदमाशों की हालत, चौथी दुनिया, 30 जुलाई से 5 अगस्त, 1989, पृ.-14
53. 'बहस, वाह भई, वाह', मुन्नी चौधरी, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-6
54. बहस का अन्त स्त्री से होना चाहिए, रजनी तिलक, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, नवम्बर 2003, पृ.-6
55. बेजोड़ है, गोविन्द सेन, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-5
56. बेहद मर्मस्पर्शी, गन्धर्व आनन्द, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-6
57. मनुवाद का नया संस्करण, विमल थोरात, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जुलाई 2003, पृ.-66-9
58. मंच और डा. धर्मवीर, महेश चन्द्र पुनेठा, समकालीन जनमत, 1-15 सितम्बर 1995, पृ. -4-5
59. मान न मान, मैं तेरा मेहरवान, मैत्रेयी पुष्पा, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-58-61
60. मानव विरोधी और फासिस्ट सोच, सुदीप्ति, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-62-3
61. मुँह में राम...., रमेश निर्मल, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-61-4
62. मुझ को डर आतिशे गुल से है....: अस्मिता विमर्श : एक पड़ताल, पुरुषोत्तम अग्रवाल, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, फरवरी 2003, पृ.-31-8
63. मेरा दुश्मन मेरा दोस्त, अंशुमाली रस्तोगी, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, दिसम्बर 2003, पृ.-14

64. मेरी चिन्ता छोड़ बावरे कर तू अपनी चिन्ता, संजीव चन्दन, पुस्तक वार्ता, नवम्बर-दिसम्बर 2004, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, पोस्ट बाक्स नं.-16, पंचटीला, उमरी, वर्धा-442001
65. यह ब्राह्मणवादी षडयन्त्र है, अजय नावरिया, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ.-83
66. रोटी कपड़ा लो, और तुम्हें कुछ अख्तियार नहीं, अरुण प्रकाश, अलाव, पृ.-30-33, साभार, चौथी दुनिया, 20-26 अगस्त 1989, पृ.-13
67. लिखा लेने का दंभ, मीनाक्षी सखी, हंस, अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, अक्टूबर 2004, पृ.-11-2
68. विधवा विवाह क्यों नहीं कर सकती, सम्पादक, चौथी दुनिया, 23 से 29 जुलाई 1989, पृ.-14
69. विवाह एक पवित्र बन्धन, प्रतिभा अग्रवाल, जनसत्ता, दिल्ली, 2 जुलाई 2003
70. विवाह की मर्यादा एक पवित्र धोखा, मैत्रेयी पुष्पा, जनसत्ता, दिल्ली, 15 जून 2003
71. विवाहेतर सम्बन्ध मुक्ति का स्वर्गद्वार नहीं, सुदीप्ति, जनसत्ता, दिल्ली, 29 जून 2003
72. विवाह-संस्था अन्यायपूर्ण, यशदेव शल्य, जनसत्ता, दिल्ली, 29 जून 2003
73. विवेकानन्द के माहौल में...., शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी, हंस, 2/36, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली-110002, नवम्बर 2002, पृ.-62-3
74. वैवाहिक बन्धन अगर धोखा हो तो नकार देना चाहिए, उमाकान्त राही, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, अगस्त 2003, पृ.-4
75. सच कहने का साहस, वैद्यनाथ मिश्र, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जनवरी 2004, पृ.-7
76. संघर्ष का बँटवारा नहीं किया जा सकता, शरण कुमार लिम्बाले से बजरंग बिहारी तिवारी की बातचीत, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110 095, अगस्त 2004, पृ.-55-7
77. सन्त को नमन, वोल्गा, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ. 5-6
78. सवर्ण पति बनाम दलित पति, प्रभा खेतान, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जून 2003, पृ.-53-8
79. सार्थक वहस, नरेन्द्र, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-6
80. सीमन्तनी उपदेश, समीक्षक हरीश भादानी, नया शिक्षक, टीचर टुडे, जनवरी-मार्च, 1989, पृ.-89, 101

81. 'सीमन्तनी उपदेश' पुस्तक पर चर्चा, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली संस्करण, 24 नवम्बर, 1988, पृ.-1, कालम-1
82. सीमन्तनी उपदेश लेखिका : एक अज्ञात औरत, समीक्षक डा. मो. दि. पराडकर, हिन्दी संघ समाचार, अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संघ. नई दिल्ली, मार्च, अप्रैल, मई, 1989, पृ.-56-7
83. स्त्रियों की मर्यादा निर्धारित करने वाले चौधरी धर्मवीर, कौसल्या बैसन्त्री, हंस, 2/36, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, दिसम्बर 2004, पृ.-60-62
84. स्त्रियों की स्थिति पर अनाम औरत की टिप्पणियाँ, मृणाल पांडे, हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, 27 जून, 2004
85. स्त्रियों में आत्मसजगता जरूरी है, उत्तिमा केशरी, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-6-7
86. स्त्री और दलित प्रश्न, सुदेश तनवीर, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, सितम्बर 2003, पृ.-5-6
87. स्त्री-कुंठा, ध्रुव प्रकाश सिंह, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जुलाई 2003, पृ.-7
88. स्त्री मुक्ति का अराजक दस्तावेज, प्रभात कुमार मिश्र, कथाक्रम, जुलाई-सितम्बर 2005, 4 ट्रान्जिट हास्टल, वायरलैस चौराहे के पास, महानगर लखनऊ-226006, पृ.-110-12
89. स्त्री विमर्श का शुरुआती पाठ, संजीव ठाकुर, राष्ट्रीय सहारा, 9 अगस्त 2004, www.rashtriyasahara.com
90. स्त्री विमर्श के केन्द्र में देह, मनोज कुमार झा, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ.-5
91. स्पष्टीकरण का इच्छुक, शेखर, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, दिसम्बर 2003, पृ.-5
92. हर अवसर के लिए गांधी, देवदत्त, जनसत्ता, दिल्ली, 13 जुलाई 2003
93. हमें आप के फतवे की परवाह नहीं, प्रोमिला, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., सी-52/जेड-3, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095, जुलाई 2003, पृ.-69

•••

'मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता'
पर
डॉ. धर्मवीर की
स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर
पुस्तक-शृंखला

खण्ड-एक : कामसूत्र की सन्तानें
खण्ड-दो : तीन हिन्दू स्त्रीलिंगों का चिंतन
खण्ड-तीन : प्रेमचन्द : सामन्त का मुन्शी
खण्ड-चार : थेरीगाथा की स्त्रियाँ और डॉ. अम्बेडकर
खण्ड-पाँच : दलित सिविल कानून
खण्ड-छह : परिशिष्ट

In English

Bijak Paternity
or
Back to the Ajivak Morals

सम्पादन : सीमन्तनी उपदेश